श्रीमदीश्वरकृष्णरचिता

साङ्ख्यकारिका

(अन्वय-अनुवाद-नरहरिसंस्कृतव्याख्य-सानुवादगौड़पादभाष्य-टिप्पणी-सहिता)

व्याख्याकार:

डॉ० सुधांशु कुमार षड़ङ्गी
सहाचार्य
विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत एवं
भारत-भारती अनुशीलन संस्थान
पञ्जाब विश्वविद्यालय
साधु आश्रम, होशियारपुर
पञ्जाब

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी दिल्ली

प्रथम संस्करण : 2010

ISBN No. 978-81-217-0247-8

मूल्य : ८०/- रू.

प्रकाशक :
भारतीय विद्या प्रकाशन
5824, न्यू चन्द्रवल, (नजदीक शिव मन्दिर)
दिल्ली - 110007
दूरभाष : (011) – 23851570, 23850944
मोब. 09810910450

ब्रांच ऑफिस :
पोस्ट बॉक्स 1108, नेपाली खपड़ा
वाराणसी - 221001
दूरभाष : (0542) 2392376
Email : bvpbooks@gmail.com

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

Dr. Swami Arupananda
Ph.D.,
D.Sc.
N-6/23, IRC Village, Nayapalli
Bhubaneswar - 751015

Ref No. KKNSS/App,/13/09 Dt. 15-12-2009

Blessings

सश्रद्ध सुधांशु संस्कृति एवं संस्कृत की परिवर्त्तनशील युवा पीढ़ी के सारस्वत साधक है। संस्कृत साहित्य सम्पर्कित नई-नई तर्जमा और तमन्नाएँ उन्हें बारम्बार आगे बढ़ा रही है।

वर्त्तमान उनका सारस्वत सन्दर्भ 'साङ्ख्यकारिका' प्रकाशित होने जा रहा है, जिसका मूल संस्कृत भाषा में है। श्रीमद् गौडपाद ने साङ्ख्यकारिका के ७२ श्लोकों में से ६९ श्लोकों की ही व्याख्या की थी। सश्रद्ध सुधांशु ने इसी संस्कृत व्याख्या की हिन्दी रूपान्तरण करते हुए कारिकाओं की संस्कृत में व्याख्या की है। प्रस्तुत पुस्तक को सुधांशु ने अन्वय, अनुवाद, संस्कृत व्याख्या, गौडपाद भाष्य, भाष्यानुवाद तथा आवश्यकता के अनुसार टिप्पणी के साथ अति सरल एवं साबलील ढ़ंग से किया है।

मैं पुस्तक के बहुल भाव से प्रसारण का आशीर्वाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे और भी कृतियाँ उपस्थित करें।

हरि: ॐ

डॉ० वीरेन्द्र कुमार मिश्र
एम०ए०, साहित्याचार्य, पीएच्०डी०
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
पूर्व अधिष्ठाता, भाषासङ्काय
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला - 171005

आवास : बी – ४८, टीचर्स कॉलोनी
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमाल – 171005
दूरभाष : 0177+2831435 (आवास)
विभाग : दूरभाष एक्सचेंज नं०
280445 & 2830435
एक्सटेंशन : 5825, 5820

शुभाशंसा

मानव जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष हैं। सभी दर्शनों का उद्देश्य भी इसी की प्रप्ति है। डॉ० सुधांशु कुमार षड़ङ्गी की कृति 'साङ्ख्यकारिका' इसी श्रृङ्खला में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी है। मैंने उक्त कृति को आद्योपान्त पढ़ा। इसके पढ़ने से मुझे सन्तोष एवं आनन्दानुभूति हुई। डॉ० षड़ङ्गी ने प्रस्तावना के अन्तर्गत कपिल मुनि के साङ्ख्यसूत्रों पर उपलब्ध तीन टीकाओं (अनिरुद्धवृत्ति, प्रवचनभाष्य, वृत्तिसार) के उल्लेख के साथ-साथ ईश्वरकृष्ण कृत 'साङ्ख्यकारिका' पर की गई टीकाओं (माठरवृत्ति, युक्तिदीपिका, गौडपादभाष्य, जयमङ्गला, साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी एवं चन्द्रिका) का उल्लेख किया है। इसके साथ ही व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ, कार्यकारणवाद, प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द), प्रकृति, पुरुष, सृष्टिप्रक्रिया, कैवल्य आदि सभी को प्रस्तावना का विषय बनाया है।

प्रस्तुत कृति में डॉ० षड़ङ्गी ने कारिकाओं का हिन्दी अनुवाद, नरहरि संस्कृतव्याख्या, गौडपादभाष्य तथा टिप्पणी सहित भाष्य का हिन्दी अनुवाद भी किया है। साङ्ख्यदर्शन के जिज्ञासु छात्रों, शोधार्थियों, पाठकों एवं साधनासोपान पर आगे बढ़ने वाले कैवल्यार्थियों के लिए लेखक का सार्थक परिश्रम एवं उच्चकोटि की सामग्री सुलभ कराने में परम उपादेय सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

डॉ० षड़ङ्गी को इस सत्प्रयास के लिए हार्दिक मङ्गल कामनाएँ एवं साधुवाद देता हूँ, साथ ही देवाधिदेव भगवान् भोलेनाथ से इनके अभ्युदय तथा नि:श्रेयस् की कामना करता हूँ।

डॉ० वीरेन्द्र कुमार मिश्र

प्रस्तावना

योऽन्तःप्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्।।

दर्शन वस्तुतः मनुष्य की अन्तःदृष्टि का परिणाम ही है। यह केवल आध्यात्मिक चेतना के औत्कर्ष्य स्थितिलभ्य है। 'दृशिर्' ज्ञाने धातु से करण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। अर्थात् जिससे ज्ञान प्राप्त होता है और यह जिस शास्त्र में वर्णित है, उसे दर्शनशास्त्र कहते हैं। यहाँ पर दर्शन शब्द का तात्पर्य सम्यग्दर्शन से है। जीव की जीवता का ज्ञान का निर्वचन करना इस शास्त्र का प्रमुख प्रयोजन है, जो कि अपवर्ग, मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति आदि नाम से भिन्न-भिन्न दर्शनों में वर्णित है। इसलिए वैदिक ऋषि ने भी आत्मोपलब्धि की उत्कर्षता की भूयः भूयः प्रशंसा की है। अतः जिस शास्त्र में आत्मा, परमात्मा, अपवर्ग तथा संसार आदि के विषय में चिन्तन चिन्तित है, उसे दर्शन शास्त्र कहते हैं।

दर्शन शब्द की भाव व्युत्पत्ति में अपरोक्षानुभूति ही अर्थबोध है। इस दर्शन का मूल आधार मनुष्य की विचार शक्ति है। जब दार्शनिक किसी भी विषय का विवेचन आरम्भ करता है तो वह भावनाओं से मुक्त होकर बौद्धिकता के धरातल पर पहुँच जाता है तथा वह बौद्धिकता सदैव उसे अनेक प्रकार के प्रश्नों का युक्तिपूर्वक उत्तर देने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए दार्शनिक सदैव बौद्धिक धरातल पहुँच कर उत्तर प्राप्त करता है।

यह दर्शन शास्त्र दो भागों से विभक्त है। जैसे – प्राच्य दर्शन और पाश्चात्य दर्शन। इन दोनों में पाश्चात्य दर्शन हेगले, एरिस्टोटल आदि से प्रचारित है। प्राच्य दर्शन तो भारतीय दर्शन कहा जाता है। सर्वदर्शनसंग्रह के अनुसार सम्पूर्ण भारतीय दर्शन सम्प्रदाय में सोलह दर्शन सम्प्रदाय है। इनमें से केवल नौ दर्शन सम्प्रदायों का प्रमुखत्व स्वीकृत है। इनको हम दो भाग से विभक्त कर सकते हैं। जैसे वैदिक दर्शन और अवैदिक दर्शन। वेद के प्रामाण्य को मानने वाला दर्शन सम्प्रदाय वैदिक तथा इनसे विपरीत दर्शन सम्प्रदायों को अवैदिक कहा जा सकता है। वैदिक दर्शन सम्प्रदाय में प्रमुख रूप से ६ दर्शन सम्प्रदायों का महत्ता है। जैसे – न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त। अवैदिक दर्शन सम्प्रदाय में तीन दर्शन सम्प्रदाय प्रमुख हैं। जैसे – चार्वाक, बौद्ध और जैन। यहाँ पर साङ्ख्य दर्शन सम्प्रदाय का प्रकरण होने से इस प्रसङ्ग पर ही विचार किया जा रहा है।

यह साङ्ख्य शब्द यौगिक है। कदाचित् इसका प्रयोग नियम के रूप से तथा कदाचित् सङ्ख्या के विषय के रूप से वर्णित है। वस्तुतः इसकी तीन प्रकार की व्याख्या उपलब्ध होती है। जैसे - ज्ञान के अर्थ में, गणना के अर्थ में तथा दोनों के अर्थ में। इनमें से ज्ञानार्थक साङ्ख्य शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि धातु से अङ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। अतः सम्यक् ख्यानं ज्ञानं सङ्ख्या है। सङ्ख्या ही साङ्ख्य, जो प्रकृति और पुरुष का विवेक ज्ञान है। अमरकोष में कहा गया है कि :-

क० सङ्ख्यावान् पण्डितः कविः। (अमर० २/७/५)

ख० चर्चा सङ्ख्या विचारणे। (अमर० १/५/२)

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है कि :-

'ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।' (श्रीगीता०)

प्रमाण पूर्वक किसी भी विषय का गुण तथा दोष का विचार करना साङ्ख्य है, ऐसा महाभारत में कहा गया है। जैसे –

'दोषाणां च गुणानां च प्रमाणं प्रविभागतः।
किञ्चिदर्थाभिप्रायेण तत्साङ्ख्यमित्यभिधीयते।।'

आचार्य शङ्कर ने भी शुद्धात्मतत्त्वविज्ञान को साङ्ख्य कहा है। इस प्रकार ज्ञानार्थक सङ्ख्या शब्द से साङ्ख्यशब्द की उत्पत्ति बतायी जाती है।

इसी प्रकार गणनार्थक सङ्ख्या शब्द से भी साङ्ख्यशब्द प्रस्तुत किया जाता है। जैसे – पच्चीस तत्त्वों के इस दर्शन में गणना होने से यह दर्शन साङ्ख्य कहा जाता है। मत्स्यपुराण में भी कहा गया है कि :-

'साङ्ख्यं सङ्ख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते।'

परन्तु आचार्य विज्ञानभिक्षु आदि दार्शनिकों ने उभयार्थक स्वरूप वाले साङ्ख्य शब्द को ग्रहण किया है। बालगङ्गाधर तिलक ने भी इसी तत्त्व के समर्थन में कहा है कि –

'शब्दशास्त्रज्ञों का कथन है कि 'साङ्ख्य'शब्द सङ्ख्या धातु से बना है, इसलिए इसका पहला अर्थ 'गिनने वाला' है, और कपिल शास्त्र के मूलतत्त्व सिर्फ पच्चीस ही है। इसलिए उसे गिनने वाले के अर्थ में यह विशिष्ट नाम दिया गया। अनन्तर फिर साङ्ख्य शब्द का अर्थ बहुत व्यापक हो गया और उसमें सब प्रकार के तत्त्वज्ञान का समावेश होने लगा।'

इस प्रकार विवेक ज्ञान के निमित्त पच्चीस तत्त्वों का निर्देश होने से तत्त्वज्ञानार्थक हो अथवा गणनार्थक हो – उस सङ्ख्याशब्द से निष्पन्न साङ्ख्यशब्द है। उसको अधिकृत करके प्रवृत्त हुआ यह शास्त्र साङ्ख्यशास्त्र है।

आचार्य

साङ्ख्यदर्शन द्वैतवादी दर्शन के रूप में स्वीकृत है। परम्परा महर्षि कपिल को ही इस दर्शन के आदि प्रणेता के रूप से माना है। श्वेताश्वेतर उपनिषद् में इनको आर्ष द्रष्टा ऋषि कहा गया है। जैसे –

'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानं च पश्येत्।' (श्वेत०उप० ५/२)

श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि –

'साङ्ख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षि स उच्यते।' (श्रीमद्भा० ३३९/६/९)

यह कपिल वस्तुतः कौन है? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। इनको भगवान् विष्णु के अवतार के रूप से स्वीकार किया जाता है। श्रीद्भागवत में कहा गया है कि –

'कपिलस्तत्त्वसङ्ख्याता भगवानात्ममायया।।' (श्रीमद्भा० ३/२५/१)

'पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
प्रोवाचाऽसुरये साङ्ख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम्।।'

रामायण में भी साङ्ख्यशास्त्र के प्रणेता कपिल को माना गया है और वह भगवान् विष्णु का अवतार विष्णु का अवतार माना गया है। कर्दम ऋषि के पुत्र कपिल को साङ्ख्य शास्त्र के प्रवर्त्तक तथा विष्णु का अवतार माना गया है। पुराण पुरुष होने से इनका समय निश्चित नहीं है।

महर्षि कपिल के अनन्तर आसुरी इस दर्शन का प्रमुख आचार्य है। यह कपिल का शिष्य तथा पञ्चशिख का गुरु था। कपिल ने ही आसुरी को साङ्ख्यतत्त्व का उपदेश दिया था। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार प्राश्नी के पुत्र आसुरी थे। जैसे –

'प्राश्नीपुत्रादासुरीनिवासिनः।'

साङ्ख्यदर्शन में इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती है। परन्तु इनका नामोल्लेख साङ्ख्यकारिका में तथा अन्य व्याख्याग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

आसुरी ने पञ्चशिख को साङ्ख्य का उपदेश दिया था। और इन्होंने ही इस दर्शन को सुसङ्गत, सुसम्बद्ध एवं सुव्यवस्थित किया था। साङ्ख्यकारिका में आसुरी इनके गुरु के रूप से वर्णित है। इन्होंने षष्ठीतन्त्र पर एक व्याख्या लिखी थी, जो आज अनुपलब्ध है। इनका समय प्रायशः ई० पञ्चम शताब्दी मानी जाती है।

वस्तुतः अधुना उपलब्ध साङ्ख्य दर्शन ईश्वरकृष्ण की ही देन है। ईश्वरकृष्ण ने परम्परा से अपने गुरु से इस शास्त्र का अध्ययन किया था। इनका समय प्रायशः ईशा से द्वितीय शताब्दी मानी जाती है। इन्होंने ही साङ्ख्य दर्शन को सुव्यवस्थित तथा तत्त्वप्रधान रूप से बनाया था।

इस दर्शन सम्प्रदाय में जैगीषव्य, आवाट्य, देवल, वार्षगण्य आदि आचार्यों पर प्रकाश मिलता है। यह केवल कहीं कहीं नाम्ना ही उपलब्ध होता है।

कृतियाँ

साङ्ख्यदर्शन सम्प्रदाय में चार प्रमुख मौलिक ग्रन्थों का विवरण मिलता है। जैसे –

१. षष्ठितन्त्रम्, २. साङ्ख्यसूत्रम्, ३. साङ्ख्यकारिका, ४. तत्त्वसमाससूत्रम्।

१. षष्ठितन्त्रम् –

समग्र साङ्ख्य दर्शन में षष्ठितन्त्र एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह कपिल के द्वारा रचित है। इसी को आचार्य आदि शङ्कर ने भी कहा है कि –

'यदि ब्रह्मैवोपादानकारणं च ततः कपिलमहर्षिप्रणीतषष्ठितन्त्रस्य ... ।' (शा०भा० २/१/१)

चीनी परम्परा भी कपिल को षष्ठितन्त्र की रचयिता मानती है। परन्तु A.B. Keith ने इसका खण्डन किया है। जैसे –

Indeed, the Chinese tradition attributes to him the work known as shastitantra, though doubtless by an error.' Sankhya System, P. 50.

कुछ लोगों ने इसको पञ्चशिख की रचना माना है। परन्तु कपिल ही इसके रचयिता है, यह सर्वमान्य स्वीकृत है। आजकल यह प्रायशः अनुपलब्ध ही है। परन्तु इसका उल्लेख साङ्ख्यकारिका (का० ६९) में स्पष्टरूप से प्राप्त होता है। महर्षि कपिल ने इसका उपदेश आसुरि को दिया था, जो कि परम्परा से ईश्वरकृष्ण को प्राप्त हुआ और उसने ७० कारिकाओं से साङ्ख्यकारिका की रचना की।

२. साङ्ख्यसूत्रम् –

यह साङ्ख्यसूत्र महर्षि कपिल की रचना कही जाती है। इसमें ६ अध्याय हैं, इसलिए इसको षड्ध्यायी भी कहते हैं। कुछ दार्शनिक इसी को ही साङ्ख्यदर्शन के आदि ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। परन्तु कुछ दार्शनिक इसे अर्वाचीन मानते हैं। इसलिए यह १४ वीं शताब्दी के आस-पास की रचना मानी जाती है। कहा जाता है कि किसी दूसरे विद्वान् ने इसकी रचना करके कपिल के नाम से अभिहित कर दिया है।

इस साङ्ख्यसूत्र पर तीन टीका उपलब्ध होती है। जैसे –

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

क० अनिरुद्धवृत्ति :- अनिरुद्ध के द्वारा रचित यह व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध टीकाओं में सबसे प्राचीन है। यह विज्ञानभिक्षु से भी प्राचीन है। कुछ लोग इनका समय ११ वीं शताब्दी मानी है तथा साङ्ख्यसूत्र को विज्ञानभिज्ञु के द्वारा रचित मान कर इनका समय १७ वीं शताब्दी माना है।

ख० प्रवचनभाष्यम् :- यह आचार्य श्रीविज्ञानभिक्षु के द्वारा रचित है। इनका समय १७ वीं शताब्दी है। प्रचलित साङ्ख्यसूत्र की टीकाओं में यह सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण है।

ग० वृत्तिसार :- महादेव वेदान्ती के द्वारा रचित यह टीका अनिरुद्ध की वृत्ति पर लिखी हुई एक उपटीका है। इनका समय १७ वीं शताब्दी है। ये विज्ञानभिक्षु से परवर्त्ती है।

३. साङ्ख्यकारिका :-

ईश्वरकृष्ण से रचित यह कारिकामय ग्रन्थ उपलब्ध साङ्ख्यसाहित्य में सबसे प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह साङ्ख्यकारिका साङ्ख्यसप्तति, सुवर्णसप्तति, कणगसत्तरि आदि नामों से भी जानी जाती है। आजकल जो भी साङ्ख्यदर्शन के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, वै सब साङ्ख्यकारिका पर आश्रित हैं। केवल श्रीविज्ञानभिक्षु का साङ्ख्यसार ही मौलिक है। अन्य सभी साङ्ख्यकारिका की टीका है। अत: निर्विवाद ही यह साङ्ख्यकारिका को इस दर्शन का उपजीव्य ग्रन्थ के रूप से माना जा सकता है। इसमें कुल ७२ कारिका हैं। परन्तु कुछ दार्शनिक इसकी ७२ कारिकाओं पर प्रश्न उठाते हैं कि अन्तिम दो कारिका प्रक्षिप्त हैं। परन्तु यह समीचीन प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि इसकी ६८ कारिकाओं में साङ्ख्य के तत्त्वविवेचन हुआ है, तथा ६९ वीं कारिका प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रामाणिकता दिखाती है, ७० वीं कारिका इसके आचार्यों को निर्दिष्ट करती है, ७१ वीं कारिका शिष्य परम्परा के द्वारा इस मूल शास्त्र को ईश्वरकृष्ण तक पहुँचाने का सङ्केत करती है, ७२ वीं कारिका कपिल उपदिष्ट मूल ग्रन्थ के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना को द्योतित करके इसकी प्रामाणिकता पुष्ट करती है। अत: ७२ कारिका ही युक्तियुक्त है। गौडपाद ने जो ६९ कारिकाओं पर भाष्य लिखा वह निश्चित ही साङ्ख्य के तत्त्वों के विवेचन में ही प्रवृत्त हुआ जान पडता है।

इस साङ्ख्यकारिका पर अनेक टीकाओं की रचना की गयी है। उनमें से कुछ प्रमुख दी जा रही है।

क० माठरवृत्ति :-

माठर के द्वारा की गयी यह टीका सबसे महत्त्वपूर्ण टीका है। यह साङ्ख्यकारिका की सबसे प्राचीन टीका है। परवर्त्ती टीकाकार इस टीका को अपना आधार माना है। इसका रचना काल छठी शताब्दी मानी जाती है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल एवं सुबोध है। इसमें साङ्ख्यकारिका को साङ्ख्यसप्तति के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा ७३ कारिकाओं की व्याख्या की गई है। इसमें जो ७३ वीं कारिका है सम्भवत: वह माठर की अपनी हो क्योंकि किसी अन्य टीकाकार इस कारिका का उल्लेख नहीं किया है।

ख० युक्तिदीपिका :-

साङ्ख्यकारिका की यह सबसे महत्त्वपूर्ण टीका है। कुछ दार्शनिक इसे ईश्वरकृष्ण की रचना मानते हैं, तो कुछ अज्ञात कर्तृक मानते हैं। ॐ. एप्न ख्र्ल्र्सं जी से सम्पादित और अनुदित युक्तिदीपिका संस्करण में इसे वाचस्पाति कर्तृक माना गया है। वर्तमान उपलब्ध युक्तिदीपिका प्रत्येक कारिका पर उपलब्ध नहीं होती है। यह साङ्ख्यकारिका कारिकाओं के सबसे अधिक विस्तृत विवेचक है।

ग० गौडपादभाष्यम् :-

आचार्य गौडपाद के द्वारा की गई यह टीका, जो कि गौडपादभाष्य के नाम से जाना जाता है, एक प्रसिद्ध टीका है। इसका समय छठी शताब्दी के अन्त का हो सकता है। यह गौडपाद आदि शङ्कर के गुरु भगवद्पाद गौडपाद से भिन्न है। इन्होंने केवल ६९ कारिकाओं पर ही भाष्य लिखा है। यह टीका माठर वृत्ति के साथ साम्य है। जैसे लगता है कि प्रस्तुत टीका माठर वृत्ति इस टीका का उपजीव्य है।

घ० जयमङ्गला : -

यह टीका शङ्कर नामक किसी विद्वान् की है, जो कि ब्रह्मसूत्र भाष्यकार आदि शङ्कर से भिन्न है। वाचस्पति आदि टीकाकार ने अपनी टीका में इसका उल्लेख किया है। यह सप्तम शतक के आस-पास का है। यह टीका सङ्क्षिप्त होने पर भी अत्यन्त उपादेय है।

ङ० साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी :-

आचार्य वाचस्पति मिश्र के द्वारा प्रणीत यह टीका साङ्ख्यकारिका के समस्त टीकाओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अधुना विश्व में साङ्ख्यकारिका इस टीका के साथ अधिक पठ्यमान है। वाचस्पति प्रायश: सभी दर्शन सम्प्रदायों के ज्ञाता थे। इनका समय नवीं शताब्दी है। इसी टीका के ही उपटीका प्राप्त होते हैं। इनमें से बलराम उदासीन की 'विद्वत्तोषिणी', श्रीकृष्णवल्लभाचार्य की 'किरणावली' तथा कृत सारबोधिनी प्रमुख रूप से उपलब्ध होती है।

इस साङ्ख्यकारिका पर स्वामी नारायण तीर्थ की 'चन्द्रिका', स्वामी हरिहरानन्द आरण्यक की भास्वती उपलब्ध होती है।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

४. तत्त्वसमाससूत्रम् –

इसका रचयिता महर्षि कपिल को माना जाता है। इसमें १७ से २२ सूत्र हैं। कुछ दार्शनिक इसको पञ्चशिख की रचना मानते हैं। परन्तु दार्शनिकों ने इसका समय १४ वीं शताब्दी माना है और यह किसी अज्ञात लेखक की रचना के रूप में स्वीकार किया जाता है।

तत्त्वविचार

सम्पूर्ण भारतीय दर्शन वाङ्मय में साङ्ख्यदर्शन तत्त्वप्रधान दर्शन के रूप से स्वीकृत है। इस दर्शन में २५ तत्त्व स्वीकृत हैं। जैसे – पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्र और पाँच महाभूत। इन तत्त्वों को तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जाता है। जैसे – व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ। ये तत्त्व चार स्वरूप वाले होते हैं। जैसे –

क० अविकृति

ख० प्रकृतिविकृति

ग० विकृति

घ० न प्रकृति न विकृति

क० अविकृति –

प्रकरोतीति प्रकृतिः अथवा प्रकर्षेण सृष्टिक्रियां सम्पादयतीति प्रकृतिः। यह मूलप्रकृति के नाम से जानी जाती है। प्रकृति ही अविकृति है, क्योंकि यह किसी अन्य तत्त्व से उत्पन्न नहीं होती है। यह प्रधान, अव्यक्त, ब्रह्म, यातुधानक, प्रजापति आदि पर्याय वाचक नामों से जानी जाती है।

ख० प्रकृतिविकृति –

प्रकृतिविकृति का तात्पर्य है – जो किसी तत्त्व का कारण तथा कार्य हो। साङ्ख्य के पच्चीस तत्त्वों में से प्रकृतिविकृति स्वरूप वाले सात तत्त्व हैं। प्रकृति अर्थात् कारण एवं विकृति अर्थात् कार्य। जैसे – बुद्धि, अहङ्कार और पाँच तन्मात्राएँ। ये किसी से उत्पन्न हुए हैं तथा इनसे अन्य तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। इनमें से बुद्धि, जो कि महत् के नाम से जानी जाती है, प्रकृति से उत्पन्न हुई है और अहङ्कर को उत्पन्न की हुई है। अहङ्कार तत्त्व बुद्धि तत्त्व से उत्पन्न हुआ है और यह इन्द्रियों तथा तन्मात्राओं को उत्पन्न किया है। पाँच तन्मात्राएँ भी अहङ्कार से उत्पन्न हुए हैं तथा आकाशादि महाभूतों को उत्पन्न किये हुए हैं। जैसे – आकाश शब्दतन्मात्र से, वायु स्पर्शतन्मात्र से, अग्नि रूपतन्मात्र से, जल रसतन्मात्र से और पृथिवी गन्धतन्मात्र से उत्पन्न हुई से। इसलिए ये तत्त्व कार्य और कारण उभय स्वरूप वाले हैं।

ग० विकृति –

साङ्ख्यतत्त्वविचार में विकृति १६ हैं। ये केवल कार्य स्वरूप वाले हैं। जैसे – मन, श्रोत्र–त्वक्–चक्षु–जिह्वा–घ्राण – ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक्–पाणि–पाद–पायु–उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पृथिवी–जल–तेज–वायु–आकाश – ये पाँच महाभूत – इस प्रकार यह सोलह का समूह केवल विकार है, इनसे कोई तत्त्वन्तर उत्पन्न नहीं होता है।

घ० न प्रकृति न विकृति –

साङ्ख्यतत्त्वक्रम में पुरुष तत्त्व न किसी का कार्य है अथवा न ही किसी का कारण है। अर्थात् यह तत्त्व किसी से न तो उत्पन्न होता है और न ही किसी को उत्पन्न करता है। क्योंकि यह पुराण पुरुष नित्य, अविनाशी, असङ्ग, द्रष्टा तथा ज्ञ आदि स्वरूप वाला है।

इस प्रकार ये तत्त्व कुल मिलाकार २५ होते हैं, जिनके सम्यक् ज्ञान से कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

कार्य-कारणवाद (सत्कार्यवाद)

'सतः सज्जायते' अर्थात् कोई भी कार्य अपने कारण में सत् स्वरूप से रहता है, वह कारण कार्य को उत्पन्न नहीं करता है अपितु अभिव्यक्तमात्र करता है – यही सत्कार्यवाद है। यह सत्कार्यवाद साङ्ख्य दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है किन्तु विभिन्न दर्शनों के विद्वानों का इस विषय पर मतैक्य नहीं है।

बौद्ध दार्शनिकों का मत है कि 'असतः सज्जायते' अर्थात् असत्कारण से सत्कार्य उत्पन्न होता है। वे क्षणभङ्गवाद को मानते हैं, जैसे - 'यत् सत् तत् क्षणिकम्'। इसलिए वे कहते हैं कि सभी भाव पदार्थ क्षणिक है। कारण जब तक स्वयं नष्ट नहीं होता है, वह कार्य को उत्पन्न नहीं कर सकता है। जैसे – दुग्ध कारण के नष्ट होने पर ही दधिरूप कार्य का प्रादुर्भाव होता है।

नैयायिक कहते हैं कि 'सतोऽसज्जायते' अर्थात् सत्कारण से असत्कार्य की उत्पत्ति होती है। कार्य उत्पत्ति से पूर्व किसी भी रूप में विद्यमान नहीं रहता है, क्योंकि प्रागभाव का अभाव कार्य होता है।

वेदान्तियों के मतानुसार 'एकस्य सतो विवर्त्तः' अर्थात् एक ब्रह्म ही सत् है और यह दृश्यमान जगत् उसका विवर्त्त है, जो कि परमार्थतः असत् है।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

इस सभी मतों के खण्डन के लिए तथा स्वमत प्रतिष्ठापित करने के लिए साङ्ख्यकारिकाकार ने पाँच युक्तियाँ दी है। जैसे कहा गया है साङ्ख्यकारिका में –

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।। का० ९

अर्थात् कारण के कार्योत्पत्ति के अनुकूल व्यापार के पूर्व भी कार्य कारण में अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है। इसके लिए प्रस्तुत कारिका में पाँच युक्तियाँ दी गई है। जैसे –

क० असदकरणात् :-

न सद् असद्, न करण अकरण अर्थात् जो सत् नहीं है वह करण भी नहीं होता है। अत: जिस कारण में कार्य सद्रूप में न रहे वह करण अर्थात् असाधारण कारण या अतिशय साधक कारण नहीं हो सकता। क्योंकि कोई भी वस्तु सर्वथा नवीन उत्पन्न नहीं होती अर्थात् अभाव का भाव कथमपि नहीं हो सकता है। कहा भी है कि - 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:।' यदि कार्य अपने कारण में असत् है तो वस्तु सत् कैसे हो सकती है? जैसे – बालु में तेल नहीं रहता है, इसलिए प्रयत्न करने पर भी बालु से तेल की प्राप्ति नहीं होती है। पीड़न से तिलों से तेल, अवघात के कारण धान से चावल और दोहन करने से गाय से दुग्ध की प्राप्ति से सिद्ध होता है कि अभिव्यक्त होने से पूर्व भी तेल, चावल व दुग्ध की प्राप्ति से सिद्ध होता है कि अभिव्यक्त होने से पूर्व तेल, चावल व दुग्ध अपने-अपने कारणों में सद्रूप से विद्यमान थे।

ख० उपादनग्रहणात् :-

जो कार्य जिस कारण में रहे उसके लिए उसी अत्यन्त सम्बद्ध का ग्रहण किया जाता है। जैसे दधि रूप कार्य की निष्पत्ति के लिए उसके उपादान कारण दुग्ध का ही ग्रहण किया जाता है। क्योंकि कार्य अपने कारण में समवाय सम्बन्ध से रहता है। यदि कार्य को असद् मानेंगे तो उपादान कारण से उसका सम्बन्ध नहीं बन सकता है। इसलिए बिना सम्बन्ध से कोई किसी भी कारण से उत्पन्न नहीं किया जा सकता है।

ग० सर्वसम्भवाभावात् :-

यदि कार्य को किसी विशेष कारण में सत् नहीं मानेंगे तो किसी भी कारण से कोई भी कार्य उत्पन्न हो जाएगा परन्तु ऐसा सम्भव नहीं होता है। दुग्ध से घट की उत्पत्ति नहीं होती। मिट्टी से ही घट की उत्पत्ति सम्भव है। कार्य जिस कारण से सम्बद्ध होता है, उसी कारण से ही वह उत्पन्न होता है, अन्य से नहीं।

घ० शक्तस्य शक्यकरणात् :-

जो कारण जिस कार्य को उत्पन्न करने में समर्थ होता है वही कारण उस कार्य को उत्पन्न कर सकता है। जैसे समर्थ बीज से ही शक्य अङ्कुर की उत्पत्ति होती है। सशक्त कारण ही शक्य कार्य को उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार कारणकार्य में शक्तशक्य सम्बन्ध रहता है।

ङ० कारणभावात् :-

कार्य कारण मात्र से ही जाना जाता है। कारण की सत्ता भी कार्य की सत्ता को सिद्ध करने में हेतु है। दोनों में तादात्म्य है। कारण किसी भी वस्तु की अव्यक्तावस्था और कार्य व्यक्तावस्था होती है। जैसे दधिरूप कार्य अपने कारण दुग्ध में अव्यक्तावस्था में है और व्यक्तावस्था में दधि है। इस प्रकार दधि कार्य की अव्यक्तावस्था दुग्ध और व्यक्तावस्था दही है। दोनों ही रूपों में कार्य सत् है।

अत: उपर्युक्त सभी युक्तियों से सिद्ध होता है कि कार्य कारण में अव्यक्त रूप से रहता है। अत: कार्य सत् है। इस प्रकार सत्कार्यवाद की सिद्धि होती है।

प्रमाण विवेचन

'प्रमेयसिद्धि: प्रमाणाद्धि:' अर्थात् प्रमेय की सिद्धि प्रमाणों से ही होती है। प्रमा का अर्थ होता है ज्ञान अर्थात् अनधिगत विषय को ग्रहण करने वाला सन्देह तथा विपरीत बुद्धि से रहित ज्ञान ही प्रमा है। प्रमा के विषय को प्रमेय कहते हैं जिसकी सिद्धि के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है। क्योंकि कहा जाता है कि प्रमीयते अनेनेति प्रमाणम् अर्थात् प्रमा के विषय को सिद्ध करने वाले साधन को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण द्वारा ही यथार्थ ज्ञान किया जाता है। साङ्ख्य दर्शन में २५ तत्त्व प्रमेय है, जिन्हें प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम – इन तीन प्रमाणों से जाना जा सकता है। अन्य दर्शनों में कहे गये उपमानादि प्रमाण इन्हीं तीनों प्रमाणों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। इसलिए साङ्ख्य दार्शनिकों ने इन्हीं तीन प्रमाणों को अभीष्ट माना है। साङ्ख्यकारिका में कहा गया है –

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धि: प्रमाणाद्धि:।। का० ५

१. प्रत्यक्ष प्रमाण :-

'प्रतिविषयाऽध्यवसायो दृष्टम्' अर्थात् इन्द्रियाश्रित प्रत्येक विषय का सन्निकर्ष जन्य निश्चयात्मक ज्ञान दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष कहलाता है। अत: कहा गया है कि - 'विषयं विषयं प्रति वर्त्तत इति प्रतिविषयमिन्द्रियम्'। चित्त इन्द्रिय प्रणाली के द्वारा बाह्य अर्थ देश को आकर उस अर्थ के आकार में आकारित होकर प्रथम मन विषय गत अज्ञान को समाप्त

कर सङ्कल्पना करता है। अहङ्कार उस सङ्कल्प को अपना अभिमत देकर बुद्धि को निश्चय के लिए समर्पित कर देता है और बुद्धि उस ज्ञान का निश्चयात्मक स्वरूप बनाती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान में द्वार बनती हैं अन्त:करण के माध्यम से बुद्धि विषयों का ज्ञान करती है। बुद्धि प्रकृति जन्या होने से अचेतन होती है, तो यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह बुद्धि ज्ञान कैसे करती है? इसके समाधान में कहा जाता है कि पुरुष के साथ संसर्ग होने से वह बुद्धि चेतन के समान हो जाती है। बुद्धि में निश्चयात्मक ज्ञान होने पर वह उस ज्ञान को पुरुष पर उपचरित करा देती है। जिससे पुरुष बुद्धि में होने वाले ज्ञान को अपना मान लेता है और अज्ञान के कारण यह समझ लेता है कि यह ज्ञान मेरा है। जैसे प्रथम मन विषय देश जाकर घट के आकार में आकारित होकर सङ्कल्प करता है कि 'अयं घट:', और उस सङ्कल्पात्मक ज्ञान को अभिमत के अहङ्कार को सौंप देता है। अहङ्कार उस ज्ञान को अभिमत करते हुए बुद्धि के पास निश्चय के लिए समर्पण कर देता है। बुद्धि तब 'अयं घट:' यह ज्ञान निश्चय कर देती है। उसके उपरान्त बुद्धि उस ज्ञान को पुरुष पर उपचरित करा देती है, तब पुरुष अपने आपको 'घटमहं जानामि' इस प्रकारक ज्ञानी मानने लगता है। यह पौरुषेध बोध है।

२. अनुमान प्रमाण :-

अनुमान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कारिकाकार ने कहा है कि - 'तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम्'। अर्थात् जहाँ लिङ्ग और लिङ्गी अर्थात् व्याप्य और व्यापक के सम्बन्ध से यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है उसे अनुमिति प्रमा कहते हैं और यह जिससे उत्पन्न होता है उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं। लीनमर्थं गमयति इति लिङ्गम् – इस व्युत्पत्ति के आधार पर लिङ्ग व्याप्य होता है। लिङ्गमस्यास्तीति लिङ्गी – इस व्युत्पत्ति के आधार पर लिङ्गी साध्य होता है। जैसे – जहाँ जहाँ धूम है, वहाँ वहाँ आग है – इसमें धूम के दर्शन से पर्वत में वह्नि का अनुमित्यात्मक ज्ञान होता है। अनुमिति परोक्ष ज्ञान है, जिसके कारण यह व्याप्ति के आधार पर किया जाता है। 'साहचर्यनियमो व्याप्ति:' अर्थात् दो वस्तुओं के नियत साहचर्य को हम व्याप्ति कहते हैं। अर्थात् हेतु और साध्य में नियत साहचर्य होने पर ही दोनों में व्याप्ति सम्बन्ध गृहीत होता है। इस प्रकार धूम व्याप्य को पर्वत पक्ष में देखकर व्यापक वह्नि का अनुमान द्वारा ज्ञान किया जाता है, क्योंकि उन दोनों में व्याप्ति है। अनुमान के तीन भेद होते हैं। जैसे – क० पूर्ववत्, ख० शेषवत् और ग० सामान्यतोदृष्ट।

क० पूर्ववत् अनुमान :-

पूर्वमस्यास्तीति पूर्ववत् अर्थात् पूर्व कारण को देख कर कार्य का ज्ञान करना है। जैसे – पर्वतो वह्निमान्, धूमत्वात्। इस उदाहरण वाक्य में पर्वत पक्ष प्रदेश में हेतु धूम को देखकर वह्नि साध्य का अनुमित्यात्मक ज्ञान किया जा रहा है। यहाँ पर पूर्व में कारण और कार्य के नियत साहचर्य को देखकर पर्वत पक्ष में कारण धूम के दर्शन के अनन्तर व्याप्ति स्मरण पूर्वक साध्य वह्नि की अनुमिति होती है कि पर्वत: वह्निमान्।

ख० शेषवत् अनुमान :-

शेष अस्यास्तीति शेषवत् अर्थात् परिशेष के आधार पर किया गया अनुमान शेषवत् है। अर्थात् सर्वत्र निषेध करके जहाँ अन्यत्र सम्भावना न होने के कारण शेष पदार्थ में उसका ज्ञान निश्चित कर लेना। अथवा कार्य को देखकर कारण का ज्ञान करना ही शेषवत् है। जैसे समुद्र से एक पल जल का आस्वादन से स्वीकृत लवणत्व शेष जल का भी लवणत्व शेषवत् है। अथवा प्रतक्ष से वृष्टि का दर्शन न होने पर भी नदी की पूर्णता को देखकर पूर्व में वृष्टि की अनुमिति करना शेषवत् है।

ग० सामान्यतो दृष्ट :-

जो सामान्य पहले प्रत्यक्ष का विषय न बना हो अर्थात् जिसका स्वलक्षण दृष्ट न हो, उस सामान्य विशेष का दर्शन ही सामान्यतो दृष्ट अनुमान है। जिस प्रकार रूप, रस आदि विषयक यद्यपि करण अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही उत्पन्न होता है, परन्तु ज्ञानेन्द्रियों का विशिष्टरूप प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, क्योंकि इन्द्रियत्व विशिष्ट करण का कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता है।

३. आगम प्रमाण :-

इसका स्वरूप निर्वचन करते हुए कारिकाकार ने कहा है कि 'आप्तश्रुतिराप्तवचनं तु'। आप्त का अर्थ है कि यथार्थ वक्ता और श्रुति का अर्थ है वेद। वाक्य से उत्पन्न वाक्यार्थ ज्ञान, उसके द्वारा कहा गया आप्त वाक्य भी प्रमाण होता है। जैसे वेद तथा उसका आश्रय लेकर लिखे गये स्मृति, इतिहास आदि के वाक्य आप्त वाक्य होते हैं। जैसे – स्वर्ग में देवराज इन्द्र है। उत्तर में कुरुदेश है।

इस प्रकार साङ्ख्य दर्शन में प्रमाणों की चर्चा की गई है।

प्रकृति

साङ्ख्य दर्शन में प्रतिपादित २५ तत्त्वों में से प्रकृति प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण है। यह सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण – इन तीनों गुणों की साम्यावस्था में सिद्ध होती है। इसी को स्पष्ट करते हुए कारिकाकार ने कहा है कि - 'मूलप्रकृतिरविकृति:'। यह अव्यक्त, ब्रह्म,

प्रजापति, यातुधानक आदि नामों से भी जानी जाती है। प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए कारिकाकार ने कहा है कि –

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।।

कार्य कारण की सत्ता का बोधक होता है। प्रकृति के कार्य महदादि त्रिगुणात्मक है तो उनका कारण प्रकृति भी त्रिगुणात्मिका होगी। महदादि तत्त्व सुखदुःखमोहात्मक अविवेकी आदि धर्म वाले होते हैं। इसलिए प्रकृति भी इसी प्रकार के स्वभाव वाली अर्थात् सुखदुःखमोहात्मक और अविवेक्यादि धर्म वाली होगी ऐसा अनुमान प्रमाण से सिद्ध होता है। कार्य तथा कारण में तादात्म्य होने से महदादि कार्य के गुणात्मक ही कारण प्रकृति होती है, इससे अव्यक्त की सत्ता सिद्ध होती है।

प्रकृति में कुछ धर्म पुरुष के सदृश भी है, जैसे – जगत् की समस्त वस्तुएँ अर्थात् व्यक्ततत्त्व हेतुमत्, अनित्य, अव्यापि, सक्रिय, अनेक, कारण पर आश्रित रहने वाली, लिङ्ग, सावयव और परतन्त्र है। परन्तु अव्यत्ततत्त्व इनसे धर्मो से विपरीत है। जैसे – प्रकृति अहेतुमत् है अर्थात् इसका कोई कारण नहीं है। प्रकृति नित्य है अर्थात् यह मूलकारण है जिसका कभी भी तिरोभाव नहीं होता है। प्रकृति व्यापक है अर्थात् समस्त कार्यों में व्याप्त रहती है। प्रकृति निष्क्रिय है अर्थात् उसके विकार ही कार्य करते हैं, वह स्वयं नहीं करती। प्रकृति एक है अर्थात् उसका कोई सजातीय भेद नहीं है। प्रकृति अनाश्रित है अर्थात् यह किसी कारण पर आश्रित नहीं रहती है, क्योंकि यह स्वयं मूलप्रकृति है। प्रकृति अलिङ्ग है अर्थात् अपने किसी कारण का बोधक नहीं है। प्रकृति निरवयव है अर्थात् किसी से संयुक्त नहीं है। प्रकृति स्वतन्त्र है अर्थात् अपने कार्य के लिए किसी की अपेक्षा नहीं रखती है। इस अव्यक्त की सिद्धि के लिए कारिकाकार पाँच युक्तियाँ उपस्थापन करतो हैं। जैसे –

भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागात् वैश्वरूपस्य।।

भेदानां परिमाणात् :-

महदादि जो कार्य हैं उनके परिमित होने के कारण उनका एक व्यापक हेतु अव्यक्त ही है। घट आदि का कारण पृथिवी अपरिमित है।

समन्वयात् :-

कार्य और कारण भिन्न होने पर भी किसी धर्म में सादृश्य को समन्वय कहते हैं। जैसे बुद्ध्यादि की परस्पर भिन्नता होने पर भी त्रिगुणात्मकरूप से समानता है। इनके इस स्वभाव के कारण त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही है।

शक्तितः प्रवृत्तेः :-

जो कारण जिस कार्य को उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखता है उस कारण से वही कार्य प्रकट होता है। जैसे पट तन्तुओं से ही उत्पन्न होता है, मिट्टी आदि से नहीं। अतः जिससे महदादि व्यक्त का आविर्भाव होता है वह ही मूल प्रकृति है।

कारणकार्यविभागात् :-

कारण से ही कार्य आविर्भूत होता है। जैसे घट आदि कार्य मिट्टी आदि अपने-अपने कारणों से आविर्भूत होते हैं और प्रलय अर्थात् विनाश के समय भी अपने-अपने कारणों में तिरोहित हो जाते हैं। महदादि भी इसी प्रकार अपने-अपने कारणों से आविर्भूत होकार पुनः उन्हीं कारणों में लीन हो जाते हैं।

अविभागात् वैश्वरूपस्य :-

महद् आदि नानारूप जो कार्य जगत् है वह अविभाग होने से अर्थात् प्रलयावस्था में स्वकारण में लीन होकर अव्यक्तरूप से विद्यमान रहते हैं। इसलिए इन सबके मूल कारण अव्यक्त प्रकृति की सत्ता स्वीकार करनी पडेगी।

इस प्रकार प्रकृति की सत्ता का अवधारण किया जाता है।

पुरुष

साङ्ख्य दर्शन में तीनों दुःखों का विघात करने के लिए व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ – इन तीनों तत्त्वों का विशेष ज्ञान होना आवश्यक बताया गया है। महदादि २३ तत्त्व - व्यक्त, प्रकृति - अव्यक्त तत्त्व और ज्ञ - पुरुषतत्त्व है। किसी भी मनुष्य का परमोद्देश्य दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति से ही होती है, जो कि २५ तत्त्वों के ज्ञान के बिना सम्भव नहीं हो सकती है। यह पुरुष तत्त्व साङ्ख्य दर्शन में प्रमुख तत्त्व है।

पुरुष का स्वरूप :-

पुरुष प्रकृति तथा महदादि से विपरीत गुणों वाला है। प्रकृति और महदादि तत्त्व अविवेकी, त्रिगुणात्मक, विषय, सामान्य, अचेतन, प्रसवधर्मि है। पुरुष इसके विपरीत अत्रिगुण है अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रकृति के हैं। पुरुष त्रिगुणातीत होता है, क्योंकि पुरुष असङ्ग है। साङ्ख्यसूत्र में कहा गया है कि - 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः'। पुरुष विवेकी, साक्षी तथा निर्गुण होता है। पुरुष अविषय है क्योंकि यह किसी का भोग्य नहीं

होता है। पुरुष चेतन है, क्योंकि यह सुख, दु:ख आदि का ज्ञान करने में समर्थ है। प्रकृति इस पुरुष की चेतनता से संयुक्त होकर ही प्रवृत्त होती है। इस पुरुष के स्वरूप के विषय में कारिका में कहा गया है कि –

त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।।

कुछ विशेषताएँ प्रकृति और पुरुष के समान भी है। जैसे प्रधान की तरह पुरुष भी अहेतुमान्, नित्य, व्यापि, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्ग, निरवयव तथा स्वतन्त्र है। पुरुष साक्षी, द्रष्टा तथा अकर्त्ता भी है। सुख, दु:ख से रहित उदासीन है तथा प्रकृति के बन्धनों से मुक्त है। परन्तु बुद्धि द्वारा समस्त ज्ञान पुरुष पर उपचरित कराने के कारण प्रकृति के सुख, दु:ख आदि को अपना मानकर विविध भोगों को भोगता है। वस्तुत: पुरुष न बन्धता है, न हि मुक्त होता है। साङ्ख्यकारिका में कहा गया है कि –

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति:।।

पुरुष की सत्ता

पुरुष की सत्ता का ज्ञान अनुमान प्रमाण से सम्भव है। इसलिए साङ्ख्यकारिका ने पाँच हेतु दिया है, जिन हेतुओं से पुरुष की सत्ता की सिद्धि की जा सकती है। जैसे –

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।

सङ्घातपरार्थत्वात् :-

यह महदादि सङ्घात पुरुष के लिए होने से पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है। प्रकृति आदि सभी तत्त्व जड़ है। परस्पर संयुक्त होकर ये कार्य का निष्पादन करते हैं। अव्यक्त, महतत्त्व और अहङ्कार आदि सङ्घात किसी अन्य के लिए हैं। ये स्वयं अपना उपभोग नहीं करते हैं। जैसे – शय्या, आसन, लेप आदि अपने लिए न होकर दूसरे के उपयोग के लिए होते हैं। एकमात्र पुरुष ही इन सबका उपभोग कर्त्ता बन सकता है। इसलिए महदादि तत्त्व भी अन्य पुरुष के लिए होने से पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है।

त्रिगुणादिविपर्ययात् :-

अव्यक्त आदि अविवेकी, अचेतन तथा त्रिगुणात्मक हैं। परन्तु त्रिगुण में तादात्म्य भी है। फिर भी इन गुणों में न्यूनाधिक्य रहता है। किसी में सत्त्वगुण की अधिकता रहती है तो किसी में रजोगुण की अधिकता और किसी में तमोगुण की अधिकता। जिसमें यह त्रिगुण नहीं रहता है अर्थात् जिस तत्त्व में त्रिगुण नहीं रहता वह तत्त्व पुरुष तत्त्व है यह सिद्ध होता है।

अधिष्ठानात् :-

इस संसार में त्रिगुणात्मक पदार्थ जितने भी हैं उनका अधिष्ठाता कोई उनसे अतिरिक्त होना चाहिए। क्योंकि अचेतन पदार्थ चेतन से ही अधिष्ठित होकर क्रियाशील होता है। जैसे अचेतन रथ तभी क्रियाशील होगा जब चेतन सारथि उस रथ पर अधिष्ठित होगा। इसलिए सुखदु:खमोहात्मक महदादि तत्त्वों का भी कोई न कोई अधिष्ठाता अवश्य है, जो कि इनसे भिन्न है। अत: पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है।

भोक्तृभावात् :-

भोग्य और भोक्त के भाव से यह सिद्ध होता है कि कोई भोक्ता अवश्य होगा। यहाँ पर महदादि तत्त्व भोग्य हैं। ये किसी न किसी भोक्ता की अपेक्षा रखते हैं। यह तत्त्व पुरुष तत्त्व ही हो सकता है। अत: यह सिद्ध होता है कि पुरुष है।

कैवल्यार्थं प्रवृत्ते: :-

पुरुष की सत्ता है इसकी सिद्धि कैवल्ये के प्रति प्रवृत्ति होने के कारण भी होती है। कैवल्य का अर्थ है कि केवली भाव को प्राप्त होना अर्थात् यह भी कह सकते हैं कि अपने स्वरूप में स्थित रहना। कैवल्य को शास्त्रकारों ने दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है। सुख, दु:ख आदि का कैवल्य नहीं हो सकता है क्योंकि इनका स्वरूप सुखदु:खात्मक ही है। यदि ये अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाएँ, तो सुख अथवा दु:ख की होगी जो कि कैवल्य नहीं कहा जा सकता। अत: जो कैवल्य के प्रति प्रवृत्त होता है, वह महदादि तत्त्वों से भिन्न पुरुष तत्त्व है।

इस प्रकार पुरुष तत्त्व की सत्ता का अवधारण किया जाता है।

पुरुष बहुत्व :-

साङ्ख्य दर्शन में प्रतिपादित २५ तत्त्वों में से पुरुष तत्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह उदासीन, द्रष्टा, ज्ञ, साक्षी तथा प्रकृति के बन्धनों से रहित होता है। इस दर्शन में इसको असङ्ग माना गया है। अब यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि पुरुष एक होता कि पुरुष एक ही होता है अथवा अनेक होते हैं? इसके समाधान में साङ्ख्यकारिकाकार ने निम्न कारिका प्रस्तुत किया है। जैसे –

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव।।

अर्थात् जन्म, मृत्यु और इन्द्रियों की प्रत्येक पुरुष के साथ नियत होने से, सभी पुरुषों का एक साथ किसी कार्य प्रवृत्त न होने के कारण और त्रैगुण्य अर्थात् सत्त्वादि तीनों गुणों का भेद होने के कारण पुरुष अनेक हैं, ऐसा सिद्ध होता है। इनकी क्रमश: नीचे व्याख्या की जा रही है।

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमात् :-

यदि पुरुष एक ही होता तो बुद्धि एक समान होती। शास्त्रों में नवीन शरीर, इन्द्रिय, मन, अहङ्कार तथा बुद्धि आदि के सङ्घात के साथ सम्बन्ध जन्म कहलाता है। और प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद ही मरण है अर्थात् देह का विच्छेद मात्र को मरण कहते हैं। यद्यपि पुरुष अपरिणामी है तथापि प्रत्येक पुरुष में जन्म, मरण और करण की पृथक्-पृथक् व्यवस्था है। यदि एक पुरुष में सभी शरीरों को माना जाए अथवा एक पुरुष को ही सभी शरीरों में माना जाए तो एक के उत्पन्न होने पर सभी शरीर उत्पन्न हो जाते। एक शरीरधारी के मृत्यु होने पर समस्त शरीरधारियों की मृत्यु होनी चाहिए। यदि एक अन्धा हो जाए तो सभी पुरुष अन्धे हो जाएँगे। यदि शरीरधर्म व इन्द्रियधर्म के पश्चात् बुद्धिधर्म से भी यदि एक पुरुष का चित्त विरुद्धार्थग्राहक अथवा चित्त विनष्ट हो जाए, तो सभी पुरुष ही पागल अथवा उदासीन हो जाने चाहिए। परन्तु यह अव्यवस्था नही देखी जाती। अत: यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक शरीर का अधिष्ठाता पुरुष एक नहीं, अपितु अनेक है।

अयुगपत् प्रवृत्तिः -

सभी प्राणियाए की किसी कार्य में एक साथ प्रवृत्ति नहीं होती है। प्रवृत्ति अन्त:करण का धर्म है। यदि पुरुष एक होता, तो एक के उठने, बैठने, हंसने, रोने, खाने, पीने पर सभी उठने, बैठने, हंसने, रोने, खाने तथा पीने लग जाते। परन्तु ऐसा नहीं होता है। कोई पुरुष धर्म में प्रवृत्त होता है, तो कोई अधर्म का आचरण करता है। कोई पढता है, तो कोई सोता है। अत: सिद्ध होता है कि पुरुष एक नहीं, अपितु अनेक है।

त्रैगुण्यविपर्ययात् :-

त्रैगुण्यों का विपर्यय भी पुरुष बहुत्व क सिद्धि में हेतु है। प्रत्येक पुरुष पृथक्-पृथक् विशेषताओं से युक्त होता है, क्योंकि उनमें सत्त्व आदि गुणों का न्यूनाधिक्य रहता है। जिनमें सत्त्वगुण की अधिकता है, वे पुरुष शान्त प्रवृत्ति, देववृत्ति के प्राणि होते हैं। किसी में रजोगुण की अधिकता देखी जाती है, तो वो राजसी कहलातें हैं और किसी अन्य में तमोगुण की प्रधानता देखी जाती है, तो वे तामसी कहलाते हैं। इस प्रकार गुणों के आधिक्य के कारण कोई सुखी होता है, तो कोई दु:खी और अन्य मोह से ग्रसित होता है।

इस प्रकार आलोचन करने पर यह सिद्ध होता है कि पुरुष अनेक है, न कि एक।

सृष्टिप्रक्रिया

पुरुष असङ्ग है किन्तु उसे कर्त्ता भी कहा गया है। प्रकृति अचेतन है किन्तु पुरुष की सन्निकटता से चेतनवती हो जाती है। बुद्धि आदि के रूप में परिणत हुए गुण ही क्रियावान् है फिर भी बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने के कारण उदासीन होता हुआ पुरुष भी कर्त्ता सा जान पड़ता है। इससे 'घटमहं जानामि' इस प्रकार का व्यवहार बनता है। अब प्रश्न उठता है कि ये दोनों संयोग क्यों करते हैं? क्योंकि जब कोई संयोग करेगा तो उसकी कोई न कोई इच्छा अथवा प्रयोजन अवश्य होता है। इसी प्रकार पुरुष और प्रकृति का संयोग भी परस्पर उपकार के लिए होता है। इन दोनों का संयोग पङ्गु और अन्धे के समान होता है। पुरुष चाहता है कि प्रकृति का यथावत् दर्शन करें, प्रकृति चाहती है कि पुरुष कैवल्य को प्राप्त हो। पुरुष के द्वारा प्रकृति का दर्शन और प्रकृति के द्वारा पुरुष का अपवर्ग इनके संयोग का आधार है। ईश्वरकृष्ण ने भी कहा है कि –

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पंग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृत: सर्ग:।।

प्रकृति भोग्या है और पुरुष भोक्ता है। पुरुष कैवल्य चाहता है। बिना प्रकृति को समझे कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार अन्धा और लङ्गड़ा मिलकर अपने कार्य की सिद्धि करते हैं, उसी प्रकार पुरुष और प्रकृति भी संयोग करके सृष्टि को प्रारम्भ करते हैं। अब यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि इनका संयोग होने पर महदादि की सृष्टि किस कारण से हुई? इसके समाधान में कहते हैं कि महदादि की सृष्टि के बिना भोग तथा कैवल्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अत: संयोग ही इनकी सृष्टि में कारण है। कहा भी गया है कि –

विना सर्गेण बन्धो हि पुरुषस्य न युज्यते।
सर्गस्तस्यैव मोक्षार्थमहो साङ्ख्यस्य सूक्तता।।

प्रकृति से महद्, महत्तत्त्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है। इस अहङ्कार के भूतादि वैकृत, भूतादि तैजस तथा अभिमान आदि पर्याय हैं। उस अहङ्कार से सोलह स्वरूपवाला समूह उत्पन्न होता है। वह जैसे – शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र आदि। ये तन्मात्र सूक्ष्म पर्याय वाली है। उस (अहङ्कार) से ग्यारह इन्द्रियाँ

उत्पन्न होती हैं। जैसे – श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। और उभयात्मक मनस् है। यह सोलह का समूह अहङ्कार से उत्पन्न हुआ है। और फिर इस सोलह की पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। जैसे कहा गया है – शब्दतन्मात्र से आकाश, स्पर्शतन्मात्र से वायु, रूपतन्मात्र से तेजस्, रसतन्मात्र से जल, गन्धतन्मात्र से पृथिवी – इस प्रकार पाँचों परमाणुओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। कारिका में कहा गया है कि –

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोड़शकः।
तस्मादपि षोड़शकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि॥

यहाँ पर दो प्रकार के सर्ग की कल्पना की जाती है। जैसे – १. प्रत्यय सर्ग, २. तन्मात्र सर्ग। प्रत्यय सर्ग के अन्तर्गत धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यादि जो कि बुद्धि परिणाम है और ये क्रमशः विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि के रूप में परिणत हो जाते हैं। यही भाव सर्ग बौद्धिक सृष्टि है। बुद्धि, अहङ्कार, मन, दश इन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्राएँ स्थूलशरीर में बिना किसी भोग के रहती है। महाप्रलय में जब स्थूलशरीर लय को प्राप्त होता है, तो सूक्ष्मशरीर उस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।

प्रत्यय सर्ग

साङ्ख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति से महदादि भूत पर्यन्त तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इस में बुद्धि के सर्ग को प्रत्यय सर्ग नाम की परिभाषा से जाना जाता है। यह प्रत्यय सर्ग चार भाग में विभक्त है। जैसे –

क० विपर्यय, ख० अशक्ति, ग० तुष्टि, घ० सिद्धि

कहा भी गया है कि –

पञ्च विपर्ययभेदाः भवन्त्यशक्तिस्तु करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदाः तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः॥

क० विपर्यय :-

बुद्धि को प्रत्यय कहते हैं, क्योंकि सभी पदार्थों की प्रतीति का हेतु बुद्धि ही है। प्रतीयतेऽनेनेति प्रत्ययः। उसका सर्ग उसमें विपर्यय हो जाना अज्ञान कहलाता है। यह भी बुद्धि का धर्म है। गौड़पाद ने इसे संशय कहा है। जैसे स्तम्भ को देखकर स्तम्भ अथवा पुरुष का संशय उत्पन्न होना। इसके पाँच भेद होते हैं। जैसे – तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। ये पाँचों पुनः अपने अपने भेदों को पाकर विपर्यय के ६२ भेद हो जाते हैं। जैसे तमस् के ८ भेद, मोह के ८ भेद, महामोह के १० भेद, तामिस्र के १८ भेद और अन्धतामिस्र के १८ भेद होते हैं। कहा भी गया है कि –

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः॥

ख० अशक्ति :-

ज्ञान की प्राप्ति के लिए असमर्थ होने का अशक्ति कहते हैं। यह करणों की विकलता के कारण होता है। इसके २८ भेद होते हैं। जैसे कहा गया है –

एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम्॥

किसी संशयात्मक ज्ञान का दूर न कर पाना ही अशक्ति है।

ग० तुष्टि :-

संशयात्मक ज्ञान का यथार्थज्ञान में सिद्धि न करते हुए उसमें ही तुष्ट हो जाना तुष्टि कहलाता है। विषयों से उपरम कराने के कारण बाह्य तुष्टियाँ पाँच है और चार तुष्टियाँ आध्यात्मिक हैं। प्रकृति, पुरुष आदि भिन्न है, यह जानकर भी किसी असत् उपदेश के कारण विवेकख्याति के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा प्रवृत्त न होना तुष्टि है। अर्थात् उदासीन भाव को प्राप्त होकर न जानने की चेष्टा करना तुष्टि है। इसके नौ भेद, जैसे कारिका में कहा गया है कि –

आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।
बाह्याः विषयोपरमात्पञ्च नव तुष्टयोऽभिमताः॥

घ० सिद्धि :-

परम पुरुषार्थ की निष्पत्ति में द्वार सिद्धि है। पूर्व में कहे गये तीन विपर्यय, अशक्ति तथा तुष्टि – इसके अङ्कुश के समान वशीकारक है। ज्ञान की प्राप्ति सिद्धि है। सिद्धियाँ ८ प्रकार की है। जैसे कारिका में कहा गया है –

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविधातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
धनं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः॥

अतः यह स्पष्ट होता है कि सत्कार के साथ सिद्धि का सेवन करना चाहिए। परन्तु उसके निवारण में कारण बनने वाली विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि का परित्याग कर देना

चाहिए। क्योंकि सिद्धि प्राप्ति के पश्चात् तत्त्वज्ञान तथा तत्त्वज्ञान के अनन्तर मोक्ष की प्राप्ति होना निश्चित है।

कैवल्य

इस संसार में सभी मनुष्य तीन प्रकार के दु:खों से पीड़ित है। प्रत्येक मनुष्य इन दु:खों के विनाश के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता है। किन्तु कोई भी उपाय ऐसा नहीं है जिससे इन दु:खों की आत्यन्तिक तथा ऐकान्तिक निवृत्ति हो। इन दु:खों का विघात करने के लिए दर्शनशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। सभी दर्शनों ने सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए अपने अपने ढ़ंग से व्यवस्था दी। साङ्ख्य दर्शन में कहा गया है कि इन तीनों दु:खों का कारण अज्ञान है। जब तक मनुष्य व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ का अर्थात् २५ तत्त्वों का ज्ञान न कर लें, तब तक उसको अपवर्ग अथवा कैवल्य प्राप्त नहीं हो सकता है।

अपवर्ग कर्म जन्य नहीं है, क्योंकि कर्म अच्छ या बुरा होता है। जैसा भी हो बन्धन को देने वाला ही होगा, क्योंकि धर्म आदि निष्पन्न होने से ब्राह्म आदि ऊर्ध्व लोकों अर्थात् स्वर्ग आदि की प्राप्ति होगी और अधर्म आदि के आचरण से प्रकृतिलय ही होगा। कहा भी गया है कारिका में –

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चाऽपवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः।।

अपवर्ग केवल ज्ञान ही दे सकता है। ज्ञान से तात्पर्य २५ तत्त्वों का ज्ञान। प्रकृति और उसके विकारी का ज्ञान ही विवेक है। प्रकृति तभी तक भोग उत्पन्न करती है, जब तक कि पुरुष में विवेकख्याति उत्पन्न न हो। विवेकख्याति हो जाने पर प्रकृति उस पुरुष से अपना माया जाल हटा लेती है।

पुरुष शुद्ध, बुद्ध, मुक्त तथा चैतन्यवान् है। बन्ध, मोक्ष तथा जन्म-मरण प्रकृति का होता है। 'तस्मान्न बध्यतेऽद्धा ...' इत्यादि कारिका से स्पष्ट है। पुरुष अपने अज्ञान के कारण ही प्रकृति तथा प्रकृति से होने वाला गुणत्रय जन्य सुख तथा दु:ख आदि को अपना समझ लेता है। जिससे 'ये मेरे हैं', 'मैं जानता हूँ' – इस प्रकार अभिमान करता हुआ इन सुख, दु:ख आदि का भोग करता है। प्रकृति अज्ञान, धर्म, अधर्म, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य से अपने आपको पुरुष के साथ बन्धन में ड़ाल लेती है और ज्ञान से अपने आपको मुक्त कर लेती है। जिससे पुरुष कैवल्य अर्थात् अपने ही स्वरूप में अवस्थित रह जाता है। पाँच तत्त्वों से स्थूलशरीर तथा बुद्धि आदि तथा इन्द्रियाँ सूक्ष्मशरीर का बार-बार जन्म होता रहता है, जब तक कि पुरुष कैवल्य को प्राप्त न कर ले। पुरुष जब ज्ञान का आश्रय लेकर निरन्तर मनन करता है तो विवेकख्याति की उत्पत्ति हो जाती है। कहा भी गया है –

एवं तत्त्वाभ्यासान्नाऽस्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।।

अर्थात् तत्त्वज्ञान के अभ्यास से 'नास्मि' - मैं क्रियावान् नहीं हूँ। 'न मे' – न कुछ मेरा है, 'नाहम्' – मैं कर्त्ता नहीं हूँ – इस प्रकार के विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है। तत्त्वज्ञान की विशुद्धता से तात्पर्य भ्रान्ति राहित्य से है। विपर्यय आदि के अभाव से विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार का ज्ञान होने पर कि प्रकृति उससे पृथक् है, पुरुष ये जानकर निरासक्त तथा निर्लिप्त होकर द्रष्टा की भाँति केवल प्रकृति की कार्यों का अवलोकन करता है। इस प्रकार पुरुष के द्वारा देख ली गई है – ऐसा जानकार प्रकृति भी पुरुष के प्रति अपनी लीला को समाप्त कर देती है, जिस प्रकार रङ्गशाला में नर्त्तकी अपना नृत्य दिखाने के पश्चात् निवृत्त हो जाती है। कहा भी गया है कि –

रङ्गस्य इत्युपेक्षक एको दृष्टाऽहमित्युपरमत्येका।
सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य।।

सम्यक् सम्बोध अर्थात् विवेकख्याति के प्राप्त हो जाने पर धर्म-अधर्म आदि कर्मों का बीजत्व ध्वंस हो जाता है। शेष संस्कारों के सामर्थ्य से केवल शरीर का निर्वाह करता है। जिस प्रकार कुम्हार का चक्र पिछले दण्ड से लगाए गये वेग के कारण पुनः वेग न देने पर भी घूमता रहता है, उसी प्रकार पिछले कर्मों के संस्कार के कारण शरीर यात्रा चली रहती है। इस प्रकार जीवन्मुक्त की दशा में शरीर छूट जाने पर ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दोनों प्रकार के दु:खों से मुक्ति मिल जाती है। इस अवस्था में सूक्ष्मशरीर से पहले ही विनिवृत्ति हो जाने पर पुरुष केवली भाव को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार भूने हुए बीज में अङ्कुरोत्पादनता का असामर्थ्य होता है, उसी प्रकार उसे भी देहान्तर प्राप्ति नहीं होती है। मृत्यु के पश्चात् वह विदेह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। कहा भी गया है कि –

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।।

प्रस्तुत पुस्तक 'साङ्ख्यकारिका' जो वर्त्तमान में आप सबके सामने है, इसमें हमने अन्वय, अनुवाद, संस्कृत व्याख्या, गौड़पाद भाष्य, भाष्य के अनुवाद तथा आवश्यकता के अनुसार टिप्पणी भी दी है। इसमें प्रयुक्त संस्कृत-हिन्दी टीका का नाम हम ने अपने पूज्य पितीजी श्रीयुक्त नरहरि षड़ङ्गी जी के नाम रखा है। इस पुस्तक के प्रकाशन में अनेक

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

वरेण्य विद्वानों का मुझे आशीर्वाद मिला, जिनके आशीर्वाद को पाथेय मान कर हम ग्रन्थ के प्रकाशन में अग्रसर हुए। हम अपने पूज्य गुरुजी डॉ० स्वामी अरूपानन्द दास महाराज जी के चरण कमल में इस पुस्तक के साथ साथ अपने आप को समर्पित करते हैं। क्योंकि आज हम जिस जगह पर पहुँचे हुए हैं, वह केवल उनका आशीर्वाद है। अपने गुरुवर प्रो० वीरेन्द्र कुमार मिश्र (पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, हि०प्र०विश्वविद्यालय, शिमला), प्रो० रमेश चन्द्र पण्डा (अध्यक्ष, व्याकरण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), प्रो० कृष्णकान्त शर्मा (अध्यक्ष, वैदिक दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), प्रो० सुदर्शन लाल जैन (निर्देशक, पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी) जी को सतत नमन करते हैं कि इनके आशीर्वाद कुसुम से ही हम ज्ञान सागर से कुछ पा सके।

अपने प्रतिपद में सहायता देने वाली अपनी सहधर्मिणी श्रीमती शिवाश्रिता जी के प्रति सतत कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने पाण्डुलिपि तैयार करने में हमारी सतत सहायता की। हम सभी अदृश्य अन्तरिक्ष वालों को भी धन्यवाद देते हैं कि इनको अदृश्य सहायता से ही इस पुस्तक की निर्विघ्न समाप्ति में सहायक हुए।

अन्त में श्री जैन जी, प्रकाशक, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली को धन्यवाद देता हूँ, जिसने इस पुस्तक के प्रकाशन में सहायता की।

गणेश चतुर्थी
२३-०८-०९ डॉ० सुधांशु कुमार षड़ङ्गी

अथ सांख्यकारिका प्रारभ्यते

दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥१॥

अन्वय :- दु:खत्रयाभिघातात् तदभिघातके हेतौ जिज्ञासा (भवति), दृष्टे सा आपार्था (इति) चेत्, न, ऐकान्तात्यन्ततोऽ-भावात्।

अनुवाद :- तीन प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) दु:खों से पीडित होने के कारण, उसके विनाश में कारण को जानने की इच्छा होती है। यदि (यह कहा जाए कि) लौकिक उपायों से (तीनों दु:खों के विनाश) सम्भव होने से (साङ्ख्यशास्त्र की जिज्ञासा) व्यर्थ है, तो (यह उचित) नहीं (है), क्योंकि इन (तीनों दु:खों) के (लौकिक उपायों से) ऐकान्तिक और आत्यन्तिक रूप से विनाश असम्भव है।

नरहरि:

आदिशक्ति नमस्तुभ्यं परमाह्लादरूपिणि।
वेदविद्याप्रदात्र्यम्ब प्रतिभाया: प्रकाशिके॥

इह खलु कलिकलुषदु:खेन दु:खित: सर्व: मानव: सततं दु:खनिवृत्तिं परमपुरुषार्थं मोक्षं च वाञ्छति। एतदर्थं साङ्ख्याचार्या: दु:खनिवृत्त्यर्थं परमपुरुषार्थप्राप्त्यर्थं साङ्ख्यशास्त्र-मुपदिशन्ति। तत: दु:खत्रयाभिघातात् – दु:खानां त्रयं दु:खत्रयमाध्यात्मिकाधिभौतिका-धिदैविकरूपम्। वस्तुत: दु:खं तावद् द्विविधम् – बाह्यमाभ्यन्तरं चेति। तत्राध्यात्मिक-माभ्यन्तरमुच्यते। तच्च द्विविधम् – शारीरं मानसं चेति। शारीरं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यनिमित्तं ज्वरातिसारादि:। मानसं कामक्रोधलोभभयेर्ष्यादिविषयविशेषादर्शननिबन्धनं प्रियवियोगाप्रियसंयोगादिरूपं वा। सर्वं चैतदान्तरोपायसाध्यत्वादाध्यात्मिकं दु:खमभिधीयते। बाह्योपायसाध्यं दु:खं द्विविधम् – आधिभौतिकाधिदैविकभेदात्। अनयो: आधिभौतिकं मानुषपशुपक्षिसरीसृपस्थावरनिमित्तम्, आधिदैविकञ्च यक्षराक्षसविनायकग्रहावेशनिबन्धन-मभ्युपगम्यत इति, अर्थात् देवानामिदं दैवं, दिव: प्रभवतीति वा तदधिकृत्य यदुपजायते शीतोष्णवातवर्षाऽशनिपातादिकमिति दैवं दु:खम्। एतेषां दु:खत्रयाणामभिघात:, तस्मात् हेतौ तदभिघातके = तस्य दु:खत्रयस्य 'उपसर्जनस्यापि बुद्ध्या सन्निकृष्टस्य तदा परामर्श:', अभिघातक:, तस्मै योऽसौ हेतु: तत्प्रतीति जिज्ञासा = ज्ञातुमिच्छा जायते। दृष्टे – यदि सा दृष्टेन = लौकिकेन प्रत्यक्षेण वोपायेन सिद्धा सति सा जिज्ञासा अपार्था = व्यर्था इति चेत्, यथा शारीरस्य आयुर्वेदशास्त्रक्रियया मानसस्य च मनोज्ञस्त्रीपानभोजनविलेपनवस्त्रालङ्कारादिभि: प्रियसमागमाप्रियपरिहारद्वारा, आधिभौतिकस्य रक्षादिना, आधिदैविकस्य च मणिमन्त्रोषधा-

दिभिः प्रतीकारः स्यादिति दृष्टोपायः व्यर्थ इति चेत् – न, ऐकान्ताऽत्यन्ततोऽभावात्। यतः एकान्तस्य भावः ऐकान्तमवश्यम्, अत्यन्ततः = नित्यमभिघातः, तस्य अभावः एकान्तो दुःखनिवृत्तेरवश्यम्भावः अत्यन्तनिवृत्तस्य तस्य दुःखस्य पुनरनुत्पादः, एतयोः एकान्तात्यन्तयोः अभाव वेति। यतः दृष्टेनोपायेन निवृत्तानां दुःखानां पुनरुत्पत्तिर्दृश्यते। अनेन महता खल्वपि प्रयत्नेन निवर्त्तिता व्याधयः पुनरुत्पद्यन्ते। उक्तञ्चापि - 'पुनर्ज्वरे समुत्पन्ने क्रिया पूर्वज्वरानुगा' इति। अत्र एकान्ताऽत्यन्ततः पञ्चम्यर्थो तसिल्, नापितु आद्याद्याकृतिगण (पा०अ० ५/४/४४) इति सूत्रात् 'षष्ठीस्थाने तसिः' इति युक्तम्, एवं दृष्टेनोपायेन इति, अतः सा जिज्ञासा न अपार्था व्यर्था वा, अतः कर्त्तव्या इत्यर्थः।

मङ्गलाद्यानि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते। अत अत्रापि ग्रन्थकारेण मङ्गलमाचरितं वर्त्तते। अत्राऽयं प्रश्नः समुदेति यत् दुःखममङ्गलं, तर्ह्यस्य शास्त्रादौ कथं प्रयोगः कृतः? अत्रोच्यते यत् – यद्यपि दुःखममङ्गलं तथापि तत्परिहारार्थत्वेन तदपघातो मङ्गलमेवेति युक्तं शास्त्रादौ तत्कीर्त्तनमिति॥१॥

गौडपादभाष्यम्

कपिलाय नमस्तस्मै येनाऽविद्योदधौ जगति मग्ने।
कारुण्यात्सांख्यमयी नौरिव विहिता प्रतरणाय॥
अल्पग्रन्थं स्पष्टं प्रमाणसिद्धान्तहेतुभिर्युक्तम्।
शास्त्रं शिष्यहिताय समासतोऽहं प्रवक्ष्यामि॥

दुःखत्रयेति। अस्या आर्यायाः उपोद्घातः क्रियते। इह भगवान् ब्रह्मसुतः कपिलो नाम। तद्यथा –

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
आसुरिः कपिलश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा॥
इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः सप्त प्रोक्ता महर्षयः।

कपिलस्य सहोत्पन्नानि धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यञ्चेति, एवं स उत्पन्नः सन् अन्धे तमसि मज्जगदालोक्य, संसारपारम्पर्येण सत्कारुण्यो जिज्ञासमानाय आसुरिगोत्राय ब्रह्मणायेदं पञ्चविंशतितत्त्वानां ज्ञानमुक्तवान्, यस्य ज्ञानादुःखक्षयो भवति।

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र-तत्राश्रमे वसेत्।
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥

तदिदमाहुः **दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासेति**। तत्र दुःखत्रयमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकञ्चेति। तत्राध्यात्मिकं द्विविधं = शारीरं मानसञ्चेति। शारीरं वातपित्तश्लेष्मविपर्ययकृतं ज्वरातिसारादि। मानसं प्रियवियोगाप्रियसंयोगादि। आधिभौतिकं चतुर्विधभूतग्रामनिमित्तं मनुष्यपशुमृगपक्षिसरीसृपदंशमशकयूकमत्कुणमत्स्यमकरग्राहस्थावरेभ्यो, जरायुजाऽण्डजस्वेदजोद्भिज्जेभ्यः सकाशादुपजायाते। आधिदैविकं देवानामिदं दैवं, दिवः प्रभवतीति वा दैवं, तदधिकृत्य यदुपजायते शीतोष्णवातवर्षाऽशनिपातादिकम्।

एवं यथा - दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा कार्या। क्व? तदभिघातके हेतौ, तस्य = दुःखत्रयस्याभिघातको योऽसौ हेतुस्तत्रप्रति। **दृष्टे साऽपार्था चेत्**। दृष्टे हेतौ दुःखत्रयाभिघातके, सा = जिज्ञासा अपार्था चेद् = यदि। तत्राध्यात्मिकस्य द्विविधस्यापि आयुर्वेदशास्त्रक्रियया, प्रियसमागमाऽप्रियपरिहारकटुतिक्तकषायक्वाथादिभिर्दृष्ट एवाऽध्यात्मिकोपायः। आधिभौतिकस्य रक्षादिनाऽभिघातो दृष्टः। दृष्टे साऽपार्था चेत् त्वं मन्यसे? **न, एकान्तात्यन्ततोऽभावात्**। यत एकान्ततः = अवश्यं, अत्यन्ततः = नित्यं, दृष्टेन हेतुनाऽभिघातो न भवति, तस्मादन्यत्र ऐकान्तात्यन्ताभिघातके हेतौ जिज्ञासा = विविदिषा कार्येति॥१॥

भाष्यानुवादः

जिसने अविद्यारूपक समुद्र में डूबते हुए संसार से नौका की तरह प्रतरण के लिए (लोगों के प्रति) करुणा के भाव से साङ्ख्यशास्त्र का प्रणयन किया, उस कपिल को हम नमस्कार करते हैं।

अल्पग्रन्थ, स्पष्ट, प्रमाण-सिद्धान्त तथा हेतुओं से युक्त शास्त्र को शिष्यों के कल्याण के लिए मैं (आचार्य गौडपाद) सङ्क्षेप से भलीभाँति कहूँगा।

दुःखत्रयेति। (अब) इस (कारिकामय इस साङ्ख्यकारिका की) कारिका का उपोद्घात किया जा रहा है। यहाँ पर कपिल भगवान् ब्रह्मा जी के पुत्र (कहे गए) हैं। जैसे :-

सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, कपिल, बोढु तथा पञ्चशिख – ये सात महर्षि ब्रह्मा जी के पुत्र कहे गये हैं।

कपिल के साथ धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार वह उत्पन्न होकर घोर तमस् से मग्न जगत् को देखकर, संसार परम्परा से करुणा से द्रवीभूत होकर जिज्ञासु आसुरि गोत्र वाले ब्राह्मण से इन पच्चीस तत्त्वात्मक ज्ञान को कहा था, जिसके ज्ञान से (तीन प्रकार के) दुःखों का विनाश होता है।

जिस किसी भी आश्रम में पच्चीस तत्त्वों को जानने वाला जटी, मुण्डी अथवा शिखी वास करता है, तो वह (तीनों दुःखों से) मुक्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है।

अब यह कहा गया है कि – दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासेति। वहाँ पर तीन प्रकार के दुःख है। जैसे – आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक है। उनमें से आध्यात्मिक

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

दु:ख दो प्रकार का है, जैसे – शारीरिक और मानसिक। वात, पित्त तथा श्लेष्म के विपर्यय के कारण होने वाला ज्वर, अतिसार आदि दु:ख शारीरिक दु:ख कहलाते हैं। प्रिय का वियोग तथा अप्रिय के संयोग से प्राप्त दु:ख मानसिक दु:ख है। चार प्रकार के भूतों के समूह के निमित्त, जैसे – मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप, दंश, मशक, यूक, मत्कुण, मछली, मकर, ग्राह और स्थावरों से तथा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज आदि के कारण उत्पन्न होने वाले दु:ख को आधिभौतिक दु:ख कहते हैं। देवताओं से सम्बन्धित दैव, (उन) देवों (के कारण) से जो प्राप्त होता है वह दैव है। उसको लेकर ही जो शीत, उष्ण, वात, वर्षा, उल्कापात आदि उत्पन्न होते हैं वह आधिदैविक दु:ख कहलाता है।

इस प्रकार तीनों प्रकार के दु:खों के विनाश हेतु जिज्ञासा करनी चाहिए। अब प्रश्न (यह उपस्थित होता है कि) क्यों? (जिज्ञासा करनी चाहिए?) उत्तर दिया जा रहा है कि – तदभिघातके हेतौ – उसका • तीनों प्रकार के दु:खों का विनाशक जो कारण है, उनके प्रति। यदि (दृष्ट उपायों से तीनों दु:खों का विनाश होने से साङ्ख्यशास्त्र की जिज्ञासा व्यर्थ है तो) लौकिक उपायों से यदि तीन प्रकार के दु:खों का विनाश हो जाए, तो वह जिज्ञासा व्यर्थ है। जैसे – उनमें दोनों प्रकार के आध्यात्मिक दु:खों का आयुर्वेदशास्त्रानुमोदित क्रिया के द्वारा कटु, कषाय, तिक्त, क्वाथ आदि लौकिक उपायों से (शारीरिक दु:ख का) तथा प्रिय का समागम और अप्रिय के परिहार से (मानसिक दु:ख का – इस प्रकार) आध्यात्मिक दु:खों के विनाश का उपाय दृष्ट है। आधिभौतिक दु:ख का रक्षण आदि उपायों से विनाश दृष्ट है। (तथा आधिदैविक दु:ख का मणि, मन्त्र तथा औषधि से विनाश दृष्ट है, इस प्रकार) लौकिक उपाय के कारण तीनों प्रकार के दु:खों के विनाश के निमित्त साङ्ख्यशास्त्र की जिज्ञासा व्यर्थ है – यदि आप ऐसे मानते हो? तो, ऐसा नहीं, ऐकान्तिक और आत्यन्तिक (दु:खों का) अभाव होने से। निश्चित ही पूर्णरूप से दृष्ट उपायों से तीनों प्रकार के दु:खों का विनाश सम्भव नहीं होता है। इसलिए अन्य (तीनों दु:खों के) ऐकान्तिक और आत्यन्तिक विनाशक के हेतु में जिज्ञासा अथवा विचार करना चाहिए।।१।।

टिप्पणी :-

अब प्रश्न यह उठता है कि दु:ख तो त्रैकालिक है, तो क्या त्रैकालिक दु:ख का अविघात अभिप्रेत है अथवा किसी एक अथवा दो काल वाला दु:ख का अविघात। इस पर साङ्ख्याचार्य उत्तर देते हैं कि अनागत कालिक जो दु:ख है उसका ही अविघात यहाँ पर स्वीकृत है। क्योंकि अतीत कालिक दु:ख का भूत कालिक विषय होने से तथा पहले से ही उसका भोग हो जाने से और वर्त्तमान कालिक दु:ख का क्षणान्तर में विनाश हो जाने से – इन दोनों प्रकार के दु:खों का अविघात निष्प्रयोजन है। इसलिए भविष्यत काल में प्राप्त होने वाला दु:ख ही विनाश के योग्य है। यह दु:ख तीन प्रकार का है, जैसे – आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। इन तीन प्रकार के अनागत कालिक दु:खों का ऐकान्तिक और आत्यन्तिक अविघात होने से कैवल्य की प्राप्ति हो जाएगी।

चित्रम् –
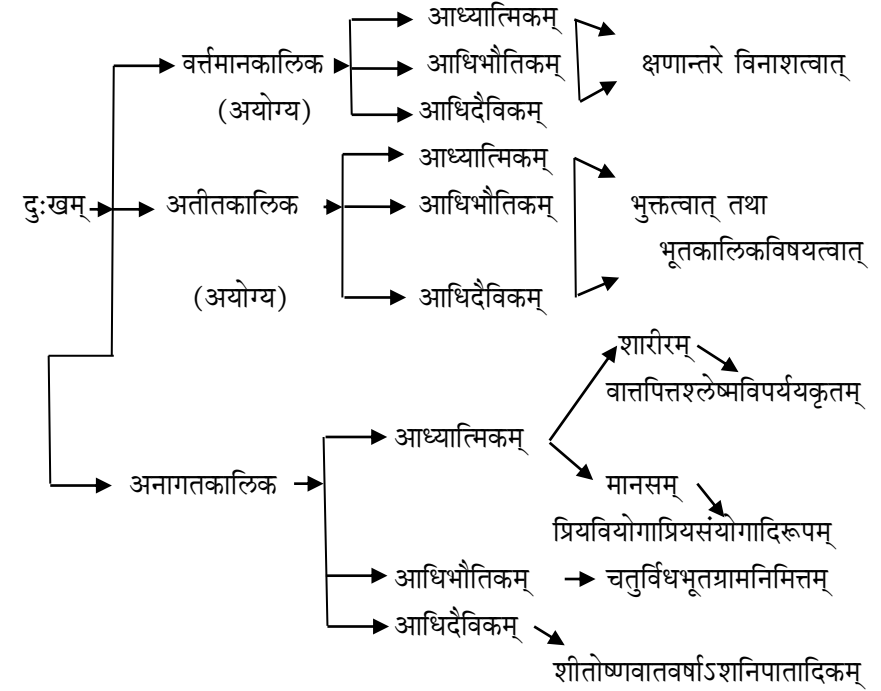
दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।।२।।

अन्वय :- दृष्टवद् आनुश्रविकः, हि सः अविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः, तद्विपरीतः श्रेयान्, व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।

अनुवाद :- दृष्ट (लौकिक) उपाय की तरह आनुश्रविक (वैदिक) उपाय है, (और) वह (वैदिक उपाय) ही अविशुद्ध, क्षय तथा अतिशय – दोषों से युक्त है। (इसलिए) उसके

विपरीत व्यक्त (महदादि-पृथिव्यन्त), अव्यक्त (प्रकृति) और ज्ञ (पुरुष – इन) के विशिष्ट ज्ञान से (तीनों दु:खों की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति होने के कारण) श्रेष्ठ है।

नरहरि:

दृष्टवत् = दृष्टेन तुल्यम्, आनुश्रविकम् = अनु पश्चात् श्रूयते, गुरुमुखादनुश्रूयते वा इत्यनुश्रव:, तत्र भव आनुश्रविक:, वैदिकोपायो वा। अयं त्रयाणां दु:खानामैकान्तात्यन्तिके अभिघाते असमर्थ:, कथम्? उच्यते – स: वैदिकोपाय: हि = निश्चयेन, अविशुद्धिक्षयातिशययुक्त:, अविशुद्धियुक्त: – न विशुद्धि: = अविशुद्धि:, तया युक्त: इति। यथा सोमयागादे: पाशबीजादिवधसाधनता, यद्यप्यत्र श्रुतिस्मृतिविहितधर्मत्वेन वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति इति लोकन्यायात् शास्त्रयुक्त्या वा वैदिकक्रियाया: अविशुद्धित्वं न वर्त्तते, तथापि मिश्रीभावात् अविशुद्धियुक्त: इति। क्षययुक्त: - शुभाशुभकर्मप्रभवो स्वर्गादि-लोकात् इन्द्रादिपदनाशात् क्षययुक्त:, 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्तीति' यत:। पुन: अतिशययुक्त:, अतिशय: = विशेष:, तेन युक्त:। विशेषगुणदर्शनादितरस्य दु:खं सम्पद्यत इति। यत: परसम्पदुत्कर्षो हीनसम्पदं पुरुषं दु:खाकरोति। तद्विपरीत: = ताभ्यां = दृष्टानुश्रविकाभ्यं विपरीत: श्रेयान् = प्रशस्यतर:, स: कथम्? इत्युच्यते – व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्। व्यक्तञ्चाव्यक्तं च ज्ञश्चेति व्यक्ताव्यक्तज्ञा:, तेषां विज्ञानात् = विशिष्टं सम्यग्ज्ञानाद्वा। बहुष्वनियमादल्पाचोऽपि ज्ञशब्दस्य न पूर्वनिपात: यत:। अथवा ज्ञानस्य साधकतमं व्यक्तम्, तत्पूर्वकत्वादव्यक्तसमधिगम-स्येत्यभिहितम्। यद्वा व्यक्तञ्चाव्यक्तञ्च ते व्यक्ताव्यक्ती, ते विजानातीति व्यक्ताव्यक्तज्ञा:, तद्विज्ञानात् संयोगो निवर्त्तत इति युक्तिदीपिकाकारमतम्। तानि व्यक्ताव्यक्तज्ञस्वरूपाणि तत्त्वानि यथा – व्यक्तं = बुद्धि:, अहङ्कार:, पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानि चेति। अव्यक्तम् – प्रधानं प्रकृतिर्वा। ज्ञ: = पुरुष:। एवमेतेषां पञ्चविंशतितत्त्वानां सम्यग्ज्ञानात् श्रेयम् = कल्याणकरं मोक्षो लप्स्यते।

अत्र रूपप्रवृत्तिफललक्षणं व्यक्तमिति युक्तिदीपिकाकार:। रूपं तावत् महदहङ्कार:, पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, महाभूतानि चेति। अदृष्टं ब्रह्मादौ स्तम्भपर्यन्ते संसारे शरीरप्रतिलम्भ इत्येतद् व्यक्तम्। यदा त्वङ्गभावमगच्छन्तो निर्लिखितविशेषा व्यवतिष्ठन्ते तदाऽव्यक्तमित्युच्यन्ते। चेतनाशक्तिरूपत्वाच्छित्रं गुणवृत्तं जानातीति ज्ञ:। एषां पञ्चविंशतिस्व-रूपाणां त्रयाणां व्यक्ताव्यक्तज्ञानां भेदमभेदञ्च सूक्ष्मञ्च तत्त्वं सम्यग्विज्ञाय संयोगनिवृत्तिं लभते। संयोगनिवृत्तौ सत्यामपवर्गप्राप्ति: जायते।।२।।

गौडपादभाष्यम्

यदि दृष्टादन्यत्र जिज्ञासा कार्या, ततोऽपि नैवम्। यत आनुश्रविको हेतु: दु:खत्रयाभिघातक:। अनुश्रूयत इत्यनुश्रव:, तत्र भव: आनुश्रविक:। स चागमात् सिद्ध:। यथा –

अपाम सोमममृता अभूमाऽगन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान् तृणवदराति: किमु धूर्त्तिरमृतमर्त्त्यस्य।।

कदाचिदिन्द्रादीनां कल्पनाऽऽसीत् – कथं वयममृता अभूमेति? विचार्य - यस्माद्वयमपाम सोमं = पीतवन्त: सोमं, तस्मादमृता अभूम = अमरा भूतवन्त इत्यर्थ:। किञ्च अगन्म ज्योति:, गतवन्त: = लब्धवन्त: ज्योति: = स्वर्गमिति। अविदाम देवान् = दिव्यान् विदितवन्त:। एवञ्च किं नूनमस्मान् तृणवदराति:। नूनं = निश्चितं, किमराति = शत्रुरस्मान् तृणवत् कर्त्तेति। किमु धूर्त्तिरमृतमर्त्त्यस्य। धूर्त्ति: = जरा, हिंसा वा किं करिष्यति अमृतमर्त्त्यस्य?

अन्यच्च वेदे श्रूयते – आत्यन्तिकं फलं पशुवधेन। 'सर्वाल्लोकान् जयति, मृत्युं तरति, पाप्मानं तरति, ब्रह्महत्यां तरति, योऽश्वमेधेन यजते' इति। ऐकान्तात्यन्तिके एवं वेदोक्ते – अपार्थैव जिज्ञासेति, न। उच्यते **दृष्टवदानुश्रविक:** इति। दृष्टेन तुल्यो दृष्टवत्। योऽसौ आनुश्रविक: कस्मात् स दृष्टवत्, यस्मात् **अविशुद्धिक्षयातिशययुक्त:** अविशुद्धियुक्त: पशुघातात्। तथा चोक्तम् –

षट्शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि।
अश्वमेधस्य वचनादूनानि पशुभिस्त्रिभि:।। इति।

इत्थं यद्यपि श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मस्तथापि मिश्रीभावादविशुद्धियुक्त इति। तथा –

बहूनीन्द्रसहस्राणि देवानां च युगे युगे।
कालेन समतीतानि कालो हि दुरतिक्रम:।। इति।

एवमिन्द्रादिनाशात् क्षययुक्त:। तथाऽतिशयो = विशेषस्तेन युक्त:। विशेषगुणदर्शनादितरस्य दु:खं स्यादिति। एवमानुश्रविकोऽपि हेतुर्दृष्टवत्। कस्तर्हि श्रेयानिति चेत्? उच्यते **तद्विपरीत: श्रेयान्।** ताभ्यां दृष्टानुश्रविकाभ्यां, विपरीत: श्रेयान् = प्रशस्यतर इति, अविशुद्धिक्षयातिशयाऽयुक्तत्वात्। स कथमित्याह **व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।** तत्र व्यक्तं महदादि, बुद्धिरहङ्कार:, पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानि। अव्यक्तं = प्रधानम्। ज्ञ: = पुरुष:। एवमेतानि पञ्चविंशतितत्त्वानि। व्यक्ताव्यक्तज्ञा: कथ्यन्ते। एतद्विज्ञानाच्छ्रेय इति। उक्तञ्च ''पञ्चविंशतितत्त्वज्ञ:'' इत्यादि।।२।।

यदि दृष्ट (लौकिक) उपाय से अन्यत्र जिज्ञासा की जाए, तो उससे भी (तीनों दुःखों की ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक) निवृत्ति) नहीं हो सकती। चूँकि आनुश्रविक उपाय तीनों प्रकार के दुःखों का विनाशक है। (जैसे -) अनु – पश्चात् (वाद में) सुना जाता है – इसलिए अनुश्रव, उसमें होने वाली क्रिया आनुश्रविक। और वह आगम प्रमाण से सिद्ध है। जैसे –

अपाम सोमममृता अभूमाऽगन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान् तृणवदरातिः किमु धूर्त्तिरमृतमर्त्त्यस्य।।

भाष्यानुवादः

कदाचित् इन्द्र आदि देवताओं की कल्पना थी कि हम कैसे अमरत्व को प्राप्त हुए थे? विचार करके – जिस के कारण (हम) सोम को पीए थे, इसलिए (हम लोग) अमर हो गए थे। और फिर (हम) ज्योति • स्वर्ग को प्राप्त किये थे। दिव्य तत्त्वों को हम जान गये थे। और इस प्रकार तृण की तरह शत्रु हम लोगों का क्या कर लेंगे? अमरत्व को प्राप्त हुए हमारा मर्त्य की जरा, व्याधि, हिंसा आदि क्या कर सकते हैं?

और फिर अन्य – वेद में सुना जाता है कि पशु के बध से आत्यन्तिक फल की प्राप्ति होती है। कहा गया है – जो अश्वमेध यज्ञ करता है, वह समस्त लोकों को जीत लेता है, मृत्यु को पार कर जाता है, पापों से तर जाता है तथा ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। (इन तीनों प्रकार के दुःखों के) ऐकान्तिक और आत्यन्तिक विनाश में वेदोक्त उपाय समर्थ है, तो साङ्ख्यशास्त्र की जिज्ञासा व्यर्थ है, तो नहीं। कहा गया है दृष्टवदानुश्रविक इति। दृष्ट के सदृश (आनुश्रविक) है। यह जो वेदोक्त उपाय है वह कैसे लौकिक उपाय की तरह है? (कहा गया है कि यह वेदोक्त उपाय) अविशुद्ध, क्षय और अतिशय आदि दोषों से दूषित है। (यह वैदिक उपाय) पशुबध के कारण अविशुद्ध से युक्त है। और कहा गया है –

षट्शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि।
अश्वमेधस्य वचनादूनानि पशुभिस्त्रिभिः।। इति।

अर्थात् 'अश्वमेध यज्ञ के लिए प्रयुक्त यह वचन होने से तीन-तीन पशु कम करके उस यज्ञ में मध्याह्न तक 600 पशु नियुक्त किये जाते हैं।'

इस प्रकार यद्यपि वैदिक उपाय वेद और स्मृति आदि से विहित होने से धर्मरूप है तथापि मिश्रफल को प्रदान करने के कारण अविशुद्धि से युक्त है। जैसे –

बहूनीन्द्रसहस्राणि देवानां च युगे युगे।
कालेन समतीतानि कालो हि दुरतिक्रमः।। इति।

अर्थात् 'देवताओं के प्रति युग में कई हजार इन्द्र काल के कबलित हो गये हैं, इसलिए काल अनतिक्रमणीय है।'

इस प्रकार इन्द्र आदि के नाश हो जाने से क्षय से युक्त है। वैसे अतिशय • विशेष, उससे युक्त। एक के गुण (अधिक) के दर्शन से अन्य का दुःख होना विशेष है। इस प्रकार आनुश्रविक उपाय भी दृष्ट की तरह है। अब प्रश्न है कि क्या श्रेय (समस्त उपायों में श्रेष्ठ • कल्याणकर) है? तब कहा जाता है। उसके (दृष्ट और आनुश्रविक उपायों से) विपरीत उपाय श्रेष्ठ है। श्रेष्ठतर है। क्योंकि (वह उपाय) अविशुद्धि, क्षय और अतिशय से युक्त न होने के कारण। वह कैसे – व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के विज्ञान से। उनमें से व्यक्ततत्त्व महद् आदि हैं। जैसे – बुद्धि, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्राएँ, एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चमहाभूत हैं। अव्यक्ततत्त्व प्रधान अथवा प्रकृति है। ज्ञतत्त्व पुरुष है। इस प्रकार से यह पच्चीस तत्त्व है। इनके विशिष्ट ज्ञान से ही कल्याण होता है। कहा भी गया है – पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः।।२।।

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्तः।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।३।।

अन्वय :- मूलप्रकृतिः अविकृतिः, महदाद्याः सप्त प्रकृतिविकृतयः, षोडशकः तु विकारः, पुरुषः न प्रकृतिः न विकृतिः।

अनुवाद :- मूलप्रकृति अविकृति है (अर्थात् किसी तत्त्व का विकार नहीं है), महत् आदि सात (महत्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ) प्रकृति और विकृति है (उभय अर्थात् ये तत्त्व किसी का कारण तथा किसी का कार्य है)। सोलह का समूह (ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच महाभूत) केवल विकार (कार्य) है। पुरुषतत्त्व न किसी से उत्पन्न हुआ है, न तो किसी को उत्पन्न किया है।

नरहरिः

सिद्ध व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् मोक्ष इति। एतत् तत्त्वत्रयं पञ्चभिरधिकरणैर्भिद्यते, यथा – प्रकृतिविकारवृत्तं, कार्यकारणवृत्तं, अतिशयानतिशयवृत्तं, निमित्तनैमित्तिकवृत्तं, विषयविषयिवृत्तमिति। तत्र प्रकृतिविकारवृत्तत्वादितरेषामधिकरणानां तद्भेदान्वक्ष्यति चतुर्धा इति। यथा – किञ्चित्कारणमेव न कार्यम्, किञ्चित् कारणं कार्यञ्चोभयम्, किञ्चित्कार्यमेव न कारणम्, किञ्चिन्नैव कारणं नैव कार्यमिति। एतेषु चतुर्षु मूलप्रकृतिः कारणमेव न कार्यम्। प्रकरोतीति प्रकर्षेण वा सृष्टिक्रियां सम्पादयतीति प्रकृतिः, मूलं चासौ प्रकृतिश्चेति मूलप्रकृतिः, विश्वस्य कार्यसङ्घातस्य या मूलम्, न त्वस्याः मूलान्तरमस्ति, अनवस्थाप्रसङ्गात्।

तेन उच्यते – अविकृतिः = न विकृतिः, कार्यमिति। अन्यस्मात् नोत्पद्यत इति। अतः प्रकृतिः कस्यचित् विकारो न भवतीत्यर्थः। महदाद्याः सप्त प्रकृतिविकृतयः। महान आदौ यस्य सङ्घातस्य, ताः। प्रकृतयश्च विकृतयश्च ता इति विकृतिविकृतयः, सप्त इति सप्तसङ्ख्यान् बोधयति। सप्तग्रहणमवधिपरिच्छेदार्थमिति युक्तिदीपिकाकारः। उच्यते च – अक्रियमाणे हि सप्तग्रहणे न ज्ञायते कियान्प्रकृतिगणः प्रकृतिविकृतिसंज्ञो भवति। तत्र महाभूतेन्द्रियपर्वणोरपि प्रकृतित्वं प्रसज्येत। महान्, अहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राणि चेति सप्त। यथा – प्रधानात् महदुत्पद्यते, तेन विकृतिः प्रधानस्य, सैव बुद्धिः अहङ्कारमुत्पादयतीति प्रकृतिः। अहङ्कारोऽपि महतः उत्पद्यत इति विकृतिः, स च पञ्चतन्मात्राणि उत्पादयतीति प्रकृतिः। तत्र शब्दतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तस्मादाकाशमुत्पद्यत इति प्रकृतिः। तथा स्पर्शतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तस्माद् वायुः उत्पद्यत इति प्रकृतिः। तथा रूपतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तदेव तेजो उत्पादयतीति प्रकृतिः। तथा रसतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तस्माद् जलमुत्पद्यत इति प्रकृतिः। तथा गन्धतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तस्मात् पृथिवी उत्पद्यत इति प्रकृतिः। एवं महदाद्याः सप्त कारणं कार्यञ्चोभयस्वरूपम्।

षोड़शकः = षोड़शसङ्ख्यापरिमितो गणः षोड़शकः। यथा – पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, मनस्, पञ्चमहाभूतानि चेति। 'तु'शब्दोऽवधारणे भिन्नक्रमः, विकृतिः = कार्यमेव। एभ्यः किञ्चित् नोत्पद्यत इति। अत्र प्रश्नः यत् महाभूतेभ्यः गोघटादीनामुत्पत्तिः जायते। अतः कथं विकृतिरेव इति? उच्यते – यद्यपि पृथिव्यादीनां महाभूतानामपि गोघटवृक्षादयो विकाराः, एवं तद्विकारभेदानां पयोबीजादीनां दध्यंकुरादयः, तथापि ते पृथिव्यादिभ्यस्तत्त्वान्तरं न वर्त्तन्ते। इह खलु तत्त्वान्तरोपादानत्वं प्रकृतित्वमभिप्रेतम्। सर्वेषां गोघटादीनां स्थूलतेन्द्रियग्राह्यता न समः, अतः न तत्त्वान्तरम्। पुरुषः, द्रष्टा, ज्ञः, साक्षी न विकृतिः, न प्रकृतिः = न कस्यचित् कार्यं, कस्यचिद्वा न कारणम्। एवं पञ्चविंशतिषु तत्त्वेषु किञ्चित् कारणं न कार्यम्, किञ्चित् कारणं च कार्यञ्च, किञ्चित् कार्यमेव न कारणम्, किञ्चित् न कार्यं न कारणमिति सिद्धम्॥३॥

गौडपादभाष्यम्

अथ व्यक्ताऽव्यक्तज्ञानां को विशेष इति? उच्यते **मूलप्रकृतिः** = प्रधानं, प्रकृतिविकृतिसप्तकस्य मूलभूतत्वात्। मूलं च सा प्रकृतिश्च मूलप्रकृतिः। अविकृतिः = अन्यस्मान्नोत्पद्यते, तेन प्रकृतिः कस्यचिद्विकारो न भवति। **महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त**। महान् = बुद्धिः, बुद्ध्याद्याः सप्त, बुद्धिः, अहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राणि। एताः सप्त प्रकृतिविकृतयः। तद्यथा प्रधानाद् बुद्धिरुत्पद्यते, तेन विकृतिः = प्रधानस्य विकार इति। सैवाहङ्कारमुत्पादयति, अतः प्रकृतिः। अहङ्कारोऽपि बुद्धेरुत्पद्यत इति विकृतिः, स च पञ्चतन्मात्राण्युत्पादयतीति प्रकृतिः। तत्र शब्दतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तस्मादाकाशमुत्पद्यत इति प्रकृतिः। तथा स्पर्शतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तदेव वायुमुत्पादयतीति प्रकृतिः। गन्धतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तदेव पृथिवीमुत्पादयतीति प्रकृतिः। रूपतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तदेव तेज उत्पादयतीति प्रकृतिः। रसतन्मात्रमहङ्कारादुत्पद्यत इति विकृतिः, तदेवाप उत्पादयतीति प्रकृतिः। एवं महदाद्याः सप्त प्रकृतयो, विकृतयश्च। **षोडशकस्तु विकारः**। पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, एकादशं मनः, पञ्च महाभूतानि, एष षोडशको गणो विकृतिरेव। विकारो = विकृतिः। **न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः**॥३॥

भाष्यानुवादः

अब (यह प्रश्न है कि) व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के ज्ञान से क्या वैशिष्ट्य है? कहा गया है – मूलप्रकृति प्रधान है, वह प्रकृतिविकृति सप्तक का मूलभूत होने के कारण। मूल (आदि) है वह प्रकृति – मूलप्रकृति। अविकृतिः – अन्य से उत्पन्न न होने के कारण, प्रकृति किसी का विकार अथवा कार्य नहीं है। महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त – महान् • बुद्धि है। बुद्धि आदि सात हैं, जैसे – बुद्धि, अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्राएँ – ये सात प्रकृतिविकृतियाँ हैं। वह जैसे प्रधानतत्त्व से बुद्धि उत्पन्न होती है। इसलिए प्रधान का विकार अर्थात् कार्य है। वह बुद्धि अहङ्कार को उत्पन्न करती है; अतः अहङ्कार का कारण है। अहङ्कार भी बुद्धि से उत्पन्न होने के कारण विकार अर्थात् कार्य है; और वह पाँच तन्मात्राओं को उत्पन्न करने के कारण प्रकृति अर्थात् कारण भी है। उनमें जैसे शब्दतन्मात्र अहङ्कार से उत्पन्न होने से कार्य, उसमें आकाश उत्पन्न होने से कारण है। उसी प्रकार स्पर्शतन्मात्र अहङ्कार से उत्पन्न होने से कार्य, और वह वायु को उत्पन्न करने से कारण है। गन्धतन्मात्र अहङ्कार से उत्पन्न होने से कार्य, और वह पृथिवी को उत्पन्न करने के कारण कारण है। रूपतन्मात्र अहङ्कार से उत्पन्न होने के कारण कार्य, और वह तेजस् को उत्पन्न करने के कारण कारण है। रसतन्मात्र अहङ्कार से उत्पन्न होने से कार्य, और वह जल को उत्पन्न करने से कारण है। इस प्रकार महद् आदि सात कारण और कार्य है। षोडशकस्तु विकारः अर्थात् सोलह का समूह केवल विकार अर्थात् कार्य है। जैसे – पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और पाँच महाभूत। यह सोलह का समूह विकार अर्थात् कार्य ही है। पुरुष तत्त्व न किसी का कारण है और न किसी का कार्य है॥३॥

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।।४।।

अन्वय :- हि प्रमेयसिद्धिः प्रमाणात् (जायते)। (अतः) दृष्टम् अनुमानम् आप्तं वचनं च त्रिविधं प्रमाणम् इष्टम्, सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।

अनुवाद :- चूँकि प्रमेयों की सिद्धि प्रमाणों से ही होती है, इसलिए प्रत्यक्ष (दृष्ट), अनुमान और आगम (शब्दप्रमाण) – ये तीन ही प्रमाण (साङ्ख्ययोगाचार्यों को) अभीष्ट है। क्योंकि अन्य (शास्त्रोक्त) प्रमाणों का इन तीनों से ही सिद्धि हो जाती है।

नरहरिः

पञ्चविंशतितत्त्वानां सम्यग्ज्ञानाद् त्रिविधदुःखानामात्यन्तिकमैकान्तिकं च निवृत्तौ सत्यां कैवल्यप्राप्तिरिति साङ्ख्यदार्शनिकाः मन्यन्ते। तत्र तावत् प्रथममेतेषां तत्त्वानां सिद्धिः कर्त्तव्या, तदनन्तरं च तेषां तत्त्वज्ञाने प्रवृत्तिः स्यात्। अत एतेषां सिद्ध्यर्थं प्रमाणनिर्वचनमपेक्षितं वर्त्तते। साङ्ख्यविपश्चितः त्रिविधं प्रमाणमभ्युपगच्छन्ति। यथा दृष्टमनुमानमाप्तवचनं चेति। तत्र दृष्टम् = प्रत्यक्षम्, श्रोत्रादीनि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, एषां पञ्चानां शब्दादयः पञ्चविषयाः वर्त्तन्ते। यथा – श्रोत्रेन्द्रियं शब्दं, त्वगिन्द्रियं स्पर्शं, चक्षुरिन्द्रियं रूपं, रसनेन्द्रियं रसं, घ्राणेन्द्रियं गन्धं गृह्णाति। एतत् दृष्टप्रमाणमुच्यते। अनुमानम् = अनुमीयते अनेनेति, तल्लिङ्गलिङ्गीपूर्वकमित्यग्रे वक्ष्यति। आप्तवचनम् = आगमम्, प्रत्यक्षानुमानाभ्यां योऽर्थो न गृह्यते, तस्य ग्राहकः। एतानि त्रिविधम् = त्रिविधानि, प्रमाणम् = प्रमाणानि, इष्टम् = अभीष्टमित्यर्थः। अन्येषु दर्शनसम्प्रदायान्तरेषु अभावादीनामधिकप्रमाणानां चर्चात्वे कथं त्रिविधं प्रमाणमिति प्रश्ने? उच्यते – सर्वप्रमाणसिद्धत्वात् = सर्वेषां प्रमाणानां सिद्धिः, तस्मात्। सर्वेषां दर्शनसम्प्रदायोक्तानामन्येषां प्रमाणानां त्रिष्वेव अन्तर्भूतत्वादित्यर्थः। अत्र प्रश्नः प्रमेयचर्चायां प्रमाणनिर्वचनं कथमिति? उच्यते – हि = निश्चयेन प्रमेयसिद्धिः = पञ्चविंशतिपदार्थानां प्रधानपुरुषादीनां सत्तानिश्चयः, प्रमाणात् = एभिः त्रिभिः दृष्टादिभिः प्रमाणैः साधयितुं शक्यते।।४।।

गौडपादभाष्यम्

एवमेषां व्यक्ताव्यक्तज्ञानां त्रयाणां पदार्थानां कैः कियद्भिः प्रमाणैः, केन, कस्य वा प्रमाणेन सिद्धिर्भवति? इह लोके प्रमेयवस्तु प्रमाणेन साध्यते। यथा प्रस्थादिभिर्व्रीहयः, तुलया चन्दनादि। तस्मात् प्रमाणमभिधेयम्।

दृष्टमिति। दृष्टं यथा – श्रोत्रं त्वक् चक्षुर्जिह्वा घ्राणमिति पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा एषां पञ्चानां विषयाः यथासंख्यम्। श्रोत्रं शब्दं गृह्णाति, त्वक् स्पर्शं, चक्षुः रूपं, जिह्वा रसं, घ्राणं गन्धमिति। एतत् दृष्टमित्युच्यते प्रमाणम्। प्रत्यक्षेणानुमानेन वा योऽर्थो न गृह्यते, स आप्तवचनाद् ग्राह्यः। यथेन्द्रो देवराजः, उत्तराः कुरवः, स्वर्गेऽप्सरस इत्यादि। प्रत्यक्षानुमानाऽग्राह्यमप्याप्तवचनाद् गृह्यते। अपि चोक्तम् –

आगमो ह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयाद्विदुः।
क्षीणदोषोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसम्भवात्।।
स्वकर्मण्यभियुक्तो यः सङ्गद्वेषविवर्जितः।
पूजितस्तद्विधैर्नित्यमाप्तो ज्ञेयः स तादृशः।।

एतेषु प्रमाणेषु सर्वप्रमाणानि सिद्धानि भवन्ति। षट्प्रमाणानि इति जैमिनिः। अथ कानि तानि प्रमाणानि। अर्थापत्तिः, सम्भवः, अभावः, प्रतिभा, ऐतिह्यम्, उपमानं चेति षट्प्रमाणानि। तत्राऽर्थापत्तिर्द्विविधा = दृष्टा श्रुता च। तत्र दृष्टा – एकस्मिन् पक्षे आत्मभावो गृहीतश्चेदन्यस्मिन्नप्यात्मभावो गृह्यत एव। श्रुता यथा – दिवा देवदत्तो न भुङ्क्ते, अथ च पीनो दृश्यते, अतोऽवगम्यते – रात्रौ भुङ्क्ते इति। सम्भवो यथा – प्रस्थ इत्युक्ते चत्वारः कुडवाः सम्भाव्यन्ते। अभावो नाम प्रागितरेतराऽ-त्यन्तसर्वाऽभावलक्षणः। प्रागभावो यथा – देवदत्तः कौमारयौवनादिषु। इतरेतराभावः – पटे घटाऽभावः। अत्यन्ताऽभावः – खरविषाणवन्ध्यासुतखपुष्पवदिति। सर्वाऽभावः = प्रध्वंसाऽभावो दग्धपटवदिति। यथा शुष्कधान्यदर्शनाद् वृष्टेरभावोऽवगम्यते। एवमभावोऽनेकधा। प्रतिभा यथा –

दक्षिणेन च विन्ध्यस्य सह्यस्य यदुत्तरम्।
पृथिव्यामासमुद्रायां स प्रदेशो मनोरमः।।

एवमुक्ते तस्मिन् प्रदेशे शोभनाः गुणाः सन्तीति प्रतिभोत्पद्यते। प्रतिभा च जानतां ज्ञानमिति। ऐतिह्यं यथा – ब्रवीति लोको यथा अत्र वटे यक्षिणी प्रतिवसतीत्येव ऐतिह्यम्। उपमानं यथा – गौरिव गवयः। समुद्र इव तडागः। एतानि षट् प्रमाणानि त्रिषु = दृष्टादिष्वन्तर्भूतानि। तत्रानुमाने तावदर्थापत्तिरन्तर्भूता। सम्भवाऽभावप्रतिभैतिह्योपमानाश्चाप्तवचने। तस्मात्त्रिष्वेव सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्। **त्रिविधं प्रमाणमिष्टम्**। तदाह – तेन त्रिविधेन प्रमाणेन प्रमेयसिद्धिः भवतीति वाक्यशेषः। **प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि**। प्रमेयं- प्रधानं, बुद्धिरहङ्कार, पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानि, पुरुष इति। एवं पञ्चविंशतितत्त्वानि व्यक्ताव्यक्तज्ञारित्युच्यन्ते, तत्र किञ्चित् प्रत्यक्षेण साध्यं किञ्चिदनुमानेन किञ्चिदागमेनेति त्रिविधं प्रमाणमुक्तम्।।४।।

भाष्यानुवादः

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

इस प्रकार इनके व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ – इन तीनों पदार्थों का कौनसे कितने प्रमाणों से अथवा किससे कौन से प्रमाण से सिद्धि होती है? (कहने का तात्पर्य यह है कि क्या इन प्रमेयों की सिद्धि एक प्रमाण अथवा अनेक प्रमाणों से सिद्धि होती है?) इस संसार में प्रमेयवस्तु को प्रमाण के द्वारा ही सिद्ध किया जाता है। जैसे प्रस्थ आदि से व्रीहि, तुला से चन्दन आदि। इसलिए प्रमाण को कहना चाहिए।

दृष्टमिति० प्रत्यक्ष जैसे – श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण – ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन पाँचों का यथाक्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध – ये पाँच विषय हैं। श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को, त्वक् इन्द्रिय स्पर्श को, चक्षुरिन्द्रिय रूप को, रसनेन्द्रिय रस को और घ्राणेन्द्रिय गन्ध को ग्रहण करता है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है – ऐसा कहा जाता है। प्रत्यक्ष से अथवा अनुमान से जो विषय गृहीत नहीं होता है, उसे आप्तवचन नामक प्रमाण से ग्रहण करना चाहिए। जैसे इन्द्र देवराज है, उत्तर में कुरुप्रदेश है, स्वर्ग में अप्सरा आदि हैं। प्रत्यक्ष तथा अनुमान से ग्रहण न होने पर भी आप्तवचन अर्थात् आगम प्रमाण से गृहीत होता है। और कहा भी गया है –

आगमो ह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयाद्विदुः।
क्षीणदोषोऽनृतं वाक्यं ब्रूयाद्धेत्वसम्भवात्।।
स्वकर्मण्यभियुक्तो यः सङ्गद्वेषविवर्जितः।
पूजितस्तद्विधैर्नित्यमाप्तो ज्ञेयः स तादृशः।।

अर्थात् 'आगम ही आप्तवचन प्रमाण है, दोषों के क्षय हो जाने से आप्त कहा जाता है। जिसके दोष क्षीण हो गये हैं तथा जो असत्य वाक्य नहीं बोलता है (वह आप्त है), क्योंकि असत्य बोलने में कोई कारण नहीं होता है। जो अपने कर्म में तत्पर है, सङ्ग और द्वेष से रहित है तथा जो नित्य पूजित है वह आप्त कहलाता है।'

इन तीनों प्रमाणों में ही समस्त प्रमाण सिद्ध हो जाते हैं। (मीमांसा सूत्रकार) जैमिनि ने छः प्रमाण बताए हैं। वे कौनसे प्रमाण हैं? जैसे – अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव, प्रतिभा, ऐतिह्य और उपमान – ये छह प्रमाण है। उनमें से अर्थापत्ति दो प्रकार का है, जैसे – दृष्टार्थापत्ति और श्रुतार्थापत्ति। इनमें से एक पक्ष में आत्मभाव गृहीत होकर, अन्य से भी आत्मभाव का ग्रहण हो जाना दृष्टार्थापत्ति कहा जाता है। देवदत्त दिन में नहीं खाता है, फिर भी वह मोटा दिखता है। अतः अनुमित होता है कि वह रात्रि में खाता है – यह श्रुतार्थापत्ति प्रमाण है। सम्भव प्रमाण जैसे – प्रस्थ यह कहने पर चार कुड़ की सम्भावना करना है। प्राग्, इतरेतर, अत्यन्त और सर्व - अभाव लक्षणक अभाव नामक प्रमाण होता है। प्रागभाव, जैसे देवदत्त कौमार तथा यौवन आदि में। इतरेतराभाव, जैसे पट में घट का अभाव, घट में पट का अभाव। अत्यन्ताभाव, जैसे गधे का श्रृङ्ग, बन्ध्या का पुत्र, आकाश कुसुम की तरह। सर्वाभाव, जैसे प्रध्वंसाभाव जले हुए पट की तरह। जैसे सूखे धान देखने पर वृष्टि के अभाव का ज्ञान होता है। इस प्रकार अभाव अनेक प्रकार से है। प्रतिभा जैसे –

दक्षिणेन च विन्ध्यस्य सह्यस्य च यदुत्तरम्।
पृथिव्यामासमुद्रायां स प्रदेशो मनोरमः।।

अर्थात् 'विन्ध्य के दक्षिण से और सह्य पर्वत के उत्तर से समुद्र पर्यन्त जो पृथिवी का भाग है वह प्रदेश मनोरम है।'

इस प्रकार कहने से उस प्रदेश विशेष में उत्तम गुण है यह प्रतिभा उत्पन्न होती है और जानने वालों का ज्ञान प्रतिभा कहा जाता है। ऐतिह्य प्रमाण, जैसे – इस वट वृक्ष में यक्षिणी वास करती है। उपमान, जैसे – गौ की तरह गवय है। समुद्र सदृश तड़ाग है। ये छह प्रमाण दृष्ट आदि तीनों प्रमाणों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। उनमें से अनुमान में अर्थापत्ति अन्तर्भूत है। सम्भव, अभाव, प्रतिभा, ऐतिह्य, उपमान – ये सब प्रमाण आप्तवचन अर्थात् आगम प्रमाण में अन्तर्भूत हो जाते हैं। इसलिए इन तीनों प्रमाणों में ही समस्त प्रमाणों का अन्तर्भाव हो जाने से तीन ही प्रमाण अभीष्ट है। इसलिए कहा गया है – उन तीन प्रकार के प्रमाणों से प्रमेय पदार्थों की सिद्धि होती है। प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि। प्रधान, बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ, एकादश इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और पुरुष – ये प्रमेय हैं। इस प्रकार व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ संज्ञक पच्चीस तत्त्व कहे गये हैं। उनमें से कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण से, कुछ अनुमान प्रमाण से तथा कुछ आगम प्रमाण से सिद्ध होते हैं। (इस प्रकार) तीन प्रमाण कहे गये।।४।।

प्रतिविषयाऽध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम्।
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनं तु।।५।।

अन्वय :- प्रतिविषयाऽध्यवसायः दृष्टम्, अनुमानं त्रिविधम् आख्यातम्, तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम्, आप्तश्रुतिः तु आप्तवचनम्।

अनुवाद – प्रत्येक विषय के साथ इन्द्रियों का जो अध्यवसाय है, वह दृष्ट प्रमाण कहलाता है। अनुमान तीन प्रकार का कहा गया है – वह लिङ्गपूर्वक और लिङ्गिपूर्वक है। आप्तश्रुति तो आप्तवचन (शब्दप्रमाण) है।

नरहरिः

त्रिषु प्रमाणेषु मध्ये दृष्टम् = प्रत्यक्षं प्रमाणं प्रतिविषयाऽध्यवसाय: = विषयं विषयं प्रति वर्त्तत इति प्रतिविषयम् – इन्द्रियम्, वृत्तिस्तु सन्निकर्षपदेनोच्यत इति वाचस्पति:। अर्थसन्निकृष्टमिन्द्रियमित्यर्थ:। तस्मिन् प्रतिविषये योऽध्यवसाय:, सप्तमीतत्० तदाश्रित: इत्यर्थ:। अयमध्यवसायो बुद्धिव्यापारो ज्ञानम्। अत्राऽध्यवसायग्रहणेन संशयं व्यवच्छिनत्ति, संशयस्या-नवस्थितग्रहणेनानिश्चितरूपत्वात् निश्चयोऽध्यवसायत्वाच्च। श्रोत्रादीनां शब्दादिविषयेषु अध्यवसायो प्रत्यक्षप्रमाणमिति गौडपादा:। अनुमानम् = अनुमीयते अनेनेति। त्रिविधम् = त्रिप्रकारेणाख्यातम् = कथितं विभक्तं प्रसिद्धं वा। यथा – पूर्ववद्, शेषवद्, सामान्यतोदृष्टञ्चेति। पूर्वमस्यास्तीति पूर्ववद्, कारणं दृष्ट्वा कार्यस्यानुमानमित्यर्थ:। यथा मेघोन्नत्या वृष्टे: ज्ञानम्, पूर्वदृष्टत्वात्। शेषवद् – शिष्यते परिशिष्यते, अयमेव विषयतया यस्यास्ति अनुमितिज्ञानस्य तत् शेषवद्। यथा समुद्रादेकं जलपलं लवणमासाद्य शेषस्याप्यस्ति लवणभाव इति। सामान्यतोदृष्टं यथा देशान्तराद्देशान्तरं दृष्टं गतिमच्चन्द्रतारकं चैत्रवत्। यथा चैत्रनामानं देशान्तराद्देशान्तरं प्राप्तमवलोक्य गतिमानयम् इति तद्वच्चन्द्रतारकमिति सामान्यतोदृष्टेन साधयति। तदनुमानं लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम् – लिङ्गपूर्वकम् लिङ्गिपूर्वकं चेति। लिङ्गं व्याप्यम्, लिङ्गी व्यापकमिति। शङ्कितसमारोपितोपाधिनिराकरणेन वस्तुस्वभावप्रतिबद्धं व्याप्यम्, येन च प्रतिबद्धं तद्व्यापकम्। लिङ्गपूर्वकमिति – लिङ्ग्यते अनेनेति, लिङ्ग्यते गम्यते ज्ञायते अप्रत्यक्षोऽर्थोऽनेनेति लिङ्गम्। यत्र लिङ्गेन हेतुना लिङ्गी कार्यमनुमीयते। यथा दण्डेन यति:, लिङ्गिपूर्वकं तु यत्र लिङ्गिना साध्येन कार्येण वा लिङ्गं कारणमनुमीयते। यथा दृष्ट्वा यतिमस्येदं त्रिदण्डमिति।

अनुमानं द्विविधमिति वाचस्पति:। वीतमवीतञ्चेति। तत्राऽन्वयमुखेन प्रवर्त्तमानं विधायकं वीतम्। व्यतिरेकमुखेन प्रवर्त्तमानं निषेधकमवीतम्। अवीतं तु शेषवदनुमानम्। वीतानुमानं द्वेधा = पूर्ववत् सामान्यतोदृष्टञ्च। तत्रैकं दृष्टस्वलक्षणसामान्यविषयं यत्तत्पूर्ववत्, पूर्वं प्रसिद्धं दृष्टस्वलक्षणसामान्यमिति यावत्, तदस्य विषयत्वेनास्त्यनुमानज्ञानस्येति पूर्ववत्। यथा धूमाद् वह्नित्वसामान्यविशेष: पर्वतेऽनुमीयते। तस्य च वह्नित्वसामान्यविशेषस्य स्वलक्षणं वह्निविशेषो दृष्टो रसवत्याम्। अपरञ्च वीतं सामान्यतोदृष्टम् = अदृष्टस्वलक्षणसामान्यविषयम्। यथेन्द्रियविषयकमनुमानम्। आप्तश्रुति: = आप्ता: आचार्या: ब्रह्मादय:, श्रुतिर्वेद:, आप्ताश्च श्रुतिश्च आप्तश्रुति:, तदुक्तमाप्तवचनमिति। श्रुतिवाक्यजनितं वाक्यार्थज्ञानमित्यर्थ:। तच्च स्वत: प्रमाणम्, अपौरुषेयवेदवाक्यजनितत्वेन सकलदोषाशङ्काविनिर्मुक्तत्वेन युक्तं भवति। एवं वेदमूलस्मृतीतिहासपुराणवाक्यजनितमपि ज्ञानं युक्तं भवति। अत्राप्तग्रहणेनाऽयुक्ता: शाक्यभिक्षुर्निग्रन्थकसंसारमोचकादीनामागमाभासा: परिहृता: भवन्तीति वाचस्पति:। प्रत्यक्षस्यानुमाने अनुमानस्य चागमे परम्परया कारणत्वं सिद्ध्यति। यत: प्रत्यक्षज्ञानं विना व्याप्ते:, शब्दार्थसम्बन्धं च विना शाब्दबोधस्य प्रतिपत्ति: न भवितुं शक्नोति।।५।।

गौडपादभाष्यम्

तस्य किं लक्षणम्? एतदाह – प्रतिविषयेषु = श्रोत्रादीनां शब्दादिविषयेषु अध्यवसायो दृष्टम्, प्रत्यक्षमित्यर्थ:। **त्रिविधमनुमानमाख्यातम्**। पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्टं चेति। पूर्वमस्यास्यतीति पूर्ववत्। यथा मेघोन्नत्या वृष्टिं साधयति, पूर्वदृष्टत्वात्। शेषवद्यथा – समुद्रादेकं जलपलं लवणमासाद्य शेषस्याप्यस्ति लवणभाव इति। सामान्यतोदृष्टं देशान्तराद्देशान्तरं दृष्टं गतिमच्चन्द्रतारकं चैत्रवत्। यथा चैत्रनामानं देशान्तराद्देशान्तरं प्राप्तमवलोक्य गतिमानयम् इति तद्वच्चन्द्रतारकमिति। तथा पुष्पिताऽम्रदर्शनादन्यत्र पुष्पिता आम्रा इति सामान्यतोदृष्टेन साधयति, एतत्सामान्यतोदृष्टम्। किञ्च **तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमिति**। तदनुमानं लिङ्गपूर्वकं = यत्र लिङ्गेन लिङ्गी अनुमीयते, यथा दण्डेन यति:। लिङ्गपूर्वकं च = यत्र लिङ्गिना लिङ्गमनुमीयते, यथा दृष्ट्वा यतिमस्येदं त्रिदण्डमिति। आप्तश्रुतिराप्तवचनञ्च। आप्ता: = आचार्या: ब्रह्मादय:, श्रुतिर्वेद:, आप्ताश्च आप्तश्रुति: तदुक्तमाप्तवचनमिति। एवं त्रिविधं प्रमाणमुक्तम्।।५।।

भाष्यानुवाद:

उसका क्या लक्षण है? इसलिए कहा गया – प्रतिविषयेषु० प्रत्येक विषयों में अर्थात् श्रोत्र आदि इन्द्रियों का शब्द आदि विषयों में जो अध्यवसाय है वह दृष्ट • प्रत्यक्ष है। त्रिविधमनुमानमाख्यातम्० तीन प्रकार का अनुमान कहा गया है। जैसे – पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। इसका पूर्व है इसलिए यह पूर्ववत्। जैसे – उन्नत मेघ को देखकर वर्षा का अनुमित्यात्मक ज्ञान की सिद्धि की जाती है। शेषवत्, जैसे – समुद्र से एक चुल्लू भर पानी में लवणत्व का ज्ञान कर शेष समुद्र में लवणत्व की सत्ता की सिद्धि करना। सामान्यतोदृष्ट, जैसे – एकदेशस्थ चन्द्र और तारों को अन्यदेश में देखकर चन्द्र और तारा गतिमान् है, ऐसा ज्ञान। जैसे – चैत्र। चैत्र नामक व्यक्ति एकदेश से अन्यदेश में प्राप्त और दृष्ट होने पर यह चैत्र गतिमान् है ऐसा ज्ञान होता है, वैसे ही चन्द्र और तारा भी। जैसे एक आम के वृक्ष में पुष्प को देखकर अन्यत्र सभी आम के वृक्षों में पुष्पत्व का ज्ञान सामान्यतोदृष्ट अनुमान प्रमाण से सिद्ध किया जाता है। यह सामान्यतोदृष्ट अनुमान प्रमाण है। और फिर वह हेतु और साध्यपूर्वक है। वह अनुमान लिङ्गपूर्वक – जिसमें लिङ्ग • हेतु से लिङ्गी • साध्य का अनुमित्यात्मक ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे – दण्ड से यति का। और लिङ्गिपूर्वक – जिसमें लिङ्गी • कार्य से लिङ्ग • हेतु का अनुमित्यात्मक ज्ञान

होता है। जैसे – आचार्य ब्रह्मा आदि है। श्रुति वेद है। और आप्त और श्रुति • आप्तश्रुति – इसलिए कहा गया है – आप्तवचन। इस प्रकार तीन प्रमाण कह दिये हैं।।५।।
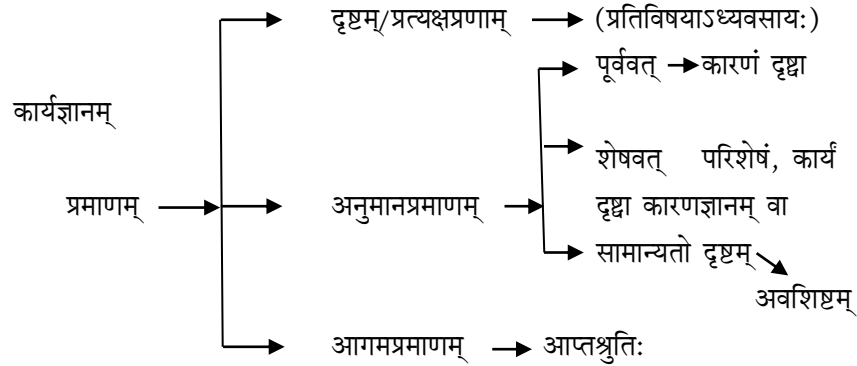
चित्रम् :-

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्।
तस्मादपि चाऽसिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्।।६।।

अन्वय :- सामान्यत: तु प्रतीति: दृष्टात्, अतीन्द्रियाणां (प्रतीति:) अनुमानात्, तस्मात् अपि च असिद्धम् परोक्षम् आप्तागमात् सिद्धम्।

अनुवाद :- सामान्यतया प्रत्यक्ष प्रमाण से ही समस्त विषयों की उपलब्धि होती है। इन्द्रियातीत विषयों की प्रतीति अनुमान प्रमाण से होती है। तथा दृष्ट और अनुमान से जिनकी सिद्धि नहीं होती है, उनकी प्रतीति आप्तवचन प्रमाण से होती है।

नरहरि:

सामान्यत: = सामान्यरूपेण साधारणतया तु = बहुश: प्रायशो वा पदार्थानां प्रतीति: ज्ञानमनुभवो वा दृष्टात् = प्रत्यक्षप्रमाणेन जायते। अतीन्द्रियाणाम् = इन्द्रियातीतानां पदार्थानां इन्द्रियाण्यतीत्य इत्यर्थ:। एषां पदार्थानां सिद्धि: सामान्यतोदृष्टानुमानेन जायते। यथा प्रधानपुरुषौ इन्द्रियातीतौ, एतौ सामान्येन दृष्टेनानुमानेन साध्येते। तस्मादपि च असिद्धं = न सिद्धं परोक्षम् = न प्रत्यक्षम्, आप्तागमात् = आप्तवचनादिति सिद्धम् = सिद्ध्यतीत्यर्थ:। यथा – देवराजो इन्द्र:, उत्तरा: कुरव:, स्वर्गे अप्सरस् इति ज्ञानम्। अत्राऽतीन्द्रियपदार्थानां सिद्धि: सामान्यतोदृष्टानुमानप्रमाणेन जायते। परन्तु येषां सिद्धि: तेनैव भवितुं न शक्नोति तेषां तु आगमप्रमाणेन सिद्धि: यास्यतीत्यपरे। अदृष्टस्वलक्षणसामान्यविषयकं वीतानुमानं सामान्यतोदृष्टानुमानं भवति। अनेनैव अतीन्द्रियाणां पदार्थानां सिद्धि: जायते। यथा – कृतकत्वानित्यत्वयो: सहचारदर्शनादन्यत्र शब्दादौ अपि कृतकत्वदर्शनादनित्यत्वस्या-नुमिति: भवति। वाचस्पतिस्तु शेषवदनुमानप्रमाणेन अतीन्द्रियपदार्थानां ग्रहणं स्वीकरोति।।६।।

गौडपादभाष्यम्

तत्र केन प्रमाणेन किं साध्यम्? उच्यते = सामान्यतोदृष्टादनुमानादतीन्द्रियाणामि-न्द्रियाण्यतीत्य वर्त्तमानानां प्रतीति: सिद्धि:। प्रधानपुरुषावतीन्द्रियौ सामान्यतोदृष्टेनानुमानेन साध्येते, यस्मान्महदादिलिङ्गं त्रिगुणं, यस्येदं त्रिगुणं कार्यं तत्प्रधानमिति। यतश्चाऽचेतनं चेतनमिवाभाति अतोऽन्योऽधिष्ठाता पुरुष इति। व्यक्तं प्रत्यक्षसाध्यम्, तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात्सिद्धम्। ''यथेन्द्रो देवराज:, उत्तरा: कुरव:, स्वर्गेऽप्सरस्'' इति परोक्षमाप्तवचनात् सिद्धम्।।६।।

भाष्यानुवाद:

उनमें से किस प्रमाण के द्वारा कौनसा विषय गृहीत (सिद्ध) होता है? अब कहा जाता है कि – सामान्यत०। सामान्यतोदृष्ट अनुमान प्रमाण के द्वारा इन्द्रियों से अतिरेक अर्थात् अगृहीत वर्त्तमान पदार्थों की प्रतीति होती है, जैसे – प्रधान और पुरुष अतीन्द्रिय है, ये दोनों सामान्यतोदृष्ट अनुमान प्रमाण से सिद्ध होते हैं। क्योंकि महदादिलिङ्ग त्रिगुणात्मक है, जिसका यह त्रिगुणात्मक कार्य है वह प्रधान है। और भी क्योंकि अचेतन यह कार्य चेतन की तरह प्रतीत होता है, अत: (इसका कोई अन्य) अधिष्ठाता पुरुष है। व्यक्ततत्त्व प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होते हैं। तस्माद०। इन दोनों से प्रतीति न होने वाला पदार्थ आप्तागम प्रमाण से गृहीत होता है। जैसे – इन्द्र देवराज है, उत्तर में कुरुदेश है, स्वर्ग में अप्सरा आदि है – ये सब परोक्ष आप्तवचन प्रमाण से सिद्ध होते हैं।।६।।

अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च।।७।।

अन्वय :- अतिदूरात्, सामीप्यात्, इन्द्रियघातात्, मनोऽनवस्थानात्, सौक्ष्म्यात्, व्यवहारात्, अभिभवात्, समानाभिहारात् च (सत्तामप्यर्थानामुपलब्धिर्न भवति)।

अनुवाद :- अत्यन्त दूर होने से, अत्यन्त समीप होने से, इन्द्रियों के सामर्थ्य नष्ट होने से, मन के एक जगह पर न रहने से, अतिसूक्ष्म होने से, व्यवधान होने से, किसी अन्य से अभिभूत हो जाने से और अपने सदृश का व्यवहार हो जाने से पदार्थ की सत्ता रहने पर भी उपलब्ध नहीं होता है।

नरहरि:

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

लोके यत् नोपलभ्यते तन्नास्तीति उच्यते। अतः प्रकृतिपुरुषयोः उपलब्ध्याभावात् तौ न स्त इति यदुच्यते, तन्निराकर्त्तुमुच्यते – सत्तामप्यर्थानामष्टधा नोपलब्धिर्भवति। यथा – अतिदूरात्, सामीप्यात्, इन्द्रियघातात्, मनोऽनवस्थानात्, सौक्ष्म्यात्, व्यवधानात्, अभिभवात्, समानाभिहाराच्चेति। अतिदूरात् यथा – देशान्तरस्थानां चैत्रमित्रादीनाम्। सामीप्याद् यथा – चक्षुषाञ्जनानुपलब्धिः, इन्द्रियघातात् यथा – बधिरान्धयोः शब्दरूपानुपलब्धिः, मनोऽनवस्थानात् यथा – व्यग्रचित्तः सम्यक्कथितमपि नावधारयति। सौक्ष्म्याद्यथा – धूमोष्मपरमाणवः आकाशगताऽपि नोपलभ्यन्ते। व्यवधानाद्यथा – कुड्येन पिहितं वस्तु नोपलभ्यते। अभिभवाद्यथा – सूर्यतेजसाभिभूता ग्रहनक्षत्रतारकादयो नोपलभ्यन्ते। समानाभिहाराद्यथा मुद्गराशौ मुद्गः क्षिप्ते पुनः नोपलभ्यते, समानद्रव्यमध्याहृतत्वात्। एवमष्टधाऽनुपलब्धिः सत्तामप्यर्थानामिह दृष्टा।।७।।

गौडपादभाष्यम्

अत्र कश्चिदाह – प्रधानं पुरुषो वा नोपलभ्यते, यच्च नोपलभ्यते लोके तन्नास्ति, तस्मात्तावपि न स्तः। यथा द्वितीयं शिरः, तृतीयो बाहुरिति। तदुच्यते – अत्र सत्तामप्यर्थानामष्टधोपलब्धिर्न भवति। तद्यथा – इह सत्तामप्यर्थानामतिदूरादनुपलब्धि-र्दृष्टा। यथा – देशान्तरस्थानां चैत्रमित्रविष्णुमित्राणाम्। सामीप्याद्यथा – चक्षुषोऽञ्जनानुपलब्धिः। इन्द्रियाभिघाताद्यथा – बधिरान्धयोः शब्दरूपानुपलब्धिः। मनोऽनवस्थानाद्यथा – व्यग्रचित्तः सम्यक्कथितमपि नावधारयति। सौक्ष्म्याद्यथा – धूमोष्मजलनीहारपरमाणवो गगनगता नोपलभ्यन्ते। व्यवधानाद्यथा – कुड्येन पिहितं वस्तु नोपलभ्यते। अभिभवाद्यथा – सूर्यतेजसाभिभूता ग्रहनक्षत्रतारकादयो नोपलभ्यन्ते। समानाभिहाराद्यथा – मुद्गराशौ मुद्गः क्षिप्तः, कुवलया-मलकमध्ये कुवलयाऽमलके क्षिप्ते, कपोतमध्ये कपोतो नोपलभ्यते, समानद्रव्यमध्याहृतत्वात्। एवमष्टधाऽनुपलब्धिः सत्तामर्थानामिह दृष्टा।।७।।

भाष्यानुवादः

यहाँ पर किसी (पूर्वपक्ष) ने कहा है कि – प्रधान अथवा पुरुष उपलब्ध नहीं होते हैं। इसलिए ये दोनों नहीं है। (इनकी सत्ता नहीं है) जैसे – दूसरा सिर, तीसरा हाथ (इनके उपलब्ध नहीं होने पर इनकी सत्ता नहीं मानी जाती है)। अब (उत्तर पक्ष साङ्ख्याचार्य) उसको कहते हैं कि – यहाँ पर वस्तु की सत्ता होने पर भी आठ कारणों से इनकी उपलब्धि नहीं होती है। वह जैसे – यहाँ पर वस्तुओं की सत्ता रहने पर भी अतिदूर के कारण उनकी अनुपलब्धिता देखी जाती है। जैसे अतिदूर (किसी) अन्य देश में स्थित चैत्र, मैत्र, विष्णुमित्र आदि। (इनकी द्रष्टा से अतिदूर में अवस्थिति के कारण ये नहीं दिखते हैं)। समीप से, जैसे अञ्जन के रहने पर भी चक्षु के द्वारा उसका ग्रहण न होने पर अनुपलब्धिता देखी गयी है। इन्द्रिय के नष्ट होने से, जैसे बधिर के लिए शब्द की तथा अन्ध के लिए रूप की उपलब्धि नहीं होती है। मन के स्थिर न रहने से, जैसे व्यग्रचित्त वाला भली भाँति कहे जाने पर भी विषय को ग्रहण नहीं कर पाता। अतिसूक्ष्म से, जैसे धूम, उष्म, जल, नीहार, परमाणु आदि आकाशस्थित होने पर भी उपलब्ध नहीं होते हैं। व्यवधान से, जैसे दीवारों से बन्द की हुई वस्तु उपलब्ध नहीं होती है। अभिभूत होने से, जैसे दिन में सूर्य के तेजस् से ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि अभिभूत होने के कारण उपलब्ध नहीं होते हैं। समान का व्यवहार हो जाने से, जैसे मूँग के समूह में एक मूँग, नील कमल के समूह में एक नीलकमल, आँवले के समूह में एक आँवला, कपोतों के बीच एक कपोत जैसे अलग उपलब्ध नहीं होता है, क्योंकि ये सब अपने सदृश द्रव्यों के मध्य मिल जाते हैं। इस प्रकार इस संसार में पदार्थों की सत्ता रहने पर भी (उपर्युक्त) आठ कारणों से (उनकी) अनुपलब्धिता देखी जाती है।।७।।

सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाऽभावात् कार्यतस्तदुपलब्धिः।
महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिविरूपं सरूपञ्च।।८।।

अन्वय :- तदनुपलब्धिः सौक्ष्म्यात्, न अभावात्। तदुपलब्धिः कार्यतः (जायते)। कार्यं च महदादि। तत् च प्रकृतिविरूपं सरूपं च (वर्त्तते)।

अनुवाद :- अतिसूक्ष्म होने के कारण ही प्रकृति की प्रतीति नहीं होती है, न कि अभाव के कारण। उस प्रकृति की उपलब्धि उसके कार्यतत्त्वों से हो जाती है। और ये कार्य महदादि पञ्चभूतान्त तत्त्व ही है। और ये महदादि तत्त्व प्रकृति के विसदृश तथा सदृश रूप वाले हैं।

नरहरिः

अत्र कारिकाकारः प्रधानस्यानुपलब्धौ कारणं दर्शयति। तदनुपलब्धिः = तस्य प्रधानस्यानुपलब्धिः = उपलब्धेः अभावः नोपलब्धिः, तत्र हेतुं दर्शयति – सौक्ष्म्यात् = सूक्ष्मतायाः भावः तस्मादिति अतिसूक्ष्मादित्यर्थः, न अभावात्। न तु तस्य असत्तात्वात् तदुपलब्धिः, तस्य प्रधानस्य उपलब्धिः = प्राप्तिः, यदि चोपलभ्यते तर्हि कथं? तदुच्यते – कार्यतः = कार्यं दृष्ट्वा कारणमनुमीयत इति प्रधानमनुमीयते वा। तत् च कार्यं महदादिः = महान् आदौ यस्य समुदायस्य बुद्धिः, अहङ्कार, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चतन्मात्राणि, पञ्चमहाभूतानि चेति। एषु आदौ महदेव जायते, तस्मादन्य इति। इदं च कार्यं प्रकृतिविरूपं = विरूद्धं विपरीतं रूपं, प्रकृतेः असदृशं वा। सरूपं प्रकृतेः सरूपम् = प्रकृतिसादृश्यं सदृशगुणोपेतं वा। यथा इह खलु संसारे पितुस्तुल्य पुत्र भवत्यतुल्यश्च। तथा कार्यम्।।८।।

गौडपादभाष्यम्

एवञ्चास्ति किमभ्युपगम्यते – प्रधानपुरुषयोरप्येतयोर्वाऽनुपलब्धिः केन हेतुना? केन चोपलब्धिः? तदुच्यते –**सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिः**, प्रधानस्येत्यर्थः। प्रधानं सौक्ष्म्यान्नोपलभ्यते, यथाकाशे धूमोष्मजलनिहारपरमाणवः सन्तोऽपि नोपलभ्यन्ते। कथं तर्हि तदुपलब्धिः? **कार्यतस्तदुपलब्धिः**। कार्यं दृष्ट्वा कारणमनुमीयते। अस्ति प्रधानं कारणं यस्येदं कार्यम्। बुद्धिरहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतान्येव तत्कार्यम्। **तच्च कार्यं प्रकृतिविरूपम्**। प्रकृतिः = प्रधानं, तस्य विरूपं = प्रकृतेरसदृशम्। सरूपञ्च = समानरूपं च। यथा लोकेऽपि पितुस्तुल्य इव पुत्रः भवत्यतुल्यश्च। येन हेतुना तुल्यमतुल्यं, तदुपरिष्टाद्वक्ष्यामः॥८॥

भाष्यानुवादः

इस प्रकार ये (आठ कारणों के) रहने पर क्या सिद्ध हो जाएगा? अथवा इन दोनों प्रकृति और पुरुष की अनुपलब्धि किस हेतु से और (उन दोनों की) उपलब्धि किस कारण से है? उस पर कहते हैं – सौक्ष्यात्० (यहाँ पर तत् पद का तात्पर्य) प्रधान का है। अतिसूक्ष्म होने के कारण प्रकृति उपलब्ध नहीं होती है। जैसे – आकाश में धूम, उष्मा, जल तथा हिमकणों के परमाणु आदि रहने पर भी (उनके अस्तित्व) उपलब्ध नहीं होते हैं। तब कैसे उनकी उपलब्धि होती है? (अब इसके समाधान में कहते हैं) कार्यतः० अर्थात् कार्य से उनकी उपलब्धि होती है। (क्योंकि) कार्य को देखकर कारण का अनुमित्यात्मक ज्ञान किया जाता है। प्रधान कारण है – जिसका यह समस्त प्रपञ्च कार्य है। जैसे बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्र, ग्यारह इन्द्रियाँ पाँच महाभूत ही उस प्रकृति के कार्य हैं। और यह उसके कार्य प्रकृतिविरूप प्रकृति • प्रधान, उसके विरूप • विरूद्धरूप अर्थात् असदृश है। और सरूप • समानरूप, सदृशरूप है। जैसे इस संसार में भी पिता के तुल्य पुत्र होता है और अतुल्य वाला भी होता है। जिस कारण तुल्य है अथवा अतुल्य है, उसको आगे कहेंगे॥८॥

टिप्पणी :-

अब यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि कारिका सं० ६ में ईश्वरकृष्ण ने कहा है कि प्रकृति की सिद्धि सामान्यतोदृष्ट अनुमान से होती है। अब कारिका० सं० ८ में कह रहे हैं कि प्रकृति की सिद्धि कार्य से कारण ज्ञान से होती है। अर्थात् शेषवत् अनुमान से होती है। यह कुछ असङ्गत प्रतीत हो रहा है।

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥९॥

अन्वय :- असदकरणात्, उपादानग्रहणात्, सर्वसम्भवाभावात्, शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावात् च कार्यं सत्।

अनुवाद :- असत् को उत्पन्न न कर सकने से, उपादान के ग्रहण करने से, सब कारणों से सब कार्य की उत्पत्ति न होने से, जो जिसके उत्पादन में समर्थ है उस कारण से वही कार्य होने से और कारण की सत्ता होने से कार्य सत् है अर्थात् अभिव्यक्ति से पहले कार्य कारण में अव्यक्त रूप में निहित होता है।

नरहरिः

प्रत्येकं दर्शनसम्प्रदाये तत्सम्प्रदायविदः स्वाभिमतं कार्यकारणस्वरूपं प्रतिपादयन्ति। तत्र साङ्ख्यविपश्चितः सत्कार्यवादमभ्युपगच्छन्ति। अतः साङ्ख्यानुसारं कार्यं सत्, तत्कार्यं स्वकीये कारणे उत्पत्तेः प्राक् अव्यक्तरूपेण तिष्ठति। तत्कार्यकारणवादं स्पष्टीकर्त्तुं पञ्चहेतून् प्रदर्शयति। यथा कार्यं सत् असदकरणात्, उपादानग्रहणात्, सर्वसम्भवाभावात्, शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावात् च। असदकरणात् = न सत् असत्, असतः अकरणम् असदकरणम्, तस्माद् असदकरणात्। असदः उत्पादो न जायते, नृश्रृङ्गवत्। यतः लोके असतः करणं न विद्यते। तस्मात् सतः करणादस्ति प्रागुत्पत्तेः प्रधाने महदादिव्यक्तम्। उपादानग्रहणात् = उपादीयते अनेनेति उपादानं, तस्य ग्रहणात् प्राप्यते च। लोके यो येनाऽर्थी, स तदुपादानं गृह्णाति। यथा दधिकामो दुग्धस्य ग्रहणं करोति, न तु जलस्य। सर्वसम्भवाभावात् = सर्वस्मात् सर्वस्य सम्भवो उत्पत्तिः, तस्य अभावः, सर्वस्य सर्वत्र उत्पादो नास्तीत्यर्थः। यथा सुवर्णस्य रजतादौ। शक्तस्य शक्यकरणात् – यः यस्मिन् शक्तः तस्मात् शक्यकरणात् इति। यथा कुलालः शक्तः मृद्दण्डचक्रचीवररज्जुनीरादिकरणम्, उपकरणं वा शक्यमेव घटं मृत्पिण्डादुत्पादयति, तस्मात् कार्यं सत्। कारणभावात् कारणस्य सत्त्वत्वात्। अतः कारणं यल्लक्ष्यमेव तादृशमेव लक्षणोपेतं कार्यमुत्पद्यते। यथा धान्येभ्यो धान्याः, न ब्रीहयः। एवं एभिः पञ्चभिः हेतुभिः सिद्धं यत्प्रधाने महदादि लिङ्गमस्ति। अतः सतः उत्पत्तिरेव जायते न तु असतः॥९॥

गौडपादभाष्यम्

यदिदं महदादिकार्यं तत्किं प्रधाने सत् उताऽहोस्विदसत्? आचार्यविप्रतिपत्तेरयं संशयः। यतोऽत्र साङ्ख्यदर्शने सत्कार्यं, बौद्धादीनामसत्कार्यम्। यदि सत्, असन्न भवति। अथाऽसत्, सन्न भवतीति विप्रतिषेधः। तत्राह **असदकरणात्** न सत् = असत्, असतोऽकरणं, तस्मात्सत्कार्यम्। इह लोकेऽसत् करणं नास्ति, यथा सिकताभ्य-स्तैलोत्पत्तिः। तस्मात् सतः करणादस्ति प्रागुत्पत्तेः प्रधाने व्यक्तम्। अतः सत्कार्यम्। किञ्चान्यत् **उपादानग्रहणात्**। उपादानं

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

= कारणं, तस्य ग्रहणात्। इह लोके यो येनार्थी, स तदुपादानग्रहणं करोति। यथा दध्यर्थी क्षीरस्य, न तु जलस्य। तस्मात् सत्कार्यम्। इतश्च **सर्वसम्भवाभावात्** सर्वस्य सर्वत्र सम्भवो नास्ति। यथा सुवर्णस्य रजतादौ, तृणपांशुसिकतासु। तस्मात् सर्वसम्भवाभावात् सत्कार्यम्। इतश्च **शक्तस्य शक्यकरणात्**। इह कुलालः शक्तो मृद्दण्डचक्रचीवररज्जुनीरादिकरणोपकरणं वा शक्यमेव घटं मृत्पिण्डादुत्पादयति, तस्मात् सत्कार्यम्। इतश्च **कारणभावाच्च** सत्कार्यम् कारणं यल्लक्षणमेव कार्यमपि, यथा यवेभ्यो यवाः ब्रीहिभ्यो ब्रीहयः। यदाऽसत्कार्यं स्यात्ततः कोद्रेवेभ्यः शालयः स्युः, न च सन्तीति, तस्मात् सत्कार्यम्। एवं पञ्चभिर्हेतुभिः प्रधाने महदादिलिङ्गमस्ति। तस्मात् सतः उत्पत्तिर्नाऽसत्॥९॥

भाष्यानुवादः

जो यह महदादि कार्य वह क्या प्रधान में सत् (वर्त्तमान) है अथवा असत्? (इस प्रसङ्ग पर) आचार्यों के वैमत्य होने से यह शङ्का? क्योंकि यहाँ पर साङ्ख्यदर्शन में सत्कार्यवाद, बौद्ध आदि दर्शनों में असत्कार्यवाद का ग्रहण किया गया है। यदि सत् है, तो असत् नहीं हो सकता है। अथवा यदि असत् है, तो सत् भी नहीं है, यह विप्रतिषेध है। (परस्पर विरोधी कथन)। अब कहा गया कि असद्, न सत् • असत्, असत् हो अकरण, इसलिए कार्य सत् है। इस संसार में असत् करण नहीं है, जैसे – रेत से तैल की उत्पत्ति। इसलिए करण के सत् होने पर अपनी उत्पत्ति से पहले व्यक्ततत्त्व प्रधान में है। अतः कार्य सत् है। फिर अन्य क्या है? उपादान० उपादान के ग्रहण करने से कार्य सत् है। उपादान – कारण, उसके ग्रहण करने से। इस संसार में जो जिस (कार्य) के प्रति प्रवृत्त होता है, वह उसका उपादान ग्रहण करता है। जैसे – दधि को चाहने वाला क्षीर (इस उपादान) का ग्रहण करता है, न जल का। इसलिए कार्य सत् है। और इसके बाद सर्वसम्भव० अर्थात् सबसे सबकी सर्वत्र उत्पत्ति सम्भव नहीं होती है। जैसे – सुवर्ण की रजत् आदि में अथवा तृण, धूल तथा रेतों आदि में। और फिर शक्तस्य० अर्थात् जो कारण जिस कार्य को उत्पन्न करने में समर्थ है, वह उसी कार्य को उत्पन्न करता है। जैसे – यहाँ पर कुम्भकार मिट्टी, दण्ड, चक्र, चीबर, रज्जु, जल आदि के द्वारा (घड़े) को बनाने में समर्थ है अथवा उन सहायक कारणों से घड़े के उत्पादन में वह समर्थ होता है, अतः कार्य सत् है। और फिर कारण० कारण की सत्ता होने से कार्य सत् है। कारण जिस स्वरूप वाला है, कार्य भी उसी प्रकार का होता है। जैसे – जौ से जौ, ब्रीहि से ब्रीहि (ही उत्पन्न होते हैं)। यदि कार्य असत् हो जाता है, तो कोदों से शालि धान हो जाते, परन्तु नहीं होते हैं। इसलिए कार्य सत् है। (अर्थात् उत्पन्न होने से पहले कार्य अव्यक्त रूप से कारण में रहता है)। इस प्रकार उपर्युक्त पाँचों हेतुओं से प्रधान में महद् आदि लिङ्ग है। इसलिए सत् की उत्पत्ति होती है, न कि असत् की॥९॥

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥१०॥

अन्वय :- व्यक्तं हेतुमत्, अनित्यम्, अव्यापि, सक्रियम्, अनेकम्, आश्रितम्, लिङ्गम्, सावयवम्, परतन्त्रम्, (वर्त्तते)। अव्यक्तं विपरीतं (विद्यते)।

अनुवाद :- महदादि पञ्चभूतान्त व्यक्ततत्त्व हेतु से युक्त, अनित्य (उत्पन्नविनाशशील), अव्यापि, सक्रिय, अनेक, आश्रित, लिङ्ग, सावयव और परतन्त्र है। इसके विपरीत स्वभाववाला अव्यक्त – प्रकृतितत्त्व है।

नरहरिः

अत्र कारिकाकारः व्यक्ताव्यक्तयोः वैधर्म्यं, व्यक्तेषु च साधर्म्यं प्रदर्शयति। व्यक्तम् = महदादित्रयोविंशतितत्त्वसङ्घातः कार्यं किं स्वरूपात्मकमिति? उच्यते – हेतुमद् = हेतुः अस्य अस्तीति हेतुमत्। महदादिव्यक्ततत्त्वस्य प्रधानं हेतुरस्ति। अतो हेतुमद् व्यक्तं भूतपर्यन्तम्। यथा हेतुमद् महत्तत्त्वं प्रधानेन, हेतुमानहङ्कारो बुद्ध्या, एवम्। अनित्यम् = न नित्यं विनाशो तिरोभावी वा, उत्पन्नविनाशशालीत्वाद्, घटवत्। अव्यापि = सर्वं परिणामिनं व्याप्नोतीति व्यापि, न व्यापि अव्यापि, असर्वगतमित्यर्थः। सक्रियम् – क्रियया सहितं युक्तम्, परिस्पन्दवद्, संसारकाले अस्य सञ्चरणत्वात् सक्रियम्। अनेकम् – न एकं, महदादि-सङ्घातः त्रयोविंशतिरूपः। यथा बुद्धिरहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राण्येकादशेन्द्रि-याणि, पञ्चभूतानि चेति। आश्रितम् – स्वकारणमाश्रयत इति। यथा प्रधानाश्रिता बुद्धिः, तदाश्रितोऽहङ्कारः एवम्। लिङ्गम् - लययुक्तं प्रलयसमये स्व-स्वकारणे लीयन्त इति। सावयवम् – अवयवैः सह, शब्दस्पर्शादिसहितमित्यर्थः, परतन्त्रम् – परायत्तं न स्वतन्त्रम्, कारणं सर्वदा अपेक्षते। अव्यक्तं प्रधानतत्त्वं विपरीतमस्माद् विरूपमिति – अहेतुमत् – न हेतुमत् अहेतुमदिति, प्रधानस्यानुत्पादत्वात्, न कस्यचित् कार्यम्। नित्यं प्रधानमनुत्पाद्यत्वात्। व्यापि – सर्वगतत्वात्, अक्रियम् – क्रियारहितं सर्वगतत्वादेव, एकं प्रधानम्, सर्वेषां कारणत्वात्, अनाश्रितम् – नाश्रितमकार्यत्वात्, अलिङ्गम् – नित्यत्वात्, अव्यक्तम्। प्रलयकाले कस्मिन्नपि न प्रलीयते, निरवयवम् = अवयवरहितं शब्दस्पर्शाद्यवस्थायां न विद्यन्ते, स्वतन्त्रम् = आत्मनः प्रभवति अव्यक्तमिति। प्रकृतिविरूपमित्यर्थः॥१०॥

गौडपादभाष्यम्

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

प्रकृतिविरूपं सरूपञ्च (इति) यदुक्तं तत् कथमित्युच्यते – व्यक्तं महदादिकार्यं **हेतुमदि**ति। हेतुरस्यास्ति हेतुमत्, उपादानं हेतुः, कारणं निमित्तमिति पर्यायाः। व्यक्तस्य प्रधानं हेतुरस्ति, अतो हेतुमद् व्यक्तं भूतपर्यन्तम्। हेतुमद् बुद्धितत्त्वं प्रधानेन, हेतुमानहङ्कारो बुद्ध्या, पञ्चतन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि हेतुमन्त्यहङ्कारेण। आकाशं शब्दतन्मात्रेण हेतुमत्। वायुः स्पर्शतन्मात्रेण हेतुमान्। तेजो रूपतन्मात्रेण हेतुमत्। आपो रसतन्मात्रेण हेतुमत्यः। पृथिवी गन्धतन्मात्रेण हेतुमती। एवं भूतपर्यन्तं व्यक्तं हेतुमत्। किञ्चान्यत् **अनित्यम्**। यस्मादन्यस्मादुत्पद्यते, यथा – मृत्पिण्डादुत्पद्यते घटः, स चाऽनित्यः। किञ्च **अव्यापि**। असर्वगमित्यर्थः। यथा प्रधानपुरुषौ सर्वगतौ, नैवं व्यक्तम्। किञ्चान्यत् **सक्रियं** = संसारकाले संसरति। त्रयोदशविधेन करणेन संयुक्तं सूक्ष्मं शरीरमाश्रित्य संसरति, तस्मात् सक्रियम्। किञ्चान्यत् **अनेकम्**। बुद्धिरहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानि चेति। किञ्चान्यत् **आश्रितम्** = स्वकारणमाश्रयते। प्रधानाश्रिता बुद्धिः, बुद्धिमाश्रितोऽहङ्कारः, अहङ्काराश्रिता-न्येकादशेन्द्रियाणि, पञ्चतन्मात्राणि च। पञ्चतन्मात्राश्रितानि पञ्चमहाभूतानि। किञ्च **लिङ्गं** = लययुक्तम्। लयकाले पञ्चमहाभूतानि तन्मात्रेषु लीयन्ते, तान्येकादशेन्द्रियैः सहाऽहङ्कारे, स च बुद्धौ, सा च प्रधाने लयं यातीति। तथा **सावयवम्**। अवयवाः शब्दस्पर्शरसरूप-गन्धाः, तैः सह। किञ्च **परतन्त्रम्** = नाऽऽत्मनः प्रभवति। यथा प्रधानतन्त्रा बुद्धिः, बुद्धितन्त्रोऽहङ्कारः, अहङ्कारतन्त्राणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च, तन्मात्रतन्त्राणि पञ्चमहाभूतानि च। एवं परतन्त्रं परायत्तं व्याख्यातं व्यक्तम्।

अथोऽव्यक्तं व्याख्यास्यामः। **विपरीतमव्यक्तम्**। एतैरेव गुणैर्यथोक्तैर्विपरीतमव्यक्तम्। हेतुमद् व्यक्तमुक्तम्। न हि प्रधानात् परं किञ्चिदस्ति, यतः प्रधानस्यानुत्पत्तिः, तस्मादहेतुमदव्यक्तम्। तथाऽनित्यं च व्यक्तं, नित्यमव्यक्तमनुत्पाद्यत्वाद्। न हि भूतानीव कुतश्चिदुत्पद्यत इत्यव्यक्तं प्रधानं (नित्यं)। किञ्चाव्यापि व्यक्तं, व्यापि प्रधानं, सर्वगतत्वात्। सक्रियं व्यक्तमक्रियमव्यक्तं, सर्वगतत्वादेव। तथानेकं व्यक्तमेकं प्रधानं, कारणत्वात्। त्रयाणां लोकानां प्रधानमेकं कारणं, तस्मादेकं प्रधानम्। तथाश्रितं व्यक्तम्, अनाश्रितमव्यक्तमकार्यत्वात्, न हि प्रधानात् किञ्चिदस्ति परं, यस्य प्रधानं कार्यं स्याद्। तथा व्यक्तं लिङ्गम्, अलिङ्गमव्यक्तं नित्यत्वात्। महदादिलिङ्गं प्रलयकाले परस्परं प्रलीयन्ते, नैव प्रधानं, तस्मादलिङ्गं प्रधानम्। तथा सावयवं व्यक्तं, निरवयवमव्यक्तम्। न हि शब्दस्पर्शरसरूपगन्धाः प्रधाने सन्ति। तथा परतन्त्रं व्यक्तं, स्वतन्त्रमव्यक्तं, प्रभवत्यात्मनः।।१०।।

भाष्यानुवादः

'प्रकृति के विपरीत स्वभाव वाला और सदृशरूप वाला' जो कहा गया है वह किस प्रकार से? इसके समाधान में कहते हैं कि – व्यक्त, जो महद् आदि कार्य है, वह – हेतु वाला है। इसका हेतु विद्यमान है, इसलिए हेतुवाला है, (यहाँ पर) उपादान, हेतु० कारण तथा निमित्त – ये सब पर्यायवाचक है। व्यक्ततत्त्व का प्रकृति हेतु है। अतः पाँच महाभूत पर्यन्त व्यक्ततत्त्व हेतुवाला है। प्रकृति के कारण बुद्धितत्त्व हेतुवाला है, बुद्धि के कारण अहङ्कार हेतुवाला है। पाँच तन्मात्र, ग्यारह इन्द्रियाँ अहङ्कार के कारण हेतुवाला है। आकाश शब्दतन्मात्र के कारण हेतुवाला है। वायु स्पर्शतन्मात्र के कारण हेतुवाला है। तेजस् रूपतन्मात्र के कारण हेतुवाला है। जल रसतन्मात्र के कारण हेतुवाला है। पृथिवी गन्धतन्मात्र के कारण हेतुवाला है। इस प्रकार पाँच महाभूतों तक व्यक्त हेतुवाला है। और फिर क्या है? अनित्य० अन्य से उत्पन्न होने के कारण (यह व्यक्ततत्त्व अनित्य है क्योंकि यत् उत्पद्यते तत् विनश्यते), जैसे मिट्टी के पिण्ड से घट उत्पन्न होता है, और वह अनित्य है। और फिर अव्यापि० सब जगह न रहने वाला है। जैसे – प्रधान और पुरुष सर्वत्र रहने वाले हैं, परन्तु व्यक्ततत्त्व नहीं है। और फिर (व्यक्ततत्त्व) सक्रिय है। संसार के समय संसरण करता है। तेरह प्रकार के करणों से संयुक्त होकर सूक्ष्म शरीर का आश्रय ग्रहण करते हुए संसरण करता है, अतः सक्रिय है। और फिर (व्यक्ततत्त्व) अनेक है। जैसे – बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच महाभूत है। और फिर (व्यक्ततत्त्व) आश्रित है। ये व्यक्ततत्त्व अपने कारण का आश्रय ग्रहण करते हैं। जैसे – बुद्धितत्त्व प्रधान तत्त्व में आश्रित है। अहङ्कार बुद्धितत्त्व में आश्रित है। ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्राएँ अहङ्कार में आश्रित है, पाँच महाभूत पाँच तन्मात्राओं में आश्रित है। और फिर (व्यक्ततत्त्व) लिङ्ग है। लय से युक्त। प्रलय के समय में पाँच महाभूत तन्मात्राओं में लीन हो जाते हैं, वे तन्मात्राएँ ग्यारह इन्द्रियों के साथ अहङ्कार में लीन हो जाती है। और वह (अहङ्कार) बुद्धि में लीन हो जाता है, और यह बुद्धि प्रकृति में लीन हो जाती है। वैसे (व्यक्ततत्त्व) सावयव है। अवयव जैसे – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि, इनसे युक्त होना (अर्थात् व्यक्ततत्त्व इन अवयवों से युक्त होने से सावयव है)। और फिर परतन्त्र। दूसरे के अधीन होना। अपने आपसे उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे – प्रधान के अधीन बुद्धितत्त्व है। बुद्धितत्त्व के अधीन अहङ्कार है। अहङ्कार के अधीन तन्मात्र और इन्द्रियाँ, और तन्मात्राओं के अधीन पाँच महाभूत हैं। इस प्रकार परतन्त्र • किसी दूसरे के अधीन। इस प्रकार व्यक्ततत्त्व की व्याख्या कर दी गई।

(अब) इसके अनन्तर अव्यक्ततत्त्व की व्याख्या करेंगे। विपरीत० व्यक्त तत्त्व से विपरीत (स्वभाववाला) अव्यक्ततत्त्व है। उपर्युक्त इन गुणों से विपरीत अव्यक्त है। व्यक्ततत्त्व हेतुवाला कहा गया है। प्रधान से श्रेष्ठ कुछ नहीं है, अत: प्रकृति की किसी से उत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिए अव्यक्ततत्त्व हेतुवाला नहीं है। व्यक्ततत्त्व अनित्य है, किसी से उत्पन्न न होने के कारण अव्यक्ततत्त्व नित्य है। महाभूतों की भाँति यह किसी से उत्पन्न नहीं होता है, अव्यक्ततत्त्व • प्रधानतत्त्व नित्य है। और व्यक्ततत्त्व अव्यापि है, सर्वगत होने से अव्यक्ततत्त्व व्यापि है। व्यक्ततत्त्व सक्रिय है, सर्वत्र रहने के कारण, अव्यक्त तत्त्व अक्रिय, (अर्थात् क्रियाशील नहीं है)। तथा व्यक्ततत्त्व अनेक है, प्रधानतत्त्व (सबके) कारण होने से एक है। तीनों लोकों का प्रधान ही एकमात्र कारण है, अत: प्रधान एक है। तथा व्यक्ततत्त्व आश्रित है। किसी का कार्यरूप न होने से अव्यक्ततत्त्व अनाश्रित है। क्योंकि प्रधान से पर कुछ नहीं है, जिसका प्रधान कार्य हो (अत: प्रधान किसी पर आश्रित नहीं है)। तथा व्यक्ततत्त्व लिङ्ग है। नित्य होने से अव्यक्त अलिङ्ग है। क्योंकि महदादि लिङ्ग प्रलय के समय में परस्पर प्रकर्षरूप से (अपने कारण में) लीन हो जाते हैं, वैसा प्रधान नहीं है। अत: प्रधान अलिङ्ग है। तथा व्यक्ततत्त्व सावयव है, (परन्तु) अव्यक्ततत्त्व अवयव से रहित है। (क्योंकि) शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध (आदि अवयव) प्रधान में नहीं है। तथा व्यक्ततत्त्व परतन्त्र है। अपने से उत्पन्न करने के कारण अव्यक्ततत्त्व स्वतन्त्र है॥१०॥

त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥११॥

अन्वय :- व्यक्तं तथा प्रधानं त्रिगुणम्, अविवेकि, विषय:, सामान्यम्, अचेतनम्, प्रसवधर्मि। पुमान् तद्विपरीत:, तथा च (इति भवति)।

अनुवाद :- व्यक्ततत्त्व (महदादि भूतान्त) तथा अव्यक्ततत्त्व (प्रकृति) त्रिगुण, अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन, प्रसवधर्मि से युक्त है। और पुरुषतत्त्व इसके विपरीत स्वभाववाला तथा इसके समान धर्म वाला है।

नरहरि:

अत्र कारिकाकार: व्यक्ताव्यक्तयो: साधर्म्यं, पुरुषस्य तयो: वैधर्म्यं, प्रधानेन च सह पुरुषस्य साधर्म्यं प्रतिपादयति। व्यक्तं महदादि: तथा प्रधानम् = अव्यक्तम् इति प्रकृतिसरूपमिति कार्यम्। त्रिगुणम् = सत्त्वरजस्तमांसि, त्रयो गुणा: यस्येति। यदात्मकं कारणं तदात्मकं कार्यमिति न्यायादव्यक्तस्य त्रिगुणात्मकत्वात् तत्कार्यस्य व्यक्तस्य त्रिगुणात्मकत्वं सिद्ध्यति। अविवेकि = विवेकज्ञानकर्त्तुमसामर्थ्यम्। प्रधानपुरुषयो: मध्ये विवेको वा। विषय: = सर्वपुरुषविषयभूतत्वात्, भोग्यत्वाद्वा। सामान्यम् – साधारणम्, अनेकै: पुरुषैर्गृहीतत्वादित्यर्थ:। अचेतनम् – न चेतनमिति, सुखदु:खमोहान् न चेतयति। प्रसवधर्मि – प्रसवो धर्मो यस्य – तत्त्वान्तरोत्पन्नत्वात् पुमान् पुरुष: तद्विपरीत: – ताभ्यां व्यक्ताव्यक्ताभ्यां विपरीत:, यथा अत्रिगुणं गुणरहितं वा। विवेकी – पुरुष: अविषय:, न कस्यचित् भोग्य: पुरुष:, विशेष: असामान्यं वा। चेतनं सुखदु:खमोहान् चेतयतीत्यर्थ। अप्रसवधर्मि – न किञ्चित् पुरुषात् प्रसूयत इति। तथा च – प्रकृति सरूपमिति, अहेतुमदित्यादि:। यथा – प्रधानम् अहेतुमद्, नित्यं, व्यापि, अक्रियम्, एकम्, निराश्रितम्, अलिङ्गम्, निरवयवम्, स्वतन्त्रं – तद्वत् पुरुषोऽपि सिद्ध्यतीति॥११॥

गौडपादभाष्यम्

एवं व्यक्ताऽव्यक्तयोर्वैधर्म्यमुक्तं, साधर्म्यमुच्यते। यदुक्तं 'सरूपं च'। **त्रिगुणं** व्यक्तं, सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणा: यस्येति। **अविवेकि** व्यक्तं = न विवेकोऽस्यास्तीति। इदं व्यक्तमिमे गुणा इति न विवेकं कर्त्तुं याति, इयं गौरयमश्व इति यथा। ये गुणास्तद्व्यक्त, यद्व्यक्तं ते च गुणा इति। तथा **विषयो** व्यक्तं, भोग्यमित्यर्थ:, सर्वपुरुषाणां विषयभूतत्वात्। तथा **सामान्यं** व्यक्तं, मूल्यदासीवत् सर्वसाधारणत्वात्। **अचेतनं** व्यक्तं, सुखदु:खमोहान्न चेतयतीत्यर्थ:। तथा **प्रसवधर्मि** व्यक्तम्। तद्यथा – बुद्धेरहङ्कार: प्रसूयते, तस्मात् पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि च प्रसूयन्ते, तन्मात्रेभ्य: पञ्चमहाभूतानि। एतमेते व्यक्तधर्मा: प्रसवधर्मान्ता उक्ता: एवमेभिरव्यक्तं सरूपं, यथा व्यक्तं तथा प्रधानमिति। तत्र त्रिगुणं व्यक्तमव्यक्तमपि त्रिगुणं, यस्यैतन्महदादिकार्यं त्रिगुणम्। इह यदात्मकं कारणं तदात्मकं कार्यमिति। यथा कृष्णतन्तुकृत: कृष्ण एव पटो भवति। तथा अविवेकि व्यक्तं, प्रधानमपि गुणैर्न भिद्यते, अन्ये गुणा:, अन्यत् प्रधानमेवं विवेकं याति। तदविवेकि प्रधानम्। तथा विषयो व्यक्तं, प्रधानमपि सर्वपुरुषविषयभूतत्वात् विषय इति। यथा सामान्यं व्यक्तं, प्रधानमपि, सर्वसाधारणत्वात्। तथाऽचेतनं व्यक्तं, प्रधानमपि सुखदु:खमोहान्न चेतयतीति। कथमनुमीयते? इह ह्यचेतनान्मृत्पिण्डादचेतनो घट उत्पद्यते। तथा प्रसवधर्मि व्यक्तं, प्रधानमपि प्रसवधर्मि। यत: प्रधानाद् बुद्धिरुत्पद्यते। एवं प्रधानमपि व्याख्यातम्।

इदानीं **तद्विपरीतस्तथा च पुमानि**त्येतद् व्याख्यायते। तद्विपरीत: ताभ्यां = व्यक्ताव्यक्ताभ्यां विपरीत: पुमान्। तद्यथा त्रिगुणं व्यक्तमव्यक्तं च, अगुण: पुरुष:। अविवेकि व्यक्तमव्यक्तं च, विवेकी पुरुष:। तथा विषयो व्यक्तमव्यक्तं च, अविषय: पुरुष:। तथा सामान्यं व्यक्तमव्यक्तं च, असामान्य: पुरुष:। अचेतनं व्यक्तमव्यक्तं च, चेतन: पुरुष:। सुखदु:खमोहान् चेतयति = सञ्जानीते तस्माच्चेतन: पुरुष इति। प्रसवधर्मि व्यक्तं प्रधानं च, अप्रसवधर्मि

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

पुरुषः, न हि किञ्चित् पुरुषात् प्रसूयते। तस्माद्युक्तं तद्विपरीतः पुमानिति। तदुक्तं तथा च पुमान् इति। यत् पूर्वस्यामार्यायां प्रधानमहेतुमद्यथा व्याख्यातं तथा पुमान्। तद्यथा हेतुमदनित्यमित्यादि व्यक्तं, तद्विपरीतमव्यक्तं, तत्र हेतुमद् व्यक्तमहेतुमत् प्रधानं, तथा च पुमान् अहेतुमान्, अनुत्पाद्यत्वात्। अनित्यं व्यक्तं, नित्यं प्रधानं, तथा च नित्यः पुमान्। अव्यापि व्यक्तं, व्यापि प्रधानम्, तथा च व्यापी पुमान्, सर्वगतत्वात्। सक्रियं व्यक्तमक्रियं प्रधानम्, तथा च पुमानक्रियः सर्वगतत्वादेव। अनेकं व्यक्तमेकमव्यक्तं, तथा च पुमानप्येकः। आश्रितं व्यक्तमनाश्रितमव्यक्तं, तथा च पुमाननाश्रितः। लिङ्गं व्यक्तमलिङ्गं प्रधानं, तथा पुमानप्यलिङ्गं, न क्वचिल्लीयत इति। सावयवं व्यक्तं, निरवयवमव्यक्तं, तथा च पुमान् निरवयवः, न हि पुरुषे शब्दादयोऽवयवाः सन्ति। किञ्च परतन्त्रं व्यक्तं, स्वतन्त्रमव्यक्तं, तथा च पुमानपि स्वतन्त्रः, आत्मनः प्रभवतीत्यर्थः॥११॥

भाष्यानुवादः

इस प्रकार (पूर्वोक्त कारिका से) व्यक्त और अव्यक्त का वैधर्म्य (विपरीत धर्म) कह दिया गया, (अब उनके) साधर्म्य (सदृश धर्म) को कह रहे हैं। जो कहा गया है सरूपं च० अर्थात् समानरूप वाला है। व्यक्ततत्त्व त्रिगुणात्मक है। क्योंकि सत्त्व, रजस् और तमस् – ये तीनों गुण इसके होते हैं। व्यक्ततत्त्व अविवेकी है, अर्थात् इसका विवेक नहीं है। क्योंकि ये व्यक्ततत्त्व हैं तथा ये गुण हैं – इस प्रकार विवेकज्ञान करने के लिए नहीं जाता है। जैसे – यह गाय है, यह अश्व है, जो गुण है वह व्यक्त है। और जो व्यक्त है वह गुण है। तथा व्यक्ततत्त्व (उपभोग के) विषय है अर्थात् भोग्य है। क्योंकि यह समस्त पुरुषों के (उपभोग के) विषयभूत होता है। तथा व्यक्ततत्त्व सामान्य है, क्योंकि यह कुछ मूल्य से खरीदी हुई दासी की तरह सबसे साधारणतया उपभोग्य है। व्यक्ततत्त्व अचेतन (जड़) है, यह सुख, दुःख और मोह से चेतना नहीं पाता है। व्यक्ततत्त्व अचेतन (जड़) है, यह सुख, दुःख और मोह से चेतना नहीं पाता है। व्यक्ततत्त्व प्रसवरूप धर्म से युक्त है। वह जैसे बुद्धि से अहङ्कार उत्पन्न होता है, उससे पाँच तन्मात्राएँ और ग्यारह इन्द्रियाँ (उत्पन्न होते) हैं। तथा तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार से ये व्यक्ततत्त्व प्रसवधर्म से युक्त है – यह कहा गया है। इस प्रकार इन (युक्तियों) से व्यक्ततत्त्व समानधर्मवाला है। जिस प्रकार व्यक्ततत्त्व है, उसी प्रकार प्रधानतत्त्व है। उसमें व्यक्ततत्त्व त्रिगुणवाला है, अतः अव्यक्त भी त्रिगुणात्मक है। अर्थात् इस अव्यक्ततत्त्व का कार्य महद् आदि त्रिगुणात्मक है। क्योंकि इस संसार में जिस स्वरूपवाला कारण होता है, उसी स्वरूपवाला कार्य होता है। जैसे – कृष्ण तन्तु से किया हुआ पट कृष्ण ही होता है। तथा व्यक्ततत्त्व अविवेकी है, प्रधानतत्त्व भी गुणों से भिन्न नहीं है। गुण अन्य है, और प्रधान तत्त्व अन्य (उससे भिन्न) है इस प्रकार का विवेचन (ज्ञान) नहीं होता है। इसलिए प्रधान अविवेकी है। तथा व्यक्ततत्त्व विषय है, प्रधान भी समस्त पुरुषों के उपभोग के विषयभूत होने से विषय है। तथा व्यक्ततत्त्व अचेतन है, प्रधान भी अचेतन है। क्योंकि यह सुख, दुःख और मोह का चैतन्य (विवेकज्ञान) नहीं कर सकता। (अब इस पर कहते हैं कि इस ज्ञान का) अनुमान किस प्रकार किया जाता है? (इसके उत्तर में कहा जाता है कि) इस संसार में अचेतन मिट्टी के पिण्ड से अचेतन (जड़) घड़ा ही उत्पन्न होता है। तथा व्यक्ततत्त्व प्रसवधर्मि है, प्रधानतत्त्व भी प्रसवधर्मित्व गुण से युक्त है। क्योंकि इस प्रधानतत्त्व से बुद्धि उत्पन्न होती है (बुद्धितत्त्व को प्रसव करने से)। इस प्रकार प्रधान की भी व्याख्या कर दी गयी।

अब तद्विपरीतस्तथा च पुमान् (इसकी व्याख्या की जा रही है)। तद्विपरीत०। उस दोनों व्यक्त-अव्यक्तों से विपरीत (धर्मवाला) पुरुषतत्त्व है। वह जैसे व्यक्त और अव्यक्त तत्त्व त्रिगुणात्मक है, पुरुष अगुण (त्रिगुण से रहित) है। व्यक्त और अव्यक्त तत्त्व अविवेकी है, पुरुष विवेकी (विवेक से युक्त रहता) है। व्यक्त और अव्यक्त तत्त्व विषय है, पुरुष तत्त्व अविषय (किसी का उपभोग साधन नहीं होता) है। तथा व्यक्त और अव्यक्त सामान्य है, पुरुष तत्त्व असामान्य (सर्वसाधारण नहीं) है। व्यक्त और अव्यक्त अचेतन है, पुरुष चेतन है। सुख, दुःख और मोह का ज्ञान करता है। इसलिए पुरुष चेतन है। व्यक्त और अव्यक्त प्रसवधर्मि है, पुरुष तत्त्व अप्रसवधर्मि है। क्योंकि पुरुष से कुछ भी प्रसूत (उत्पन्न) नहीं होता है। इसलिए कहा गया है कि उसके (व्यक्त और अव्यक्त के) विपरीत (स्वरूप वाला) पुरुष तत्त्व है। और कहा गया है कि तथा च० जैसे पूर्व की आर्या में प्रधानतत्त्व की अहेतुमत्ता बताया गया है, उसी प्रकार पुरुष तत्त्व है। वह जैसे – हेतुमत्, अनित्य आदि व्यक्ततत्त्व है, (इनके) विपरीत अव्यक्त है, उसमें हेतुमत् व्यक्त है, अतः प्रधान अहेतुमान् है और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व भी अहेतुमान् है। क्योंकि यह किसी से उत्पन्न नहीं होता है। व्यक्त अनित्य है, अव्यक्त नित्य है, और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व नित्य है। व्यक्त अव्यापि है, अव्यक्त व्यापि है, और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व भी व्यापि है, सर्वत्र रहने के कारण। व्यक्ततत्त्व सक्रिय है, निष्क्रिय प्रधान है। और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व सर्वत्र रहने के कारण निष्क्रिय है। व्यक्ततत्त्व अनेक है, अव्यक्ततत्त्व एक है। और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व भी एक है। व्यक्ततत्त्व आश्रित है, अव्यक्ततत्त्व अनाश्रित है। और पुरुषतत्त्व भी अनाश्रित (किसी अन्य का आश्रय ग्रहण नहीं करता) है। व्यक्ततत्त्व लिङ्ग है, प्रधानतत्त्व अलिङ्ग है। और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व भी अलिङ्ग है, यह किसी में लयभाव को प्राप्त नहीं करता है।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

व्यक्ततत्त्व सावयव है, प्रधान निरवयव है। और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व भी अवयव से रहित है। (क्योंकि) इस पुरुष में शब्द आदि अवयव नहीं होते हैं। और फिर व्यक्ततत्त्व परतन्त्र है, अव्यक्ततत्त्व स्वतन्त्र है। और उसी प्रकार पुरुषतत्त्व स्वतन्त्र है। अर्थात् अपने से समर्थ है॥११॥
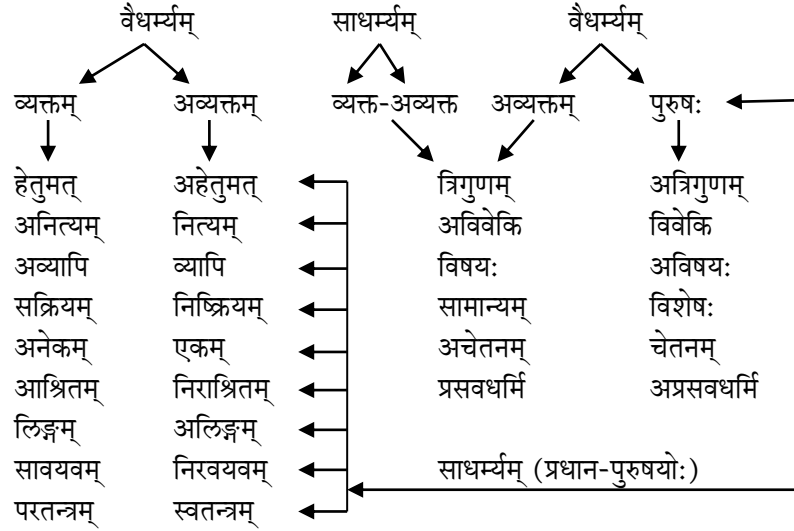
चित्रम् :-

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।
अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः॥१२॥

अन्वय :- गुणाः प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः, प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः, अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयः च गुणाः (भवन्ति)।

अनुवाद :- वक्ष्यमाण सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण क्रम से प्रीति = सुख, अप्रीति = दुःख और विषाद = मोह स्वरूपवाले हैं। तथा प्रकाश, प्रवृत्ति और नियमन करने वाले हैं। और ये तीनों गुण परस्पर एक दूसरे का अभिभव, आश्रय, जनन, परस्परसहाय और वृत्ति वाले होते हैं।

नरहरिः

गुणाः सत्त्वरजस्तमांसीत्यर्थः, प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः भवन्ति। प्रीतिः च अप्रीतिः च विषादश्च प्रीत्यप्रीतिविषादाः - तदात्मकाः प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः। अत्रात्मशब्दस्य प्रत्येकं योगः, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणे पदं प्रत्येकमभिसम्बन्ध्यत इति न्यायात्, तेन प्रीत्यात्मकः, अप्रीत्यात्मकः, विषादात्मकश्चेति। प्रीतिः = सुखमात्मा भावो सद्रूपार्थवाचको वा। यस्य प्रीत्यात्मकः सत्त्वगुणः, अप्रीतिः = दुःखमात्मा यस्य अप्रीत्यात्मकः रजोगुणः, विषादः = मोहः आत्मा यस्य स तमोगुण इति। प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः - प्रकाशार्थं प्रवृत्त्यर्थं नियमार्थं चेति। अत्रार्थशब्दः सामर्थ्यवाची। तेन प्रकाशसमर्थं सत्त्वं, प्रवृत्तिसमर्थं रजोगुणः, स्थितौ समर्थं तमस् इति। अर्थशब्दस्तु प्रयोजकपरः इति वाचस्पतिः। अन्योऽन्याऽभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयः च – अन्योऽन्याभिभवाः, अन्योऽन्याश्रयाः, अन्योऽन्यजननाः, अन्योऽन्यमिथुनाः, अन्योऽन्यवृत्तयश्च, ते तथोक्ताः। अन्योऽन्याभिभवाः - अन्यः अन्यतमं परस्परं वा आभिभवन्तीति स्वप्रीत्यप्रीत्यादिधर्मैः। यथा यदा सत्त्वमुत्कटं भवति, तदा रजस्तमस्याभिभूय स्वगुणेन प्रीत्यात्मकेन तिष्ठति, एवम्। अन्योऽन्याश्रयाः - अन्यः अन्यतममाश्रयति इति। यथा द्व्यणुकाः परस्परमाश्रयन्ति। एते त्रयो गुणाः परस्परमाश्रयन्ति। अन्योऽन्यजननाः - अन्यः अन्यतमं जनयति। जननमत्र परिणामः। यथा मृत्पिण्डो घटं जनयति। अन्योऽन्यमिथुनाः - अन्यः अन्येन सहचराः, परस्परसहायाः वा। यथा स्त्रीपुंसौ। अन्योऽन्यवृत्तयः - अन्यः अन्यस्मिन् तिष्ठतीति। परस्परं वर्त्तन्ते वा गुणाः। यथा एकस्यां स्त्रियां पत्युः सर्वसुखहेतुरूपसत्त्वगुणः, सपत्नीदुःखहेतु-रूपः रजोगुणः, रागिमोहहेतुरूपः तमोगुणः तिष्ठतीति। अत्र वाचस्पत्यादिष्टीकाकाराः वृत्तिशब्दस्य क्रियापरत्वे व्यापारपरत्वे वाऽर्थे प्रयोगं स्वीकृत्य तस्य प्रत्येकमन्वयं योजयन्ति। तेन गुणानां व्यापारो चतुर्प्रकारेण जायते॥१२॥

गौडपादभाष्यम्

एवमेतदव्यक्तपुरुषयोः साधर्म्यं व्याख्यातं पूर्वस्यामार्यायाम्। व्यक्तप्रधानयोः साधर्म्यं पुरुषस्य वैधर्म्यं च त्रिगुणमविवेकी-त्यादि प्रकृताऽऽर्यायां व्याख्यातम्। तत्र यदुक्तं 'त्रिगुणमिति व्यक्तमव्यक्तं च', तत् के ते गुणा इति? तत्स्वरूपप्रतिपादनायेद-माह – प्रीत्यात्मका, अप्रीत्यात्मका, विषादात्मकाश्च गुणाः सत्त्वरजस्तमांसीत्यर्थः। तत्र प्रीत्यात्मकं सत्त्वम्। प्रीतिः = सुखं, तदात्मकमिति। अप्रीत्यात्मकं रजः, अप्रीतिर्दुःखम्। विषादात्मकं तमः, विषादो = मोहः। तथा प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः। अर्थशब्दः सामर्थ्यवाची। प्रकाशार्थं सत्त्वं, प्रकाशसमर्थमित्यर्थः। प्रवृत्त्यर्थं रजः, प्रवृत्तिसमर्थमित्यर्थः। नियमार्थं तमः, स्थितौ समर्थमित्यर्थः। प्रकाशक्रियास्थितिशीलाः गुणा इति। तथा **अन्योऽन्याभिभवाश्रयजनन-**

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

मिथुनवृत्तयश्च। अन्योऽन्याभिभवा:, अन्योऽन्याश्रया:, अन्योऽन्यजनना:, अन्योऽन्यमिथुना:, अन्योऽन्यवृत्तयश्च ते तथोक्ता:। अन्योऽन्याभिभवा इति। अन्योऽन्यं परस्परमभिभवन्तीति, प्रीत्यप्रीत्यादिभिर्धर्मैराभिर्भवन्ति। यथा – यदा सत्त्वमुत्कटं भवति, तदा रजस्तमसी अभिभूय स्वगुणेन प्रीतिप्रकाशात्मकेनावतिष्ठते। यदा रजस्तदा सत्त्वतमसी अप्रीतिप्रवृत्त्यात्मना धर्मेण। यदा तमस्तदा सत्त्वरजसी विषादस्थित्या-त्मकेन इति। तथाऽन्योन्याश्रयाश्च द्व्यणुकवद् गुणा:। अन्योऽन्यजनना:, यथा – मृत्पिण्डो घटं जनयति। तथा अन्योऽन्यमिथुनाश्च, यथा – स्त्रीपुंसौ अन्योऽन्यमिथुनौ, तथा गुणा:। उक्तञ्च –

अन्योऽन्यमिथुना: सर्वे सर्वे सर्वत्र गामिन:।
रजसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रज:॥
तमश्चापि मिथुने ते सत्त्वरजसी उभे।
उभयो: सत्त्वरजसोर्मिथुनं तम उच्यते॥
नैषमादि: सम्प्रयोगो वियोगो वोपलभ्यते॥

परस्परसहाया इत्यर्थ:। अन्योऽन्यवृत्तयश्च, परस्परं वर्त्तन्ते, 'गुणा: गुणेषु वर्त्तन्त' इति वचनात्। यथा सुरूपा सुशीला स्त्री (पत्यु:) सर्वसुखहेतु:, सपत्नीनां सैव दु:खहेतु:, सैव रागिणां मोहं जनयति। एवं सत्त्वं रजस्तमसोर्वृत्तिहेतु:। यथा राजा सदोद्युक्त: प्रजापालने, दुष्टनिग्रहेण शिष्टानां सुखमुत्पादयति, दुष्टानां दु:खं मोहञ्च। एवं रज: सत्त्वतमसोर्वृत्तिं जनयति। तथा तम: स्वरूपेणावरणात्मकेन सत्त्वरजसोर्वृत्तिं जनयति, यथा मेघा: खमावृत्य जगत: सुखमुत्पादयन्ति, ते वृष्ट्या कर्षकाणां कर्षणोद्योगं जनयन्ति, विरहिणां मोहम्। एवमन्योऽन्यवृत्तयो गुणा:॥१२॥

भाष्यानुवाद:

इस प्रकार अव्यक्ततत्त्व और पुरुषतत्त्व – इन दोनों के साधर्म्य का पूर्व की कारिका में व्याख्या कर दी गई है। व्यक्त तथा प्रधान का साधर्म्य और पुरुष का वैधर्म्य - यह त्रिगुण इस प्रकृत कारिका में व्याख्यात है। उसमें जो कहा गया है कि व्यक्त और अव्यक्त त्रिगुणात्मक है, वे गुण कौन से गुण है? उसके स्वरूप बताने के लिए कहते हैं – प्रीतिस्वरूपवाला, अप्रीतिस्वरूपवाला और विषादस्वरूपवाला गुण है, अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस् है। उनमें से प्रीतिस्वरूपवाला सत्त्वगुण है। अर्थात् प्रीति • सुख, उस स्वभाववाला। अप्रीतिस्वरूपवाला रजोगुण है। अर्थात् अप्रीति • दु:ख (उस स्वभाववाला)। विषादस्वरूपवाला तमोगुण है, अर्थात् विषाद • मोह (उस स्वभाववाला)। तथा प्रकाश० (यहाँ पर) अर्थशब्द सामर्थ्यवाची है। प्रकाश के लिए सत्त्वगुण है, अर्थात् प्रकाश में समर्थ होना है। प्रवृत्ति में समर्थ होना रजोगुण है। स्थिति में समर्थ होना तमोगुण का स्वरूप है। प्रकाश-क्रिया-स्थिति-स्वभाववाला (सत्त्वादि) गुण है। तथा अन्योऽन्या० ये गुण परस्पर को अभिभव करने वाले, एक दूसरे का आश्रय ग्रहण करने वाले, एक दूसरे को उत्पन्न करने वाले, एक दूसरे के साथ रहने वाले, और एक दूसरे में रहने वाले हैं। अन्योऽन्याभिभव० प्रीति, अप्रीति आदि धर्मों से अन्य – अन्य को • परस्पर को (एक दूसरे को) अभिभूत करते हैं, जैसे – जब सत्त्वगुण उत्कट होता है, तब रजोगुण और तमोगुण को अभिभूत करके अपने स्वभाव सुख, प्रकाश स्वरूप से रहता है। जब रजोगुण (उत्कटता को प्राप्त करता है) तब सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रीति • दु:ख तथा प्रवृत्ति स्वरूपवाला धर्म से (अभिभूत हो जाता है)। जब तमोगुण (उत्कटता को प्राप्त करता है) तब (वह) सत्त्वगुण और रजोगुण को (अपने) विषाद • मोह तथा स्थिति स्वभाववाला धर्म से अभिभूत करता है। तथा द्व्यणुक की तरह (ये सत्त्वादि गुण) एक दूसरे का आश्रय ग्रहण करते हैं। एक दूसरे को उत्पन्न करना जैसे मिट्टी का पिण्ड घड़े को उत्पन्न करता है। और अन्योऽन्यमिथुन० जैसे स्त्री और पुरुष एक दूसरे के साथ रहते हैं, वैसे ही (सत्त्वादि) गुण भी हैं। कहा भी गया है कि –

अन्योऽन्यमिथुना: सर्वे सर्वे सर्वत्र गामिन:।
रजसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रज:॥
तमसश्चापि मिथुने ते सत्त्वरजसी उभे।
उभयो: सत्त्वरजसोर्मिथुनं तम उच्यते॥
नैषामादि: सम्प्रयोगो वियोगो वोपलभ्यते॥

अर्थात् 'ये गुण एक दूसरे के साथ रहने वाले तथा सब सर्वत्र जाने वाले हैं। रजोगुण के साथ सत्त्वगुण रहता है तथा सत्त्वगुण रजोगुण के साथ रहता है। और तमोगुण भी सत्त्वगुण तथा रजोगुण – उभय के साथ रहता है। दोनों सत्त्वगुण और रजोगुण साथ रहकर तमोगुण कहा जाता है। इनका आदि सम्प्रयोग (संयोग) अथवा वियोग (विभाग) उपलब्ध होता है।'

अर्थात् (ये गुण) परस्पर सहायक होते हैं। और अन्योऽन्यवृत्तय:० परस्पर (एक दूसरे) में रहते हैं। कहा गया है कि गुण गुणों में रहते हैं। जैसे – सुन्दर रूप, सुन्दर स्वभाव (चरित्र) से युक्त स्त्री (पति के लिए) समस्त सुख का कारण है, वही सपत्नियों के दु:ख का कारण है, और वह ही (स्त्री उसके प्रति) आसक्त पुरुष के मोह को उत्पन्न करती है। इस प्रकार सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण की वृत्ति (में हेतु) है। जैसे – राजा प्रजा के

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

पालन में सदा तत्पर रहता है। (वह) दुष्टों के निग्रह के द्वारा शिष्टों के सुख को, दुष्टों के दु:ख और मोह को उत्पन्न करता है। इस प्रकार रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुण के व्यापार को उत्पन्न करता है। तथा तमोगुण अपने आवरणात्मक स्वरूप से सत्त्वगुण और रजोगुण की वृत्ति को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार तमोगुण अपने आवरण वाला स्वरूप से सत्त्व और रजो वृत्ति को उत्पन्न करता है। जैसे – मेध आकाश को आवृत्त करते हुए जगत् का सुख उत्पन्न करता है, वह मेध कृषकों के लिए कर्षण योग्य भूमि को बनाते हैं, विरहियों को मोह देता है। इस प्रकार (सत्त्वादि गुण) अन्योऽन्यवृत्ति वाले हैं।।१२।।

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चाऽर्थतो वृत्तिः।।१३।।

अन्वय :- सत्त्वं लघु प्रकाशकम् (भवति), रजः उपष्टम्भकं चलं (भवति), तमः च गुरु वरणकम् (भवतीति) इष्टम् एव। प्रदीपवत् च वृत्तिः अर्थतः (जायते)।

अनुवाद :- सत्त्वगुण लघु तथा प्रकाश करने वाला है, रजोगुण उत्तेजक और चञ्चल स्वभाव वाला है, और तमोगुण गुरु तथा आवरण (नियमन) करने वाला है – यह साङ्ख्यमत में अभीष्ट है। दीपक की तरह इन तीनों गुणों की वृत्ति पुरुषार्थ (भोग और अपवर्ग) के लिए है।

नरहरिः

सत्त्वं सत्त्वगुणः लघुः = लाघवस्वरूपम्, अङ्गानां लघुत्वं वा प्रकाशकं बुद्धेः प्रकाश इति इष्टम् = अभीष्टम् स्वीकृतं वा। रजः = रजोगुणः उपष्टम्भकमुपष्टभ्नातीति उपष्टम्भकम् = उद्योतकमुत्तेजकं वा। यथा वृषः वृषदर्शनेन उत्कटमुपष्टम्भं करोति। चलं चलचञ्चलं सक्रियं दृष्टम्। तमः = तमोगुणः गुरु तमसः उत्कटत्वे गुरुण्यङ्गानि, वरणकमावृत्तानीन्द्रियाणि स्वार्थाऽसमर्थानि भवन्ति। ननु यदि एते परस्परविरोधशीलाः गुणाः तर्हि कथमेतेषामेकक्रियाकर्तृत्वं प्रतिपाद्यत? उच्यते – प्रदीपवद् = प्रदीपेन तुल्यमिति। यथा प्रदीपः परस्परविरुद्धतैलाग्निवर्त्तियोगाद् अर्थप्रकाशाञ्जनयति तथा सत्त्वरजस्तमांसि परस्परं विरुद्धान्यर्थं शरीरधारणलक्षणकार्यकारिरूपाण्यनुवर्त्स्यन्ति स्वकार्यं च वृत्तिः = व्यापारं सम्पादयन्ति। कथमिति? उच्यते – अर्थतः = पुरुषार्थत इति। अर्थः द्विविधः - भोगः अपवर्गश्च। तत्र तावद् भोगः शब्दाद्युपलब्धिः, अपवर्गश्च गुणपुरुषान्तरोपलब्धिः। एवं पुरुषार्थसाधनाय वृत्तिरिष्टा। अग्रे वक्ष्यति कारिकाकारः यथा - 'पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम्'।।१३।।

गौडपादभाष्यम्

किञ्चान्यत् **सत्त्वं लघु प्रकाशकञ्च**। यदा सत्त्वमुत्कटं भवति, तदा लघून्यङ्गानि, बुद्धिप्रकाशशश्च, प्रसन्नतेन्द्रियाणां भवति। **उपष्टम्भकं चलञ्च रजः**। उपष्टभ्नातीत्युपष्टम्भकमुद्योतकं। यथा वृषो वृषदर्शनेन उत्कटमुपष्टम्भं करोति, एवं रजोवृत्तिः। तथा रजश्च चलं दृष्टं, रजोवृत्तिश्चलचित्तो भवति। **गुरु वरणकमेव तमः**। यदा तम उत्कटं भवति, तदा गुरुण्यङ्गानि, आवृत्तानीन्द्रियाणि भवन्ति, स्वार्थाऽसमर्थानि। अत्राह – यदि गुणाः परस्परं विरुद्धाः तर्हि कथं स्वमतेनैकमर्थं निष्पादयन्ति? **प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः**। प्रदीपेन तुल्यं प्रदीपवत्, अर्थतः – अर्थसाधनाय वृत्तिरिष्टा। यदा प्रदीपः परस्परविरुद्धतैलाग्निवर्त्ति-संयोगादर्थप्रकाशाञ्जनयति, एवं सत्त्वरजस्तमांसि परस्परं विरुद्धान्यर्थं निष्पादयन्ति।।१३।।

भाष्यानुवादः

सत्त्वगुण लघु और प्रकाश वाला है। जब सत्त्वगुण उत्कट होता है, तब अङ्ग हल्के, बुद्धि का प्रकाश और इन्द्रियों की प्रसन्नता हो जाती है। रजोगुण उत्तेजक और क्रियाशील वाला है। जो उपष्टम्भन करता है, वह उपष्टम्भक है। जैसे – एक वृषभ अपर वृषभ के दर्शन से अत्यन्त उत्तेजित हो जाता है। इस प्रकार रजोगुण का व्यापार (वृत्ति) है। जब तमोगुण उत्कट होता है, तब अङ्ग भारी, इन्द्रियाँ आबद्धित तथा अपने अर्थ के निष्पादन में असमर्थ हो जाती हैं। यहाँ पर कहा गया है कि यदि सब गुण परस्पर विरुद्ध (विपरीत स्वभाव वाला) हैं, तो कैसे अपने (साङ्ख्य) मत में अर्थ का निष्पादन करते हैं? (इसके उत्तर में कहा गया है कि) प्रदीपवद्० दीपक के साथ तुल्य – प्रदीपवत् (दीपक के सदृश) अर्थतः० विषय की सिद्धि हेतु ये वृत्तियाँ इष्ट • अभीष्ट है। जैसे – प्रदीप परस्पर विपरीत स्वभाव वाले तैल, अग्नि और वर्त्ति के संयोग से विषय (घट, पटादि पदार्थो) का प्रकाश करता है, उसी प्रकार सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले होने पर भी विषय का सम्पादन करते हैं।।१३।।

अविवेक्यादिः सिद्धस्त्रैगुण्यात्तद्विपर्ययाऽभावात्।
कारणगुणात्मकत्वात् कार्यस्याऽव्यक्तमपि सिद्धम्।।१४।।

अन्वय :- अविवेक्यादिः सिद्धः, (कथम्?) त्रैगुण्यात्, तद्विपर्ययाभावात्। कार्यस्य अव्यक्तमपि कारणगुणात्मकत्वात् सिद्धम्।

अनुवाद :- उपर्युक्त अविवेकी आदि स्वरूप महदादि में सिद्ध होते हैं, त्रिगुणात्मक होने से तथा उसके (अव्यक्त) विपर्यय का अभाव हो जाने से। और कार्य का कारणगुणात्मक होने से अव्यक्त तत्त्व भी सिद्ध हो जाता है।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

नरहरिः

अविवेक्यादिः - अविवेकित्वमविवेकि, अविवेक आदौ यस्य समुदायस्य, अविवेकि, विषयः, सामान्यम्, अचेतनम्, प्रसवधर्मि चेति। सिद्धः = सिद्ध्यति। कथम्? त्रैगुण्यात् – त्रिगुणस्य भावः, तस्मादिति। महदादौ व्यक्तेनाऽयं सिद्ध्यति। पुनः तद्विपर्ययाभावात् – तस्य अविवेक्यादेः विपर्ययः, तद्विपर्ययः, तस्याभावः तद्विपर्ययाभावः, तस्मादव्यक्तं = प्रकृतिः सिद्धम्। यथा यत्रैव तन्तवः, तत्रैव पटः। इतश्चाव्यक्तं सिद्धम् – कार्यस्य घटपटादेः, कारणगुणात्मकत्वात्, यदात्मकं कारणं तदात्मकं कार्यमिति न्यायात् अव्यक्तं सिद्धम्। यथा – कृष्णेभ्यस्तन्तुभ्यः कृष्णः पटो भवति। अतः यदात्मकं लिङ्गं तदात्मकमव्यक्तमिति सिद्ध्यति॥१४॥

गौडपादभाष्यम्

अन्तर्प्रश्नो भवति – 'त्रिगुणमविवेकि विषय' इत्यादिना प्रधानं, व्यक्तञ्च व्याख्यातं, तत्र प्रधानम् – उपलभ्यमानं महदादि च 'त्रिगुणमविवेक्यादीनि' च कथमवगम्यते? तत्राह – योऽयमविवेक्यादिर्गुणः, स त्रैगुण्यात्, महदादौ व्यक्तेनायं सिद्ध्यति। अत्रोच्यते **तद्विपर्ययाभावात्**। तस्य विपर्ययः तद्विपर्ययः, तस्याऽभावः तद्विपर्ययाभावः, तस्मात् सिद्धमव्यक्तम्। यथा – यत्रैव तन्तवस्तत्रैव पटः, अन्ये तन्तवोऽन्यः पटो न कुतः? तद्विपर्ययाऽभावात्। एवं व्यक्तादव्यक्तमासन्नं भवति। दूरं प्रधानमासन्नं व्यक्तं, यो व्यक्तं पश्यति स प्रधानमपि पश्यति, तद्विपर्ययाऽभावात्। इतश्चाऽव्यक्तं सिद्धं **कारणगुणात्मक-त्वात्कार्यस्य**। लोके यदात्मकं कारणं तदात्मकं कार्यमपि, यथा कृष्णेभ्यस्तन्तुभ्यः कृष्ण एव पटो भवति। एवं महदादि लिङ्गमविवेकि, विषयः, सामान्यमचेतनं, प्रसवधर्मि। यदात्मकं लिङ्गं तदात्मकमव्यक्तमपि सिद्धम्॥१४॥

भाष्यानुवादः

यहाँ पर साङ्ख्यदर्शन में प्रश्न उठता है कि त्रिगुण० आदि इस कारिका से प्रधान और व्यक्त व्याख्यात है। उनमें से प्रधानतत्त्व और उपलब्ध महद् आदि त्रिगुण, अविवेकी है। (अब प्रश्न यह है कि) किस प्रकार (उनका) ज्ञान किया जाता है? तब कहते हैं कि वह त्रैगुण्यात्० त्रिगुणता के कारण महदादि में व्यक्त होने से यह सिद्ध हो जाता है। अब कहते हैं – तद्विपर्यय० उसका विपर्यय तद्विपर्यय, उसका अभाव होना (अर्थात् त्रिगुणात्मकता के विपर्यय का अभाव होने से)। इसलिए अव्यक्त सिद्ध हो जाता है। जैसे – जहाँ तन्तु है, वहीं पट है, तन्तु भिन्न है और पट भिन्न है, ऐसा नहीं है, क्योंकि उसके विपर्यय का अभाव होने से। इस प्रकार व्यक्त से अव्यक्त आसन्न रहता है। प्रधानतत्त्व दूर और व्यक्त आसन्न है। जो व्यक्ततत्त्व को देखता है, (अर्थात् व्यक्ततत्त्व का ज्ञान करता है) वह प्रधानतत्त्व को भी देखता (प्रधानतत्त्व का भी ज्ञान करता) है। क्योंकि उनका विपर्यय नहीं होता है। और पुनः अव्यक्त सिद्ध होता है – कारणगुणा० कार्य का कारणगुणात्मक होने से। लोक में जिस स्वभाववाला कारण होता है, उसी स्वभाववाला ही कार्य भी होता है। जैसे – कृष्ण तन्तुओं से कृष्ण ही पट उत्पन्न होता है। इस प्रकार महद् आदि लिङ्ग अविवेकि, विषय, सामान्य, अचेतन, प्रसवधर्मि है। जिस स्वरूपवाला लिङ्गतत्त्व है, उसी स्वरूपवाला अव्यक्ततत्त्व भी है, यह सिद्ध हो जाता है॥१४॥

भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागात् वैश्वरूप्यस्य॥१५॥
कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्त्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च।
परिणामतः सलिलवत्प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्॥१६॥

अन्वय :- भेदानां परिमाणात्, समन्वयात्, शक्तितः प्रवृत्तेः, कारणकार्यविभागात्, वैश्वरूप्यस्य अविभागात् अव्यक्तं कारणम् अस्ति। (यतः इदं) त्रिगुणतः समुदयात् च प्रवर्त्तते। (तथा) प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् परिणामतः सलिलवत् (भवति)।

अनुवाद :- भेदों के परिमाण से, समन्वय से, अपनी शक्ति से प्रवृत्त होने से, कारण और कार्य के विभाग से, वैश्वरूप के अविभाग से (यह सिद्ध होता है कि) अव्यक्ततत्त्व कारण है। त्रिगुणात्मक होने से तथा एकरूप होने से (व्यक्ततत्त्व) प्रवृत्त होता है। और प्रत्येक गुण के आश्रयविशेष के कारण जल की तरह परिणाम में भेद प्रतीत होता है।

नरहरिः

भेदानाम् = महदादिभूम्यन्तानां परिमाणात्, महदादिलिङ्गं परिमितं – भेदतः, प्रधानकार्यम् – एका बुद्धिरेकोऽहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानीति। भिद्यन्ते परस्परं व्यावृत्ताः प्रतीयन्त इति भेदाः, तेषामेव भेदानां परिमाणादस्ति प्रधानं कारणम्, यदुक्तं परिमितमुत्पादयतीति। समन्वयात् भिन्नानां समानरूपता समन्वयः, तस्मादिति। एवं त्रिगुणात्मकं महदादि लिङ्गं दृष्ट्वाऽनुमीयते यदस्य कारणमव्यक्तम्। शक्तितः यः यस्मिन् शक्तः, तस्मात् प्रवृत्तेः = प्रवृत्तिकारणात्। यथा कुम्भकारः घटस्य करणे समर्थः, घटमेव करोति, न पटम्। अतः अव्यक्तमस्ति। कारणकार्यविभागात् – कारणं करोतीति, कार्यं क्रियत इति, कारणं च कार्यं च, तयोः विभागः कारणस्य कार्यस्य च विभागः नियतः। यथा कपालः घटं जनयति, अतः कपालः कारणं कार्यस्य घटस्य। एवं महदादिलिङ्गं दृष्ट्वाऽनुमीयते प्रधानं कारणमस्ति। वैश्वरूपस्य – विश्वं = जगत्, तस्य रूपम्

= अभिव्यक्तिः- विश्वरूपम्, तस्य भावः वैश्वरूपम्, तस्य वैश्वरूपस्याविभागात् – न विभागात् विशिष्टलक्षणात्। यथा पृथिव्यादीनि पञ्चमहाभूतानि सृष्टिक्रमेणैवाऽविभागं तन्मात्रेषु यान्ति, परिणामिषु तन्मात्राण्येकादशेन्द्रि-याणि अहङ्कारे, अहङ्कारः बुद्धौ, बुद्धिः प्रधाने। एवं त्रयो लोकाः प्रलयकाले प्रकृतावविभागं गच्छन्ति। तस्मादव्यक्तं कारणमस्ति।

पुनः अव्यक्तम् = प्रधानं कारणम् = हेतुः अस्ति, वर्त्तते वा। यतः त्रिगुणतः = त्रिगुणात्, सत्त्वरजस्तमांसि, तेभ्यः एतेषां गुणत्रयाणां साम्यावस्था इति, समुदयात् – समेत्योदयः = समुदयः समवायः। अयञ्च गुणानां स्वप्रधानभावमन्तरेण न सम्भवति। यथा तन्तवः समुदिताः सन्तः पटमुत्पादयन्ति, एवं प्रधानं गुणसमुदयात् न्यूनाधिकभाववशात् वा महदादि जनयतीति। प्रवर्त्तते = प्रवृत्तं भवति, जगत्। अत्र प्रश्नः कथमेकरूपाणां गुणानामनेकरूपा प्रवृत्तिः जायते? उच्यते – परिणामतः सलिलवत् = सलिलसदृशं। प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् – प्रतिप्रतीति विप्सा। गुणानामाश्रयो गुणाश्रयस्तद्विशेषः, तं गुणाश्रयविशेषं प्रतिनिधाय प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषपरिणामात् व्यक्तं प्रवर्त्तते। यथा आकाशादेकरसं सलिलं पतितं, नानारूपात् संश्लेषाद्भिद्यते तत्तद्रसान्तरैः, एवमेकस्मात् प्रधानात् प्रवृत्तास्त्रयो लोकाः नैकस्वभावाः भवन्ति, तत्र देवेषु सत्त्वमुत्कटं रजस्तमसी उदासीने, तेन तेऽत्यन्तसुखिनः, तथा मनुष्येषु रजोगुणः उत्कटं भवति, सत्त्वतमसी उदासीने, तेन तेऽत्यन्तदुःखिनः। तिर्यक्षुः तमोगुण उत्कटं भवति, सत्त्वरजसी उदासीने, तेन तेऽत्यन्तमूढाः भवन्ति॥१५,१६॥

गौडपादभाष्यम्

'त्रैगुण्यादविवेक्यादिर्व्यक्ते सिद्धस्तद्विपर्ययाभावात्' एवं 'कारणगुणात्मकत्वात् कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्ध'मित्येतन्मिथ्या, लोके यन्नोपलभ्यते तन्नास्तीति न वाच्यं, सतोऽपि पाषाणगन्धादेरनुपलम्भात्। एवं प्रधानमप्यस्ति, किन्तु नोपलभ्यते, तदाह **कारणमस्त्यव्यक्तमिति** क्रियाकारकसम्बन्धः। **भेदानां परिमाणात्**, लोके यत्र कर्त्तास्ति तस्य परिमाणं दृष्टं, यथा कुलालः परिमितैर्मृत्पिण्डैः परिमितानेव घटान् करोति। एवं महदादि लिङ्गं परिमितं भेदतः। प्रधानकार्यमेका बुद्धिरेकोऽहङ्कारः, पञ्च तन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानीति। एवं भेदानां परिमाणादस्ति प्रधानं कारणं, यद्व्यक्तं परिमितमुत्पादयति। यदि प्रधानं न स्यात्तदा निष्परिमाणमिदं व्यक्तमपि न स्यात्, परिमाणाच्च भेदानामस्ति प्रधानं, यस्मात् व्यक्तमुत्पन्नम्। तथा **समन्वयात्** इह लोके प्रसिद्धिर्दृष्टा, यथा व्रतधारिणं वटुं दृष्ट्वा समन्वयति – नूनमस्य पितरौ ब्राह्मणाविति। एवमिदं त्रिगुणं महदादिलिङ्गं दृष्ट्वा साधयामोऽस्य यत् 'कारणं भविष्यतीति', अतः समन्वयादस्ति प्रधानम्। तथा **शक्तितः प्रवृत्तेश्च**। इह यो यस्मिन् शक्तः सः तस्मिन्नेवार्थे प्रवर्त्तते, यथा कुलालो घटस्य करणे समर्थो घटमेव करोति, न पटं रथं वा। तथा अस्ति प्रधानं कारणं, कुतः? **कारणकार्यविभागात्**। करोतीति कारणं, क्रियत इति कार्यम्। कारणस्य कार्यस्य च विभागो, यथा घटो दधिमधूदकपयसां धारणे समर्थो, न तथा तत्कारणं, मृत्पिण्डो वा घटं निष्पदयति, न चैवं घटो मृत्पिण्डम्। एवं महदादि लिङ्गं दृष्ट्वाऽनुमीयते, अस्ति विभक्तं तत्कारणं यस्य विभाग इदं व्यक्तमिति। इतश्च **अविभागात् वैश्वरूपस्य** विश्वं = जगत्, तस्य रूपं = व्यक्तिः। विश्वरूपस्य भावो वैश्वरूपं, तस्याऽविभागादस्ति प्रधानम्। यस्मात् त्रैलोक्यस्य पञ्चानां पृथीव्यादीनां महाभूतानां परस्परं विभागो नास्ति, महाभूतेष्वन्तर्भूतास्त्रयो लोका इति, पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमित्येतानि पञ्चमहाभूतानि प्रलयकाले सृष्टिक्रमेणैवाऽविभागं यान्ति तन्मात्रेषु परिणामिषु, तन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि चाहङ्कारे, अहङ्कारो बुद्धौ, बुद्धिः प्रधाने। एवं त्रयो लोकाः प्रलयकाले प्रकृतावविभागं गच्छन्ति, तस्मादविभागात् क्षीरदधिवद् व्यक्ताऽव्यक्तयोरस्त्यव्यक्तं कारणम्॥१५॥

इतश्चाव्यक्तं प्रख्यातं कारणमस्ति, यस्मान्महदादि लिङ्गं प्रवर्त्तते। **त्रिगुणतः** = त्रिगुणात्, सत्त्वरजस्तमांसि यस्मिन् तत्त्रिगुणात्। तत्किमुक्तं भवति? सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानम्। तथा **समुदयात्**। यथा गङ्गास्त्रोतांसि त्रीणि रुद्रमूर्द्धनि पतितानि एकं स्त्रोतो जनयन्ति, एवं त्रिगुणमव्यक्तमेकं व्यक्तं जनयति, यथा वा तन्तवः समुदिताः पटं जनयन्ति, एवमव्यक्तं गुणसमुदयान्महदादि जनयतीति त्रिगुणतः समुदयाच्च व्यक्तं जगत् प्रवर्त्तते। यस्मादेकस्मात् प्रधानाद् व्यक्तं तस्मादेकरूपेण भवितव्यम्। नैष दोषः, **परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्**। एकस्मात् प्रधानात् त्रयो लोकाः समुत्पन्नास्तुल्यभावाः न भवन्ति, देवाः सुखेन युक्ताः, मनुष्याः दुःखेन, तिर्यञ्चो मोहेन। एकस्मात् प्रधानात् प्रवृत्तं व्यक्तं प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् परिणामतः सलिलवत् भवति। प्रतिप्रतीति विप्सा। गुणानामाश्रयो गुणाश्रयस्तद्विशेषः, तं गुणाश्रयविशेषं प्रतिनिधाय प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषपरिणामात्प्रवर्त्तते व्यक्तम्। यथा – आकाशादेकरसं सलिलं पतितं नानारूपात् संश्लेषाद्भिद्यते तत्तद्रसान्तरैः, एवमेकस्मात् प्रधानात् प्रवृत्तास्त्रयो लोकाः नैकस्वभावाः भवन्ति, देवेषु सत्त्वमुत्कटं, रजस्तमसी उदासीने, तेन तेऽत्यन्तसुखिनः। मनुष्येषु रज उत्कटं भवति, सत्त्वतमसी उदासीने, तेन तेऽत्यन्तदुःखिनः। तिर्यक्षु तम उत्कटं भवति, सत्त्वरजसी उदासीने तेन तेऽत्यन्तमूढाः॥१६॥

भाष्यानुवादः

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

'त्रैगुण्य०' एवं 'कारणगुण०' यह (जो कहा गया है, वह) मिथ्या है, लोक में जो उपलब्ध नहीं होता है, वह नहीं है, (अगर ऐसा कोई कहता है) तो यह उचित नहीं है। क्योंकि पाषाण में पाषाण का गन्ध रहने पर भी उपलब्ध नहीं होता है। इस प्रकार प्रधान तत्त्व भी है, परन्तु उपलब्ध नहीं होता है। इसलिए कहा गया है कि अव्यक्त कारण है – यह दोनों में क्रिया और कारक का सम्बन्ध है। भेदाना० संसार में जहाँ पर कर्त्ता है वहाँ पर परिणाम देखा जाता है। जैसे – कुम्भकार परिमित मिट्टी के पिण्ड से परिमित घट का ही निर्माण करता है। इस प्रकार महत्तत्त्व भी – महद् आदि लिङ्गतत्त्व परिमित है - भेद से। प्रधान का कार्य, जैसे – एक बुद्धि, एक अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच महाभूत हैं। इस प्रकार भेदों के परिणाम से प्रधान कारण है, जो कहा गया है परिमित का ही उत्पादन करता है। यदि प्रधानतत्त्व नहीं है तो परिणाम से रहित यह व्यक्ततत्त्व भी नहीं हो सकता है। (इसलिए) भेदों के परिणाम (निश्चित) हो जाने से प्रधान है जिससे यह व्यक्ततत्त्व उत्पन्न हुआ है। तथा समन्वयात्० समन्वय से। इस संसार में (सादृश्य के कारण) प्रसिद्धि देखी जाती है। जैसे व्रतधारी वटु को देखकर (सादृश्य ज्ञान) समन्वयात्मक ज्ञान करता है कि "निश्चित ही इसके माता और पिता ब्राह्मण हैं"। इस प्रकार इस त्रिगुणात्मक महदादि लिङ्ग को देखकर सिद्धि किया जाता है कि इसका कोई कारण (निश्चित ही) होगा, अत: समन्वय से कारण प्रधान है। तथा शक्ति० इस संसार में जो जिसमें समर्थ है, वह उसी विषय में ही प्रवृत्त होता है। जैसे कुम्भकार घड़े के निर्माण में समर्थ (है, अत) वह घट को ही बनाता है, न कि पट अथवा रथ को। तथा प्रधान कारण है – कैसे? कारण० (जो) करता है, (इसलिए) कारण है। जो किया है, वह कार्य है। कारण का और कार्य का विभाग, जैसे – घड़ा दही, मधु, जल और दुग्ध धारण में समर्थ है, परन्तु उसका कारण नहीं, मिट्टी का पिण्ड घड़े को बनाता है, न कि घड़ा मृत्पिण्ड को। इस प्रकार महद् आदि लिङ्गतत्त्व को देखकर अनुमित्यात्मक ज्ञान किया जाता है कि विभक्त वह (प्रधान) कारण है, जिसका विभाग यह व्यक्ततत्त्व है। और फिर अविभागात्० विश्व • जगत्, उसका रूप • अभिव्यक्ति। विश्वरूप का भाव वैश्वरूप है, उसके अविभाग से प्रधान है। जैसे तीनों लोकों के पाँचों पृथिवी आदि महाभूतों का परस्पर विभाग नहीं है, इन महाभूतों में तीनों लोक अन्तर्भूत है। पृथिवी, जल, तेजस्, वायु, आकाश – ये पाँचों महाभूत प्रलय के समय में सृष्टि क्रम से अपने-अपने कारण परिणामी तन्मात्रों में लीन हो जाते हैं। तन्मात्र और ग्यारह इन्द्रियाँ अहङ्कार में, अहङ्कार बुद्धि में, तथा बुद्धितत्त्व प्रधान में (लीन हो जाते हैं)। इसी प्रकार तीनों लोक प्रलय के समय में प्रकृति में अभिन्नता को प्राप्त करते हैं। इसलिए अविभाग के कारण दुग्ध तथा दही की तरह व्यक्त और अव्यक्त दोनों में अव्यक्त ही कारण है।।१५।।

और भी अव्यक्त प्रसिद्ध कारण है, जिससे कि यह महद् आदि लिङ्गतत्त्व प्रवृत्त हुआ है। त्रिगुणत:० त्रिगुण से सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण जिसमें रहते हैं, वह त्रिगुण है। वह क्या कहा गया है? सत्त्व, रजस् और तमोगुण की साम्यावस्था प्रकृति है। उसी प्रकार समुदयात्० समुदय से। जैसे गङ्गा के तीन स्रोत शिव जी के मस्तक पर गिरने के अनन्तर एक स्रोत का निर्माण करते हैं (एक स्रोत के रूप में होकर बहते हैं)। इस प्रकार त्रिगुणात्मक एक ही अव्यक्ततत्त्व व्यक्ततत्त्व को उत्पन्न करता है। अथवा जैसे तन्तु समवेत होकर पट को उत्पन्न करता है। इस प्रकार अव्यक्ततत्त्व गुणों के समुदय के कारण महद् आदि को उत्पन्न करता है, इस प्रकार त्रिगुण से व्यक्त जगत् प्रवृत्त होता है। (यहाँ प्रश्न यह है कि) जब एक ही प्रधान से व्यक्त उत्पन्न होता है, अत: (वह व्यक्त भी) एकरूप से होना चाहिए। (इसके उत्तर में कहा जाता है) यह कोई दोष नहीं है। परिणाम० एक प्रधान से उत्पन्न हुए तीनों लोक समान नहीं है, देवता सुख से युक्त हैं, मनुष्य दु:ख से और तिर्यङ् मोह से। एक प्रधान से प्रवृत्त व्यक्ततत्त्व प्रत्येक गुण के विशेष आश्रय को ग्रहण करने से परिणाम से सलिल की तरह होता है, प्रतिप्रति – यह विप्सार्थक है। गुणों का आश्रय गुणाश्रय, उससे विशिष्ट (गुणाश्रयविशेष) है। उस गुण के आश्रय विशेष को प्रत्येक धारण कर प्रत्येक गुणाश्रयविशेष के परिणाम से व्यक्ततत्त्व प्रवृत्त होता है। जैसे* आकाश से गिरा हुआ जल अनेक रूपों से संश्लेष को प्राप्त होकर भिन्न-भिन्न रसों से अनेक रसवाला हो जाता है, इसी प्रकार एक ही प्रधानतत्त्व से प्रवृत्त हुए तीनों लोक एक स्वरूपवाले नहीं होते हैं। देवताओं में सत्त्वगुण उत्कटता तथा रजोगुण और तमोगुण उदासीनता को प्राप्त करता है, इससे वे (देवता) अत्यन्त सुखी होते हैं। मनुष्यों में रजोगुण अधिक होता है, सत्त्वगुण और तमोगुण उदासीन, इसलिए ये (मनुष्य) अत्यन्त दु:खी होते हैं। तिर्यक् योनि में तमोगुण उत्कट होता है, सत्त्वगुण और रजोगुण उदासीन, इससे वे अत्यन्त मूढ़ होते हैं।।१५/१६।।

* टिप्पणी :-

कहने का यह तात्पर्य है कि जल का रस मधुर है। जब वह आकाश से बिन्दुरूप से पतित होता है, तब वह मधुर रस वाला होकर ही पतित होता है। परन्तु वह जब अनेकों से संश्लेष को प्राप्त करता है, तब जिसके साथ वह संश्लेष को प्राप्त करता है, वह जल उसी प्रकार का हो जाता है। अर्थात् जल उस पदार्थों के अनेकता होने से वह एक रस

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

वाला जल भी अनेक रस वाला हो जाता है। आशय यह है कि पृथिवी में मधुर, अम्ल आदि ६ रस रहते हैं। अकाश से पतित जल जब इन ६ रसों में से जिस रस से युक्त पार्थिवभाग से संश्लेष को प्राप्त करता है, वह उसी रसवाला ही बन जाता है।।

सङ्घातपरार्थत्वात्[१] त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।१७।।

अन्वय :- सङ्घातपरार्थत्वात्, त्रिगुणादिविपर्ययात्, अधिष्ठानात्, भोक्तृभावात्, कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः च पुरुषः अस्ति (इति सिद्ध्यति)।

अनुवाद :- (यह महदादि) समूह दूसरों के लिए होने से, त्रिगुण आदि के विपरीत स्वभाववाला होने से, अधिष्ठान से, भोक्ता की सत्ता सिद्ध होने से और कैवल्य के लिए प्रवृत्त होने से पुरुष है – यह सिद्ध होता है।

नरहरिः

कारिकामस्यां पुरुषस्य सत्ता प्रतिपादिता वर्त्तते। अयं पुरुषः = पुमान् अव्यक्तादेर्व्यतिरिक्तः अस्ति = वर्त्तते, तत्कथम्? सङ्घातपरार्थत्वात् – महदादिसङ्घातोऽयं पुरुषार्थ इत्यनुमीयते, अचेतनत्वात्, पर्यङ्कवत्। यथ पर्यङ्कः प्रत्येकं गात्रोत्पलपादपीठ-प्रच्छादनपटोपधानसङ्घातः परार्थः, न हि स्वार्थः पर्यङ्कस्य, न च किञ्चिदपि गात्रोत्पलाद्यवयवानां परस्परं कृत्यमस्ति। तथा इदं शरीरं पञ्चानां महाभूतानां सङ्घातो वर्त्तते, अतः अवगम्यते पुरुषस्य सत्ता विद्यते, यस्य भोग्यं महदादिरूपं शरीरं समुत्पन्न-मिति। त्रिगुणादिविपर्ययाद् = त्रिगुणानां विपर्ययकारणात्। अधिष्ठानात् – अधिष्ठातृत्वभावात्, यद्यत् सुखदुःखमोहात्मकं तत्सर्वं परेणाधिष्ठीयमानं दृष्टम्। यथा लङ्घनप्लवनधावनसमर्थैरश्वैर्युक्तो रथः सारथिना अधिष्ठितः सन् प्रवर्त्तते, तथा सुखदुःखमोहात्मकं चेदं बुद्ध्यादिः, तस्मादेतदपि परेणाधिष्ठातव्यम्, स च त्रैगुण्यादन्यः पुरुषः वर्त्तते। भोक्तृभावात् – भोक्तुः भावः, तस्मात्। यथा मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायषड्रसोपबृंहितस्य संयुक्तस्यान्नस्य भोक्ता कश्चिदन्यः साधयते, तथा महदादिलिङ्गस्य भोक्तृत्वाऽभावादस्ति कश्चिद् पुरुषः, यस्येदं भोग्यं शरीरमिति। कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च – केवलस्य भावः कैवल्यम्, तन्निमित्तं प्रवृत्तिकारणात् – यतः सर्वो विद्वानऽविद्वांसश्च संसारसन्तानक्षयमिच्छन्ति। अतः बुद्ध्यादिव्यतिरिक्तः कश्चिदात्मा पुरुषो वा सिद्ध्यति।।१७।।

गौडपादभाष्यम्

एवमार्याद्वयेन प्रधानस्याऽस्तित्वमवगम्यते। इतश्चोत्तरं पुरुषाऽस्तित्वप्रतिपादनार्थमाह। यदुक्तं 'व्यक्ताऽव्यक्तज्ञविज्ञानान्मोक्षः प्राप्यत' इति तत्र व्यक्तादनन्तरमव्यक्तं पञ्चभिः कारणैरधिगतं व्यक्तवत्। पुरुषोऽपि सूक्ष्मस्तस्याधुनाऽनुमितास्तित्वं प्रतिक्रियते। अस्ति पुरुषः, कस्मात्? **सङ्घातपरार्थत्वात्**। योऽयं महदादिसङ्घातः सः पुरुषार्थ इत्यनुमीयते, अचेतनत्वात्, पर्यङ्कवत्। यथा पर्यङ्कः प्रत्येकं गात्रोत्पलपादपीठतूलीप्रच्छादन-पटोपधानसङ्घातः परार्थो, न हि स्वार्थः पर्यङ्कस्य, न हि किञ्चिदपि गात्रोत्पलाद्यवयवानां परस्परं कृत्यमस्ति। अतोऽवगम्यतेऽस्ति पुरुषो यः पर्यङ्के शेते, यस्यार्थं पर्यङ्कस्तत्परार्थम्। इदं शरीरं पञ्चानां महाभूतानां सङ्घातो वर्त्तते, अस्ति पुरुषो यस्येदं भोग्यं शरीरं भोग्यमहदादिसङ्घातरूपं समुत्पन्नमिति। इतश्चात्माऽस्ति **त्रिगुणादिविपर्ययात्**। यदुक्तं पूर्वस्यामार्यायां 'त्रिगुणमविवेकि विषय' इत्यदि। तस्माद्विपर्ययात्। यथोक्तं 'तद्विपरीतस्तथा च पुमान्'। **अधिष्ठानात्** यथेह लङ्घनप्लवनधावनसमर्थैरश्वैर्युक्तो रथः सारथिनाऽधिष्ठितः प्रवर्त्तते, तथात्माऽधिष्ठानाच्छरीरमिति। तथा चोक्तं षष्ठितन्त्रे - 'पुरुषाधिष्ठितं प्रधानं प्रवर्त्तते'। अतोऽस्त्यात्मा **भोक्तृभावात्**, यथा मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषाय-षड्रसोप-बृंहितस्य संयुक्तस्यान्नस्य साध्यते, एवं महदादिलिङ्गस्य भोक्तृत्वाऽभावादस्ति स आत्मा यस्येदं भोग्यं शरीरमिति। इतश्च **कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च**। केवलस्य भावः कैवल्यं, तन्निमित्तं या च प्रवृत्तिस्तस्याः स्वकैवल्यार्थे प्रवृत्तेः सकाशादनुमीयते अस्त्यात्मेति, यतः सर्वो विद्वानऽविद्वांश्च संसारसन्तानक्षयमिच्छति। एवमेभिर्हेतुभिरस्त्यात्मा शरीरव्यतिरिक्तः।।१७।।

भाष्यानुवादः

इस प्रकार (पूर्व की) दोनों कारिकाओं से प्रधान की सत्ता का ज्ञान निश्चय किया गया है। और इससे पृथक् पुरुष तत्त्व के प्रतिपादन के लिए कहते हैं। जो कहा गया है कि ''व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के विशिष्ट ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है'' – इसमें से व्यक्त के पश्चात् अव्यक्त को व्यक्त की तरह पाँचों कारणों से जान लिया (सिद्ध कर लिया गया है)। पुरुष भी सूक्ष्म है, अब इसके अस्तित्व का अनुमित्यात्मक ज्ञान (अनुमान प्रमाण से) किया जा रहा है। पुरुष है! (पुरुष की सत्ता है)। कैसे? सङ्घात० यह जो महदादि का समूह है, वह पुरुष के लिए है, यह अनुमित होता है, पलङ्क की तरह, अचेतन होने से। जैसे पलङ्क, विछौना, आसन, तकिया, चादर आदि (सभी जड़ है और इन) का समूह दूसरे के लिए, न कि पलङ्क के अपने स्वार्थ के लिए। न कि इनकी परस्पर एक दूसरे के लिए कोई उपयोगिता है। अतः अनुमित होता है कि पुरुष है, जो पलङ्क पर सोता है, जिसके लिए पलङ्क है, वह परार्थ है। यह शरीर पाँच महाभूतों का समूह है। पुरुष है,

---

१. 'संहतपरार्थत्वात्' इति केचित् पठन्ति।

जिसका यह भोग्य शरीर, भोग्य महदादि रूप उत्पन्न हुए हैं। और भी आत्मा है – त्रिगुणादि० जो पूर्व की आर्या में कहा गया है – त्रिगुणमविवेकि० इत्यादि। इससे विपरीत होने से। जैसे कहा गया है – तद्विपरीत तथा च पुमान्, अधिष्ठानात्० जैसे – इस संसार में लङ्घन, प्लवन, धावन में समर्थ अश्वों से युक्त रथ सारथि से अधिष्ठित होकर प्रवृत्त होता है, वैसा ही आत्मा शरीर रूपक रथ के अधिष्ठाता है। और वैसे कहा गया है षष्ठितन्त्र में – पुरुष से अधिष्ठित होकर प्रधानतत्त्व प्रवृत्त होता है। इसलिए आत्मा है, भोक्तृभावा० भोक्तृभाव से। जैसे – मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय आदि छह रसों से व्यञ्जित अन्न का साधन (सिद्धि की जाती है) किया जाता है, इस प्रकार महदादि लिङ्ग के भोक्तृत्व के अभाव उपस्थित होने से, वह आत्मा है, जिसका यह भोग्य शरीर है। और फिर कैवल्य० केवल का भाव कैवल्य है। उस कैवल्य के निमित्त • हेतु जो प्रवृत्ति देखी जाती है, अतः अनुमित होता है कि आत्मा है। क्योंकि (इस संसार में) समस्त विद्वान् (हो अथवा) मूर्ख, संसार का सन्तान अर्थात् जन्म और मृत्यु के चक्र के नाश की इच्छा करते हैं। इस प्रकार इन उपर्युक्त हेतुओं से सिद्ध होता है कि शरीर से अतिरिक्त कोई आत्मा है।।१७।।

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव।।१८।।

अन्वय :- जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमात्, अयुगपत् प्रवृत्तेः च, त्रैगुण्यविपर्ययात् च एव पुरुषबहुत्वं सिद्धम्।

अनुवाद :- जन्म, मृत्यु और करणों के प्रत्येक में नियत होने से, सब की प्रवृत्ति एक काल में न होने से और त्रैगुण्य के विपर्यय होने से निश्चय ही पुरुष की अनेकता सिद्ध होती है।

नरहरिः

सोऽयं सर्वशरीरेऽधिष्ठाता पुरुषः मणिरसनात्मकसूत्रवत् किमेकः? अथवा प्रतिशरीरमधिष्ठातारः बहवः अनेकाः पुरुषा आत्मानः? इति प्रश्ने उच्यते – पुरुषबहुत्वं पुरुषस्यानेकत्वं – बहवः पुरुषाः सिद्धम् = सिद्ध्यन्तीति। कथम्? जन्ममरणकरणानाम् – जन्म च मरणञ्च करणानि च जन्ममरणकरणानि – तेषां जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमाद् = प्रत्येकं नियमादित्यर्थः। यद्येकः पुरुषः स्यात्ततः एकस्य जन्मनि सर्वे एव जायेरन्, एकस्य मरणे सर्वेऽपि म्रियेरन्, एकस्य करणवैकल्ये सर्वेऽपि तथा स्युः। परन्तु कदापि एवं न जायते। अत एषां प्रतिपुरुषे नियतत्वात् पुरुषा अनेकाः। अयुगपत्प्रवृत्तेः – युगपत् = एककालम्, न युगपत् अयुगपत्प्रवृत्तिकारणात्। लोकेऽस्मिन् अयुगपद्धर्मादिषु प्रवृत्तिर्दृश्यते, यथा केचित् धर्मे प्रवृत्ताः, अन्ये अधर्मे, अन्ये वैराग्ये, अन्ये ज्ञाने प्रवृत्ताः। अतः पुरुषबहुत्वं सिद्धम्। त्रैगुण्यविपर्ययाद् – त्रिगुणानां भावः त्रैगुण्यम्, तस्य विपर्ययः, तस्मात्। यथा – खलु लोके कश्चिद् सात्त्विकः सुखी, अन्यः राजसो दुःखी, अपरः तामसो मोहवान् च दृष्टम्। एवं पुरुषबहुत्वं सिद्ध्यतीति।।१८।।

गौडपादभाष्यम्

अथ सः किमेकः सर्वशरीरेऽधिष्ठाता मणिरसनात्मकसूत्रवत्, आहोस्विद् बहवः आत्मानः प्रतिशरीरमधिष्ठातार इति? अत्रोच्यते – जन्म च मरणञ्च, करणानि च – जन्ममरणकरणानि, तेषां प्रतिनियमात् = प्रत्येकं नियमादित्यर्थः। यद्येक एव आत्मा स्यात्तत एकस्य जन्मनि सर्व एव जायेरन्, एकस्य मरणे सर्वेऽपि म्रियेरन्, एकस्य करणवैकल्ये = बाधिर्याऽन्धत्व-मूकत्वकुणित्वखञ्जत्वलक्षणे सर्वेऽपि बधिराऽन्धमूककुणिखञ्जाः स्युः, न चैवं भवति, तस्मात् – जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमात् पुरुषबहुत्वं सिद्धम्। इतश्च **अयुगपत् प्रवृत्तेश्च**। युगपत् = एककालं, न युगपदयुगपत् प्रवर्त्तनम्। यस्मादयुगपद्धर्मादिषु प्रवृत्तिर्दृश्यते एके धर्मे प्रवृत्ताः, अन्येऽधर्मे वैराग्येऽन्ये, ज्ञानेऽन्ये प्रवृत्ताः, तस्मादयुगपत्प्रवृत्तेश्च बहवः इति सिद्धम्। किञ्चान्यत् **त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव**। त्रिगुणभावविपर्ययाच्च पुरुषबहुत्वं सिद्धम्। यथा सामान्ये जन्मनि एकः सात्त्विकः सुखी, अन्यो राजसो दुःखी, अन्यस्तामसो मोहवान्, एवं त्रैगुण्यविपर्ययात् बहुत्वं सिद्धमिति।।१८।।

भाष्यानुवादः

अब क्या वह समस्त शरीरों में अधिष्ठाता मणिरसनात्मकसूत्र की तरह एक है अथवा प्रत्येक शरीर में अधिष्ठाता अनन्त आत्मा है? इसके उत्तर में कहते हैं कि जन्म, मरण और करण – इनके प्रत्येक में नियत हो जाने से (आत्मा अनेक है।) यदि आत्मा एक होता तो एक के जन्म होने पर सब जन्म हो जाते, एक की मृत्यु होने पर सब मर जाते (तथा) एक की इन्द्रिय में विकलता होने पर जैसे – अन्धा, बधिर, मूक, खंज आदि सब अन्ध, बधिर, मूक, खंज आदि हो जाते। परन्तु ऐसा नहीं होता है। इसलिए जन्म, मृत्यु और इन्द्रियों के प्रत्येक पुरुष में नियत होने से पुरुष अनेक हैं। और फिर अयुगपत्० युगपत् • एक काल, जो एक काल में न हो, वह अयुगपत्, वैसे प्रवृत्त होना। क्योंकि एक काल में सबकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। जैसे – एक (पुरुष) धर्म में प्रवृत्त होता है, तो अन्य (पुरुष) अधर्म में (प्रवृत्त होता है)। एक (पुरुष) वैराग्य में तो अन्य (पुरुष) ज्ञान में प्रवृत्त होता है, इसलिए (समस्त पुरुषों के) एक काल में प्रवृत्ति न होने से पुरुष अनेक

है। और फिर अन्य त्रैगुण्य० तीनों गुणों की सत्ता के विपरीत होने से पुरुष की अनेकता सिद्ध होती है। जैसे – सामान्य जन्म में एक सात्त्विक सुखी होता है, तो अन्य राजसिक दु:खी तथा अन्य तामसिक मोहवान् पुरुष है। इस प्रकार त्रैगुण्य के विपरीत होने से पुरुषबहुत्व सिद्ध होता है॥१८॥

तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥१९॥

अन्वय :- च तस्मात् विपर्यासात्, अस्य पुरुषस्य साक्षित्वं, माध्यस्थ्यं, द्रष्टृत्वम्, अकर्तृभाव: च सिद्धम्।

अनुवाद :- और उसके (त्रिगुणादि के) विपरीत स्वभाववाला होने से इस पुरुष के साक्षिभाव, मध्यस्थ भाव, द्रष्टा का भाव और कर्तृत्व का अभाव सिद्ध होता है।

नरहरि:

च तथा तस्मात् – त्रिगुणादे: विपर्यासात् = विपर्ययात्, त्रिगुणादे: य: विपर्यास:, तस्मादिति – स:, पुरुषस्य निर्गुणत्वं विवेकित्वमविषयत्वमसाधारणत्वं चेतनत्वमप्रसव-धर्मित्वं चेति इत्यादिभि: अस्य पुरुषस्य सिद्धम् = सिद्ध्यति, किमिति? उच्यते – साक्षित्वम् – साक्षे: भावत्वम्, यत: गुणा एव कर्त्तार: प्रवर्त्तन्ते, न तु साक्षी प्रवर्त्तते। अथ च न निवर्त्तते। साक्षी च दर्शितविषयो भवति। यस्मै विषय: प्रदर्श्यते स: साक्षी। एवं प्रधानमपि स्वकृतं विषयं पुरुषाय दर्शयतीति पुरुषो साक्षी, कैवल्यम् = केवलस्य भाव:, कैवल्यम् अन्यत्वं वा। त्रिगुणेभ्य: केवल: अन्यो वा। माध्यस्थ्यम् – मध्यस्थस्य भावो, परिब्राजकवत्। यथा कश्चित् परिब्राजक: ग्रामीणेषु कर्षणार्थेषु प्रवृत्तेषु केवलो मध्यस्थ:, तथैव पुरुषोऽपि गुणेषु प्रवर्त्तमानेषु न प्रवृत्तं भवति। द्रष्टृत्वम् = द्रष्टु: भाव:, मध्यस्थस्वरूपत्वात् द्रष्टा, अकर्तृभाव: = न कर्तृभाव:, विवेकित्वाद् अप्रसवधर्मित्वाच्च। यत: सत्त्वादय: गुणा एव कर्मकर्तृभावेन प्रवर्त्तन्ते, न तु पुरुष:, सिद्धम् = सिद्ध्यतीति॥१९॥

गौडपादभाष्यम्

अकर्त्ता पुरुष इत्येतदुच्यते **तस्माच्च विपर्यासात्**। तस्माच्च = यथोक्तत्रैगुण्यविपर्यासाद्विपर्ययान्निर्गुण:, पुरुषो, विवेकी, भोक्तेत्यादिगुणानां पुरुषस्य यो विपर्यास उक्तस्तस्मात्, सत्त्वरजस्तमसु कर्तृभूतेषु साक्षित्वं सिद्धं पुरुषस्येति योऽयमधिकृतो बहुत्वं प्रति। गुणा एव कर्त्तार: प्रवर्त्तन्ते, साक्षी न प्रवर्त्तते, नापि निवर्त्तत एव। किञ्चान्यत् **कैवल्यं** = केवलीभाव:। कैवल्यमन्यत्वमित्यर्थ:। त्रिगुणेभ्य: केवल: = अन्य:। **माध्यस्थ्यं** = मध्यस्थभाव:। परिव्राजकवत् मध्यस्थ: पुरुष:। यथा कश्चित् परिव्राजको ग्रामीणेषु कर्षणार्थेषु प्रवृत्तेषु केवलो मध्यस्थ:, पुरुषोऽप्येवं गुणेषु प्रवर्त्तमानेषु न प्रवर्त्तते। तस्मात् **द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च**। यस्मान्मध्यस्थस्तस्माद् द्रष्टा, तस्मादकर्त्ता पुरुषस्तेषां कर्मणामिति। सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणा: कर्मकर्तृभावेन प्रवर्त्तन्ते, न पुरुष:। एवं पुरुषस्याऽस्तित्वं च सिद्धम्॥१९॥

भाष्यानुवाद:

पुरुष अकर्त्ता है – (यह जो कहा गया है) इस पर कहते हैं – तस्मात्०। जैसे – कहा गया है त्रिगुणता के विपरीत होने से – पुरुष निर्गुण, विवेकी, भोक्ता इत्यादि गुणों का पुरुष का जो विपरीत कहा गया है, अत: सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण रूप कर्तृभूततत्त्वों में पुरुष का साक्षित्व सिद्ध होता है। जो यह पुरुष है वह बहुत्व के प्रति अधिकृत है। (ये तीनों) गुण ही कर्त्ता है, और प्रवृत्त होते हैं। किन्तु साक्षी न प्रवृत्त होता है, और न हि निवृत्त होता है। और फिर अन्य कैवल्य० केवल का भाव। कैवल्य होना • अन्यत्व होना है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण – इन तीनों से केवल • अन्य। माध्यस्थ्य० मध्यस्थ का होना (माध्यस्थ्य) है। परिव्राजक की तरह पुरुष मध्यस्थ होता है। जैसे कोई परिव्राजक गाँव के किसानों के कर्षण में प्रवृत्त होने पर केवल मध्यस्थ होता है (न कि कर्षण आदि में प्रवृत्त होता है), पुरुष भी इसी प्रकार गुणों के प्रवृत्त होने पर भी प्रवृत्त नहीं होता है। इसलिए द्रष्टृत्व० मध्यस्थ होने के कारण (पुरुष) द्रष्टा है, अत: पुरुष उन कर्मों का अकर्त्ता (कर्त्ता नहीं/कर्तृत्वभाव से रहित) है। सत्त्व, रजस् और तमस् – ये तीनों गुण कर्म-कर्तृ के रूपसे प्रवृत्त होते हैं, न कि पुरुष। इस प्रकार पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है॥१९॥

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनवदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीन:॥२०॥

अन्वय :- तस्मात् तत्संयोगात् अचेतनं लिङ्गं चेतनवद् इव (भवति), तथा च गुणकर्तृत्वे उदासीन: कर्त्ता इव भवति।

अनुवाद :- इसलिए यह अचेतन (महदादि) लिङ्गतत्त्व उस चेतन पुरुष के संयोग से चेतन जैसा हो जाता है। गुणों के कर्त्ता होने पर उदासीन पुरुष भी कर्त्ता की तरह हो जाता है।

नरहरि:

तस्मात् – अचेतत्वादिति, तत्संयोगात् – तस्य चेतनस्य पुरुषस्य संयोगात्, अचेतनम् = जड:, लिङ्गम् = महदादि चेतनवद् = चेतनसदृशं भवति। तस्माद् गुणा: अध्यवसायं

कुर्वन्ति, न पुरुषः। तथा च गुणकर्तृत्वे – गुणानां कर्तृत्वे सति उदासीनः पुरुषः कर्त्ता इव – अकर्त्ताऽपि सन् कर्त्ता भवति॥२०॥

गौडपादभाष्यम्

यस्मादकर्त्ता पुरुषस्तत् कथमध्यवसायं करोति – धर्मं करिष्याम्यधर्मं न करिष्यामीत्यतः कर्त्ता भवति, न च कर्त्ता पुरुषः, एवमुभयथा दोषः स्यादिति। अत उच्यते – इह पुरुषश्चेतनावान्, तेन चेतनाऽवभाससंयुक्तं महदादि लिङ्गं चेतनवदिव भवति। यथा लोके घटः शीतसंयुक्तः शीतः, उष्णसंयुक्त उष्णः, एवं महदादिलिङ्गं तस्य संयोगात् = पुरुषसंयोगात् – चेतनवदिव भवति। तस्माद् गुणा अध्यवसायं कुर्वन्ति, न पुरुषः। यद्यपि लोके पुरुषः कर्त्ता, गन्तेत्यादि प्रयुज्यते, तथाप्यकर्त्ता पुरुषः। कथम्? **गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः**। गुणानां कर्तृत्वे सति, उदासीनोऽपि पुरुषः कर्त्तेव भवति, न कर्त्ता। अत्र दृष्टान्तो भवति, यथाऽचौरश्चौरैः सह गृहीतश्चौर इत्यवगम्यते, एवं त्रयो गुणाः कर्त्तारः, तैः संयुक्तः पुरुषोऽकर्त्ताऽपि भवति, कर्तृसंयोगात्। एवं व्यक्ताव्यक्तज्ञानां विभागो व्याख्यातः, यद्विभागान्मोक्षप्राप्तिरिति॥२०॥

भाष्यानुवादः

(अब प्रश्न यह है कि) यदि पुरुष अकर्त्ता (कर्त्ता नहीं) है, तो वह निश्चयात्मक ज्ञान कैसे करता है? जैसे – (मैं) धर्म करुँगा, अधर्म को नहीं करुँगा। अतः पुरुष कर्त्ता है। और पुरुष कर्त्ता भी नहीं है, इस प्रकार दोनों तरह (चिन्तन करने) से दोष होना चाहिए। अब (इसके उत्तर में) कहते हैं – इस शास्त्र में पुरुष चेतन से युक्त है, तथा उस चेतन के प्रतिभास से संयुक्त होने पर महदादि लिङ्गतत्त्व चेतन की तरह (प्रतीत) हो जाता है। जैसे – संसार में घड़ा शीत से संयुक्त होने पर शीत तथा उष्ण से संयुक्त होने पर उष्ण हो जाता है। उसी प्रकार महदादि लिङ्गतत्त्व भी उस (चेतन) पुरुष के संयोग से चेतन की तरह हो जाता है। इसलिए गुण ही अध्यवसाय करते हैं, न कि पुरुष। यद्यपि संसार में पुरुष करने वाला (कर्त्ता) है, जाने वाला है – इस प्रकार का व्यवहार होता है, तथापि पुरुष अकर्त्ता है। कैसे? गुणकर्तृत्वे० गुणों के कर्तृत्वरूप गुण होने पर भी उदासीन जो पुरुष वह कर्त्ता की तरह होता है, न कि (स्वयं) कर्त्ता होता है। इसमें उदाहरण है जैसे जो चोर नहीं है, यदि वह चोरों के साथ पकड़ा जाता है, तो (उसके साथ) चोर जैसा व्यवहार किया जाता है। उसी प्रकार तीनों गुण (क्रिया) करने वाले (कर्त्ता) हैं, उनसे संयुक्त होने पर पुरुष अकर्त्ता होने पर भी कर्त्ता होता है, क्योंकि (उसके साथ) कर्त्ता (करने वाले गुण) संयुक्त है। इस प्रकार व्यक्ततत्त्व, अव्यक्ततत्त्व और ज्ञ – इन तीनों का विभाग कह दिया गया, जिसके विभाग विज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है॥२०॥

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पंग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥२१॥

अन्वय :- पुरुषस्य दर्शनार्थं तथा प्रधानस्य कैवल्यार्थं, उभयोः अपि संयोग पंग्वन्धवत्, तत्कृतः सर्गः।

अनुवाद :- पुरुष का (प्रकृति के साथ) दर्शन के लिए तथा प्रकृति का कैवल्य के लिए (पुरुष के साथ संयोग होता) है। इस (प्रकृति और पुरुष) उभय का भी संयोग पङ्गु और अन्ध के समान होता है। और उसी (संयोग) से सृष्टि होती है।

नरहरिः

पुरुषस्य = चेतनस्य ज्ञस्य वा दर्शनार्थं = दर्शननिमित्तं प्रधानेन सह संयोगः। तथा प्रधानस्य = अव्यक्तस्य कैवल्यार्थम् = कैवल्यनिमित्तं पुरुषेण सह संयोगः। उभयोः = प्रकृतिपुरुषयोः संयोगः पङ्ग्वन्धवत् – यथा कश्चित् पङ्गुः अन्धश्च – एतयोः द्वयोः संयोगः गमनार्थं दर्शनार्थं भवति। अन्धेन पङ्गुस्कन्धमारोपिः, एवं शरीरारूढपङ्गुदर्शितेन मार्गेणान्धो याति, पङ्गुश्चान्धस्कन्धारूढः। एवं प्रकारेण पुरुषे दर्शनशक्तिरस्ति, पङ्गुवत् अक्रियत्वात् न क्रिया। प्रधाने क्रियाशक्तिरस्ति अन्धवत्, न दर्शनशक्तिः। एतयोः द्वयोः संयोगः जायते। पुनः तत्कृतः तेन संयोगेन कृतस्तत्कृतः सर्गः = सृष्टिः जायते। एवं प्रधानपुरुषयोः संयोगेन सर्गस्योत्पत्तिः जायते॥२१॥

गौडपादभाष्यम्

अथैतयोः प्रधानपुरुषयोः किं हेतुः सङ्घातः? उच्यते – पुरुषस्य प्रधानेन सह संयोगो दर्शनार्थम्। प्रकृतिं, महदादिकार्यं भूतपर्यन्तं पुरुषः पश्यति एतदर्थं, प्रधानस्यापि पुरुषेण सह संयोगः कैवल्यार्थम्। स च संयोगः **पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि** द्रष्टव्यः। यथा एकः पङ्गुरेकश्चान्धः, एतौ द्वावपि गच्छन्तौ महता सामर्थ्येनाटव्यां सार्थस्य स्तेनकृतादुपप्लवात् स्वबन्धुपरित्यक्तौ दैवादितश्चेतश्च चेरतुः, स्वगत्या च तौ संयोगमुपयातौ। पुनस्तयोः स्ववचसोर्विश्वस्तत्वेन संयोगो गमनार्थं दर्शनार्थञ्च भवति। अन्धेन पङ्गुः स्कन्धमारोपितः, एवं शरीरारूढपङ्गुदर्शितेन मार्गेणाऽन्धो याति, पङ्गुश्चाऽन्धस्कन्धारूढः। एवं पुरुषे दर्शनशक्ति-रस्ति, पङ्गुवत् न क्रिया, प्रधाने क्रियाशक्तिरस्त्यन्धवत्, न दर्शनशक्तिः। यथा वाऽनयोः पङ्ग्वन्धयोः कृतार्थयोर्विभागो भविष्यतीप्सितस्थानप्राप्तयोः, एवं प्रधानमपि पुरुषस्य मोक्षं कृत्वा निवर्त्तते, पुरुषोऽपि प्रधानं दृष्ट्वा कैवल्यं गच्छति, तयोः कृतार्थयो-र्विभागो भविष्यति। किञ्चान्यत् **तत्कृतः सर्गः** तेन

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

संयोगेन कृतस्तत्कृतः, सर्गः = सृष्टिः। यथा स्त्रीपुरुषसंयोगात् सुतोत्पत्तिस्तथा प्रधानपुरुषसंयोगात् सर्गस्योत्पत्तिः॥२१॥

भाष्यानुवादः

अब प्रश्न यह है कि इन दोनों प्रधान और पुरुष के संयोग में क्या कारण है? अब उत्तर दिया जा रहा है कि – पुरुष का प्रधान के साथ जो संयोग वह दर्शन के लिए है। प्रकृति तथा महत् से लेकर पञ्चभूत तक तत्त्वों को पुरुष देखता है, इसलिए, प्रधान० प्रधान का भी पुरुष के साथ संयोग कैवल्य के लिए है। और वह संयोग पङ्गु एवं अन्ध की तरह देखना चाहिए। जैसे – एक पङ्गु और एक अन्ध, ये दोनों साथ में जाते हुए अति कष्ट से जङ्गल में जा रहे थे। (जिस सार्थ के साथ जा रहे थे) उस सार्थ का (परिवार में) चोरों के उपद्रव के कारण इतस्तत हो गये तथा अपने बन्धु से परित्यक्त होकर दैववश इधर-उधर विचरण करते रहे। और अपनि गति से वे दोनों संयोग प्राप्त कर गए (मिल गए)। फिर उन दोनों का अपने वचन पर विश्वास होने पर गमन के लिए और दर्शन के लिए संयोग होता है। अन्धे ने पङ्गु को अपने कन्धे पर चढ़ा लिया। इस प्रकार शरीर पर आरूढ़ पङ्गु के दिखाए गए मार्ग से अन्ध जाता है, और पङ्गु अन्धे के कन्धे पर आरूढ़ होकर (जाता है)। इस प्रकार पुरुष में देखने की शक्ति है, परन्तु पङ्गु की तरह क्रिया नहीं है। प्रधान में अन्ध की तरह क्रिया निष्पादन की शक्ति है, परन्तु देखने की शक्ति नहीं है। अथवा जैसे इन पङ्गु और अन्ध – दोनों अपने-अपने इच्छित स्थानों के प्राप्त होने पर, उन दोनों के प्रयोजन चरितार्थ होने पर (जिस कारण दोनों के संयोग हुआ था, उससे उनका) विभाग अर्थात् विच्छेद हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति भी पुरुष का मोक्ष सम्पादन करके निवृत्त हो जाती है, पुरुष भी प्रधानतत्त्व को देखकर कैवल्य को प्राप्त कर जाता है, (और इस प्रकार होने पर) उन दोनों का विभाग (वे दोनों अलग-अलग हो जाएँगे) हो जाएगा। और फिर तत्कृत० उस संयोग के द्वारा सृष्टि होती है। जैसे – स्त्री और पुरुष के संयोग से सन्तान की उत्पत्ति होती है, वैसे ही प्रधान और पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है॥२१॥

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि॥२२॥

अन्वय :- प्रकृतेः महान्, ततः अहङ्कारः, तस्मात् च षोडशकः गणः, तस्माद षोडशकात् अपि पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि (जायन्ते)।

अनुवाद :- प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार और उस अहङ्कार से सोलह का समूह और उस सोलह में भी पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं।

नरहरिः

प्रकृतेः = प्रधानादव्यक्तात् वा महान् उत्पद्यते, ततः महतः अहङ्कारः - अहङ्कारलक्षणकः, तस्माद् = अहङ्कारात् षोडशकः गणः = षोडशसङ्ख्यापरिमितो समूहः - एकादशकः तन्मात्रं चेति, यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणाख्यानि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, मनस् इत्येकादशगणः, शब्दस्पर्शरूप-रसगन्धाख्यानि पञ्चतन्मात्राणि चेति। तस्मात् षोडशकात् = षोडशसमूहात् पञ्चभ्यः पञ्चतन्मात्रेभ्यः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि पञ्चमहाभूतानि उत्पद्यन्ते॥२२॥

गौडपादभाष्यम्

इदानीं सर्गविभागदर्शनार्थमाह – प्रकृतिः = प्रधानं, ब्रह्म, अव्यक्तं, बहुधानकं, मायेति पर्यायाः। अलिङ्गस्य प्रकृतेः सकाशान्महान्-उत्पद्यते। महान् = बुद्धिः, आसुरी, मतिः, ख्यातिर्ज्ञानमिति प्रज्ञापर्यायैरुत्पद्यते। तस्माच्च = महतोऽहङ्कार उत्पद्यते। अहङ्कारः = भूतादिर्वैकृतस्तैजसोऽभिमान इति पर्यायाः। **तस्माद्गणश्च षोडशकः**। तस्मादहङ्कारात् षोडशकः षोडशस्वरूपेण गण उत्पद्यते। स यथा – पञ्चतन्मात्राणि = शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्र-मिति, तन्मात्राणि = सूक्ष्मपर्याय-वाच्यानि। तत एकादशेन्द्रियाणि = श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, घ्राणमिति पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, वाक्पाणिपादपायूपस्थानीति पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, उभयात्मकमेकादशं मनश्च। एष षोडशको गणोऽहङ्कारादुत्पद्यते। किञ्च – **पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि**, तस्मात् षोडशकाद् गणाद् पञ्चभ्यस्तन्मात्रेभ्यः सकाशात् पञ्च वै महाभूतान्युत्पद्यन्ते। यदुक्तं – शब्दतन्मात्रादाकाशं, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, रूपतन्मात्रात्तेजः, रसतन्मात्रादापः, गन्धतन्मात्रात् पृथिवी, एवं पञ्चभ्यः परमाणुभ्यः पञ्चमहाभूतान्युत्पद्यन्ते॥२२॥

भाष्यानुवादः

अब सर्ग के विभाग के दर्शन के लिए कहा गया है कि – प्रकृति • प्रधान, ब्रह्म, अव्यक्त, बहुधानक और माया – इन पर्यायों से जाना जाता है। अलिङ्ग प्रकृतितत्त्व से महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। यह महत्तत्त्व बुद्धि, आसुरी, मति, ख्याति, ज्ञान तथा प्रज्ञा आदि पर्यायावाचकों से जाना जाता है। उस महत् से अहङ्कार उत्पन्न होता है। इस अहङ्कार के भूतादि वैकृत, भूतादि तैजस तथा अभिमान आदि पर्याय हैं। उस अहङ्कार से सोलह स्वरूपवाला समूह उत्पन्न होता है। वह जैसे – पाँच तन्मात्र • शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र,

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र, गन्धतन्मात्र आदि। ये तन्मात्र सूक्ष्म पर्याय वाली है। उससे (अहङ्कार से) ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। जैसे – श्रोत्र, त्वक्, चक्षू, जिह्वा, घ्राण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। और उभयात्मक मन है। यह सोलह का समूह अहङ्कार से उत्पन्न हुए हैं। और फिर इस सोलह का समूह पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। जैसे कहा गया है – शब्दतन्मात्र से आकाश, स्पर्शतन्मात्र से वायु, रूपतन्मात्र से तेजस्, रसतन्मात्र से जल, गन्धतन्मात्र से पृथिवी – इस प्रकार पाँचों परमाणुओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं।।२२।।

चित्रम् :-

अध्यवसायो बुद्धिः धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।।२३।।

अन्वय :- अध्यवसायः बुद्धिः। धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम् (इति) एतत् (बुद्धेः) सात्त्विकं रूपम्। अस्मात् विपर्यस्तं तामसं (रूपं कथ्यते)।

अनुवाद :- अध्यवसाय बुद्धि है। धर्म, ज्ञान,वैराग्य और ऐश्वर्य - ये (बुद्धि के) सात्त्विक रूप हैं। और इसके विपरीत (अधर्म आदि बुद्धि के) तामस रूप है।

नरहरिः

अध्यवसायः - अध्यवसानमिति, बुद्धेरसाधारणो व्यापारो तदभेदाः बुद्धिः = महत्। इयं बुद्धि द्विधा विभज्यते, सात्त्विकतामसभेदाभ्याम्। तत्र बुद्धिः सात्त्विकं रूपं चतुर्विधम्। यथा – धर्मः, ज्ञानं, वैराग्यम्, ऐश्वर्यम्। तत्र धर्मो योगशास्त्रोक्तदयादानयमनियमलक्षणः। ज्ञानम् = प्रकाशोऽवगमः, भानमिति वा। बाह्याभ्यन्तरभेदाभ्यां ज्ञानं द्विविधम्। तत्र बाह्यं वेदाङ्गसहिताः वेदाः पुराणानि, न्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चेति। प्रकृतिपुरुषयोः विवेकज्ञानमाभ्यन्तरमित्युच्यते। बाह्यज्ञानेन लोकपङ्क्तिर्लोकानुरागः, ज्ञानेनाऽभ्यन्तरेण च मोक्षः लप्स्यते। वैराग्यं विशिष्टपरमार्थवस्तुविषयको विशिष्टो रागः विरागः, तस्य भावः वैराग्यम्, रागस्याभावो वा वैराग्यमिति। अस्मन्मते तु रागस्याऽभावो विरागः, तस्य भावः वैराग्यमिति न युक्तम्, यतः साङ्ख्ययोगयोः अभावस्याऽधिकरणस्वरूपमङ्गीक्रियते। अतः परमार्थवस्तुविषये रागः विरागः, तस्य भावः वैराग्यमिति युक्तं प्रतिभाति। इदमपि बाह्याभ्यन्तरभेदाभ्यां द्विविधम्। तत्र दृष्टविषयवैतृष्ण्यात् अर्जन-रक्षण-क्षय-सङ्ग-हिंसादिदोषदर्शनाद्विरक्तस्य यत् वैराग्यं जायते तदेव बाह्यं, तथा च स्वप्नेन्द्रजालसदृशं प्रधानमिति विरक्तस्य मोक्षे यदुत्पद्यते तदाभ्यन्तरवैराग्यमुच्यते। ऐश्वर्यम् = ईश्वरस्य भावः, तच्चाणिमाद्यष्टगुणम्। यथा – अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्यम्, ईशित्वं, वशित्वं, यत्र कामावसायित्वं चेति। एतत् = एतानि बुद्धेः सात्त्विकं = सात्त्विकानि रूपाणि सन्ति। सत्त्वगुणः रजस्तमसी अभिभूय धर्मादीन् बुद्धिगुणान् प्राप्नोति। अस्माद् = एभ्यः धर्मादिभ्यः विपर्यस्तम् = विपरीतम् अधर्मः, अज्ञानम्, अवैराग्यम्, अनैश्वर्यमिति तामसः = बुद्धेः तामसरूपं कथ्यते। अत एवं प्रकारेण सात्त्विकैस्तामसैः च स्वरूपैरष्टाङ्गा बुद्धिस्त्रिगुणादव्यक्तादुत्पद्यते।।२३।।

गौडपादभाष्यम्
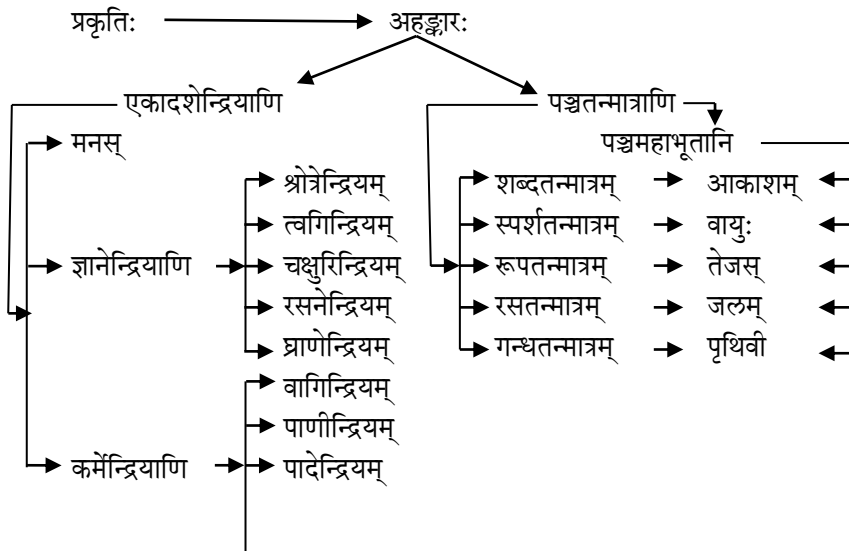
यदुक्तं 'व्यक्ताऽव्यक्तज्ञविज्ञानान्मोक्षः' इति, तत्र महदादिभूतान्तं त्रयोविंशतिभेदं व्यक्तं व्याख्यातम्। अव्यक्तमपि 'भेदानां परिमाणादि'त्यादिना व्याख्यातम्। पुरुषोऽपि 'सङ्घातपरार्थत्वादि'त्यादिभिर्हेतुभिर्व्याख्यातः। एवमेतानि पञ्चविंशतितत्त्वानि, यस्तैस्त्रैलोक्यं व्याप्तं जानाति, तस्य भावोऽस्तित्वम्। यथोक्तं –

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राऽश्रमे रतः।
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥

तानि यथा – प्रकृतिः, पुरुषो, बुद्धिरहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानीति, एतानि पञ्चविंशति-तत्त्वानि। तत्रोक्तं 'प्रकृतेर्महानुत्पद्यते'। तस्य महतः किं लक्षणमित्येतदाह – **अध्यवसायो बुद्धिलक्षणम्।** अध्यवसानम् = अध्यवसायः। यथा बीजे भविष्यद्वृत्तिकोऽहङ्कारस्तद्वदध्यवसायः - अयं घटः, अयं पटः इत्येवमध्यवस्यति या सा बुद्धिरिति लक्ष्यते। सा च बुद्धिरष्टाङ्गिका, सात्त्विकतामसरूपभेदात्। तत्र बुद्धेः सात्त्विकं रूपं चतुर्विधं भवति = धर्मो, ज्ञानं, वैराग्यमैश्वर्यं चेति। तत्र धर्मो नाम – दयादानयमनियमलक्षणः। तत्र यमाः नियमाश्च पातञ्जलेऽभिहिता - 'अहिंसासत्याऽस्येय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहाः यमाः', 'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः'। ज्ञानं, प्रकाशोऽवगमो, भानमिति पर्यायाः। तच्च द्विविधं = बाह्यमाभ्यन्तरञ्चेति। तत्र बाह्यं नाम – वेदाः शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तच्छन्दोज्यौतिषाख्यषडङ्गसहिताः, पुराणानि, न्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चेति। आभ्यन्तरं – प्रकृतिपुरुषज्ञानम्। इयं प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था, अयं पुरुषः सिद्धो, निर्गुणो व्यापी, चेतन इति। तत्र बाह्येन ज्ञानेन लोकपङ्क्तिर्लोकानुराग इत्यर्थः। आभ्यन्तरेण ज्ञानेन मोक्ष इत्यर्थः।

वैराग्यमपि द्विविधं बाह्यमाभ्यन्तरं च। बाह्यं – दृष्टविषयवैतृष्ण्यम् = अर्जन-रक्षण-क्षय-सङ्ग-हिंसादोषदर्शनाद्विरक्तस्य। आभ्यन्तरं प्रधानमप्यत्र स्वप्नेन्द्रजालसदृशमिति विरक्तस्य मोक्षेप्सोर्यदुत्पद्यते तदाभ्यन्तरं वैराग्यम्। ऐश्वर्यं = ईश्वरभावः। तच्चाष्टगुणम् – अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्रकाम्यमीशित्वं, वशित्वं, यत्रकामावसायित्वं चेति। अणोर्भावोऽणिमा = सूक्ष्मो भूत्वा जगति विचरतीति। महिमा = महान् भूत्वा विचरतीति। लघिमा = मृणालीतूलावयवादपि लघुतया पुष्पकेशराग्रेष्वपि तिष्ठति। प्राप्तिः = अभिमतं वस्तु यत्र तत्रावस्थितः प्राप्नोति। प्राकाम्यं = प्रकामतो यदेवेच्छति तदेव विदधाति। ईशित्वं = प्रभुतया त्रैलोक्यमपीष्टे। वशित्वं = सर्वं वशीभवति। यत्र कामावसायित्वं = ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्र कामस्तत्रैवास्य स्वेच्छया स्थानासनविहारानाचरतीति। चत्वारि एतानि बुद्धेः सात्त्विकानि रूपाणि। यदा सत्त्वेन रजस्तमसी अभिभूते, तदा पुमान् बुद्धिगुणान् धर्मादीनाप्नोति। किञ्चान्यत् **तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।** अस्माद्धर्मादिर्विपरीतं तामसं बुद्धिरूपम्। तत्र धर्माद्विपरीतोऽधर्मः एवमज्ञानमवैराग्यमनैश्वर्यमिति। एवं सात्त्विकैस्तामसैः स्वरूपैरष्टाङ्गा बुद्धिस्त्रिगुणादव्यक्तादुत्पद्यते॥२३॥

भाष्यानुवादः

जो कहा गया है – व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ तत्त्व के विशिष्टज्ञान से मोक्ष होता है, उसमें महत् तत्त्व से लेकर पञ्चमहाभूत तक २३ व्यक्ततत्त्वों की व्याख्या हो गयी। अव्यक्ततत्त्व भी भेदाना० इस कारिका से व्याख्यात है। पुरुष तत्त्व भी सङ्घात० इत्यादि हेतुओं से व्याख्यात है। इस प्रकार से २५ तत्त्व, जो तीनों लोक में व्याप्त हुआ जान लेता है, उसका भाव अस्तित्व है। जैसे कहा गया है –

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राऽश्रमे रतः।
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥

अर्थात् 'पच्चीस तत्त्वों को जानने वाला जिस किसी भी आश्रम में रहता है (चाहे) वह जटी, मुण्डी, शिखी हो, मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।'

वे जैसे – प्रकृति, पुरुष, बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत हैं। ये पच्चीस तत्त्व कहे जाते हैं। ऊपर कहा गया है कि प्रकृतितत्त्व से महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। उस महान् का क्या लक्षण है? इस पर कहते हैं अध्यावसाय० अध्यवसाय बुद्धि का लक्षण है। अध्यवसान ही अध्यवसाय है। जैसे – बीज में भविष्य में होने वाला अङ्कुर का निश्चय होता है, उसी प्रकार अध्यवसाय है। यह घडा है, यह वस्त्र है, इस प्रकार का जो निश्चयात्मक ज्ञान करता है, वह बुद्धि के रूप से लक्षित है। और यह बुद्धि आठ अङ्गो वाली है। सात्त्विकरूप और तामसिकरूप भेद से। इनमें से बुद्धि का सात्त्विकरूप चार प्रकार का है। जैसे – धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। इनमें से धर्म, दया, दान, यम तथा नियम लक्षणवाला है। उनमें से यम और नियम पतञ्जलि के द्वारा कहे गये हैं – 'अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहाः यमाः। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।' अर्थात् – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – ये पाँच यम हैं। शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये नियम कहे जाते हैं। ज्ञान, प्रकाश, अवगम तथा भान – ये बुद्धि के पर्याय हैं। और यह दो प्रकार का है – बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से। इन दोनों में बाह्य ज्ञान शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष – इस प्रकार ६ अङ्गों के साथ चार वेद, पुराण और न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र आदि हैं। आभ्यन्तर प्रकृति और पुरुष का ज्ञान

है। यह प्रकृति सत्त्व, रजस् और तमस् – इन तीनों गुणों की साम्यावस्था है, यह पुरुष सिद्ध है, जो कि निर्गुण, व्यापी तथा चेतन है। यहाँ पर बाह्य ज्ञान से लोक में प्रसिद्धि, अथवा लोगों में अनुराग होता है। और आभ्यन्तर ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है।

वैराग्य भी दो प्रकार का है, जैसे – बाह्य और आभ्यन्तर। अर्जन, रक्षण, क्षय, सङ्ग, हिंसा आदि दोषों के दर्शन से विरक्त हुआ चित्त का जो दृष्ट विषयों से वैतृष्ण्य होता है उसे बाह्य वैराग्य कहा जाता है। प्रधान भी यहाँ पर स्वप्न तथा इन्द्रजाल सदृश है- इस प्रकार मोक्ष में इच्छा रखने वाला विरक्त चित्त का जो (वैराग्य) उत्पन्न होता है वह आभ्यन्तर वैराग्य है। ईश्वर का भाव ऐश्वर्य है, और यह आठ गुणवाला है। जैसे – अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और यत्रकामावशायित्व। अणुमात्र का हो जाना अणिमा है, यह सूक्ष्म होकर जगत में विचरण करने वाला होता है। (महिमा) महान् होकर विचरण करने वाला महिमा है। (लघिमा से) कमल का तन्तु अथवा रुई के अवयव से भी हल्का होकर पुष्प केसर के अग्रभाग में भी रह जाता है। (प्राप्ति से) अपने अभीष्ट वस्तु को जिस जगह में हो उसी जगह पर प्राप्त करता है। (प्राकाम्य से) विस्तार पूर्वक जो इच्छा करता है, वह करने में समर्थ होता है। (ईशिता से) प्रभुत्व से त्रैलोक्य का (स्वामीत्व) भी प्राप्त करने वाला है। (वशित्व से) सब कुछ वशीभूत होता है। (यत्रकामावशायित्व से) ब्रह्म से लेकर जड तक जिसमें इच्छा हो उसमें उसकी स्वेच्छा से स्थान, आसन तथा विहार आदि का आचरण करता है। यह चार बुद्धि के सात्त्विक स्वरूप है। जब सत्त्वगुण से रजोगुण और तमोगुण अभिभूत हो जाते हैं, तब पुरुषतत्त्व धर्म आदि बुद्धि के गुणों को प्राप्त कर लेता है। और फिर अन्य – तामस० इन धर्म आदि से विपरीत बुद्धि के तामसिक रूप होते हैं। उनमें से धर्म से विपरीत अधर्म, इस प्रकार अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य आदि है। इस प्रकार सात्त्विक और तामसिक स्वरूपवाली आठ अङ्गों वाली बुद्धि त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होती है।।२३।।
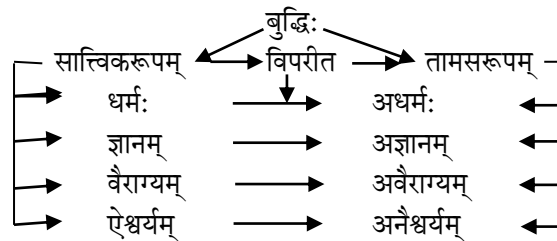
चित्रम् :-

अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रः पञ्चकश्चैव।।२४।।

अन्वय :- अभिमानः अहङ्कारः, तस्मात् द्विविधः सर्गः प्रवर्त्तते। एकादशकः गणः च तन्मात्रः च पञ्चकः एव।

अनुवाद :- अभिमत करना अहङ्कार है। उस अहङ्कार से दो प्रकार की सृष्टि होती है। (ये दो) ग्यारह इन्द्रियों का समूह और पाँच तन्मात्राओं का समूह ही है।

नरहरिः

अभिमानः = यत् खलु आलोचितं मतं तत्राहमधिकृतः, शक्तः खल्वहमत्र, मदर्था एवामी विषयाः, मत्तो नान्योऽत्राधि-कृतः कश्चिदस्ति अतोऽहमस्मि इति योऽभिमानः असाधारणव्यापारो वा अहङ्कारः = अहं करोतीति। यथा कुम्भं करोतीति, अहं क्रियतेऽनेनेति वा। तस्माद् = अहङ्कारात्, द्विविधः = द्विप्रकारेण सर्गः = सृष्टिः, प्रवर्त्तते = प्रवृत्तं भवतीति। एकादशकः = पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, मनस्। गणः = समूहः, तथा च तन्मात्रः - शब्दः, स्पर्शः, रूपं, रसः, गन्धश्चेति पञ्चकः = पञ्चानां समूहः उत्पद्यते।।२४।।

गौडपादभाष्यम्

एवं बुद्धिलक्षणमुक्तम्। अहङ्कारलक्षणमुच्यते – एकादशकश्च गणः = एकादशेन्द्रियाणि, तथा तन्मात्रगणः पञ्चकः = पञ्चलक्षणोपेतः। शब्दतन्मात्र-स्पर्शतन्मात्र-रूपतन्मात्र-रसतन्मात्र-गन्धतन्मात्रलक्षणोपेतः।।२४।।

भाष्यानुवादः

इस प्रकार बुद्धि का लक्षण कह दिया गया। अब अहङ्कार का लक्षण कहा जा रहा है। एकादशक० ग्यारह इन्द्रियों तथा पाँच तन्मात्राओं का समूह (जो पाँचों लक्षणों से युक्त)। जैसे शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र – इन लक्षणों से युक्त है।।२४।।

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तत वैकृतादहङ्कारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्।।२५।।

अन्वय :- वैकृतात् अहङ्कारात् सात्त्विकः एकादशकः प्रवर्त्तते। भूतादेः (अहङ्कारात्) तन्मात्रः सः तामसः उच्यते। तैजसात् उभयम् (प्रवर्त्तते)।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

अनुवाद :- वैकृत संज्ञक अहङ्कार से सात्त्विक ग्यारह का समूह प्रवृत्त होता है। तथा भूतादि संज्ञक अहङ्कार से पाँच तन्मात्राएँ प्रवृत्त होती हैं, यह तामस संज्ञक अहङ्कार कहलाता है। तैजस संज्ञक अहङ्कार से इन दोनों प्रकार के सर्ग प्रवृत्त होता है।

नरहरि:

वैकृतात् = विकृतो भूत्वा यज्जायते, तस्माद् वैकृतसंज्ञकात् अहङ्कारात् = अभिमानलक्षणात्, सात्त्विक: = सत्त्वगुणे-नाभिभूते यदा रजस्तमसी अहङ्कारे भवतस्तदा सोऽहङ्कार: सात्त्विक: उच्यते। एकादशक: - एकादशेन्द्रियगण: = पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, मनस् चेति, प्रवर्त्तते = प्रवृत्तं भवति उत्पद्यते वा। भूतादे: = भूतादिसंज्ञकात् अहङ्कारात् तामस: - यदा तमोगुणेनाभिभूते सत्त्वरजसी अहङ्कारे भवतस्तदा सोऽहङ्कारस्तामसमुच्यते। तन्मात्र: = तन्मात्रगण: पञ्चतन्मात्राणि उत्पद्यन्ते। तैजसाद् – यदा रजोगुणेनाभिभूते सत्त्वतमसी अहङ्कारे भवत: सोऽहङ्कार: तैजसमुच्यते। तस्मात् उभयम् = सात्त्विक: एकादशक: भूतादि तन्मात्रगण: उत्पद्यते॥२५॥

गौडपादभाष्यम्

किं लक्षणात्सर्गमित्येतदाह – सत्त्वेनाभिभूते यदा रजस्तमसी अहङ्कारे भवतस्तदा सोऽहङ्कार: सात्त्विक:। तस्य च पूर्वाचार्यै: संज्ञा कृता वैकृत इति। एतस्माद्वैकृताद-हङ्कारादेकादशक इन्द्रियगण उत्पद्यते। यस्मात् सात्त्विकानि विशुद्धानीन्द्रियाणि स्वविषयसमर्थानि, तस्मादुच्यते **सात्त्विक एकादशक इति**। किञ्चान्यत्? **भूतादेस्तन्मात्र: स तामस:**। तमसाभिभूते सत्त्वरजसी अहङ्कारे यदा भवतस्तदा सोऽहङ्कारस्तामस उच्यते, तस्य पूर्वाचार्यकृता संज्ञा भूतादि:। तस्माद्भूतादेरहङ्कारात् तन्मात्र: पञ्चको गण उत्पद्यते। भूतानामादिभूतस्तमोबहुल:, तेनोक्त: स तामस इति। तस्माद् भूतादे: पञ्चतन्मात्रको गण:। किञ्च **तैजसादुभयम्**। यदा रजसाभिभूते सत्त्वतमसी अहङ्कारे भवतस्तदा तस्मात् सोऽहङ्कारस्तैजस इति संज्ञा लभते। तस्मात्तैजसादुभयमुत्पद्यते। उभयमिति = एकादशको गणस्तन्मात्र: पञ्चक:। योऽयं सात्त्विकोऽहङ्कारो, वैकृतिको = विकृतो भूत्वा एकादशेन्द्रि-याण्युत्पादयति, स तैजसमहङ्कारं सहायं गृह्णाति। सात्त्विको निष्क्रिय: स तैजसयुक्त इन्द्रियोत्पत्तौ समर्थ:। तथा तामसोऽहङ्कारो भूतादिसंज्ञितो निष्क्रियत्वात् तैजसेनाहङ्कारेण क्रियावता युक्तस्तन्मात्राण्युत्पादयति। तेनोक्तं - तैजसादुभयमिति। एवं तैजसेनाऽह-ङ्कारेणेन्द्रियाण्येकादश, पञ्चतन्मात्राणि कृतानि भवन्ति॥२५॥

भाष्यानुवाद:

किस लक्षण (वाला अहङ्कार) से सर्ग उत्पन्न होता है? इस पर कहते हैं कि जब सत्त्वगुण से अभिभूत होकर रजोगुण और तमोगुण अहङ्कार में रहते हैं तब वह अहङ्कार सात्त्विक अहङ्कार कहलाता है। उसका पूर्व के आचार्यों के द्वारा वैकृत नामक संज्ञा किया गया है। इस वैकृत अहङ्कार से ग्यारह इन्द्रियों का समूह उत्पन्न होता है। चूँकि ये सात्त्विक विशुद्ध इन्द्रियाँ अपने विषय के ग्रहण में समर्थ होती हैं, अत: ये सात्त्विक ग्यारह वाला कहे गए हैं। और फिर क्या? भूतादि० जब तमोगुण से अभिभूत होकर सत्त्वगुण और रजोगुण अहङ्कार में रहते हैं, तब वह अहङ्कार तामस अहङ्कार कहलाता है। उसकी पूर्व के आचार्यों के द्वारा भूतादि संज्ञा की गई है। उस भूतादि संज्ञक अहङ्कार से पाँच तन्मात्राओं का समूह उत्पन्न होता है। और फिर तैजस अहङ्कार से दोनों उत्पन्न होते हैं। जब रजोगुण से अभिभूत होकर सत्त्वगुण और तमोगुण अहङ्कार में रहते हैं, तब उससे (उभय उत्पन्न होते हैं), वह अहङ्कार तैजस संज्ञा को प्राप्त करता है। उस तैजस नामक अहङ्कार से उभय उत्पन्न होते हैं। ग्यारह इन्द्रियों का समूह और पाँच तन्मात्राओं का समूह। यह जो सात्त्विक अहङ्कार है, वह विकृत होकर ग्यारह इन्द्रियों को उत्पन्न करता है, वह तैजस अहङ्कार की सहायता ग्रहण करता है। सात्त्विक निष्क्रिय है, वह तैजस अहङ्कार से युक्त होकर इन्द्रियों के उत्पादन में समर्थ होता है। उसी प्रकार भूतादि संज्ञा वाला तामसिक अहङ्कार निष्क्रिय होने के कारण तैजस अहङ्कार के द्वारा क्रिया से युक्त होकर तन्मात्राओं को उत्पन्न करता है। इसलिए कहा गया है – तैजस० इस प्रकार तैजस संज्ञक अहङ्कार से ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ (उत्पन्न) होते हैं॥२५॥

चित्रम् :-

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षु:श्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनकानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि[२] कर्मेन्द्रियाण्याहु:॥२६॥

---
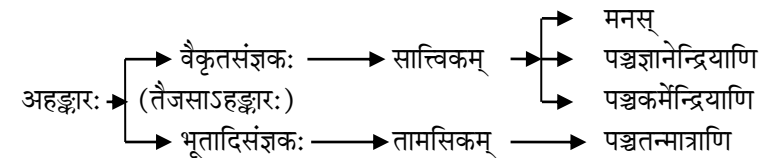
२. क० 'वाक्पाणिपादपायूपस्थान्' इति केचित् गौडपादटीकारा: पठन्ति।
ख० '...यूपस्था:' इति क्वचित् पठ्यते।

अन्वय :- चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि बुद्धीन्द्रियाणि (इति), वाक्पाणिपादपायूप-स्थानि कर्मेन्द्रियाणि (इति) आहुः।

अनुवाद :- चक्षुः, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वक् नाम वाले पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ कही जाती है।

नरहरिः

चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि – चक्षुरिन्द्रियम्, श्रोत्रेन्द्रियं, घ्राणेन्द्रियं, रसनेन्द्रियं, त्वगिन्द्रियं चेति बुद्धीन्द्रियाणि = ज्ञानेन्द्रियाणि उच्यन्ते। वाक्पाणिपादपायूपस्थानि – वागिन्द्रियं, पाणीन्द्रियं, पायु-इन्द्रियं, उपस्थेन्द्रियं चेति कर्मेन्द्रियाणि – कर्म कुर्वन्तीति कथ्यन्ते।।२६।।

गौडपादभाष्यम्

'सात्त्विक एकादशक' इत्युक्तः यो वैकृतात् सात्त्विक एकादशकः सात्त्विकादहङ्कारादुत्पद्यते, तस्य का संज्ञेत्याह – चक्षुरादीनि स्पर्शनपर्यन्तानि बुद्धीन्द्रियाण्युच्यन्ते। स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनं = त्वगिन्द्रियं, तद्वाची सिद्धः स्पर्शनशब्दोऽस्ति, तेनेदं पठ्यते – स्पर्शनकानीति। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धान् पञ्चविषयान् बुध्यन्ते अवगच्छन्तीति – पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि। वाक्पाणिपादपायूपस्थान् कर्मेन्द्रियाण्याहुः। कर्म कुर्वन्तीति कर्मेन्द्रियाणि। तत्र वाग्वदति, हस्तौ नाना व्यापारं कुरुतः, पादौ गमनाऽगमनं, पायुरुत्सर्गं करोति, उपस्थ आनन्दं प्रजोत्पत्त्या।।२६।।

भाष्यानुवादः

'सात्त्विक ग्यारह' यह वैकृत संज्ञक सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न होता है, जो यह कहा गया है, उसकी क्या संज्ञा है? इस पर कहते हैं चक्षु से लेकर स्पर्शन इन्द्रिय (त्वगिन्द्रिय) पर्यन्त ज्ञानेन्द्रियाँ कही जाती है। इसके द्वारा स्पर्श किया जाता है – इसलिए स्पर्शन त्वगिन्द्रिय है। उसका वाचक होने से स्पर्शन शब्द (त्वगिन्द्रिय के लिए) सिद्ध है। इसलिए पढ़ा जाता है स्पर्शनकानीति०। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध – ये पाँचों विषयों का बोधन करती है, उनको समझती है – अतः ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कही जाती है। कर्म करने के कारण कर्मेन्द्रियाँ हैं। उनमें से वाक् कहता है, दोनों हाथ व्यापारों का निष्पादन करते हैं, दोनों पाद गमन और आगमन करते हैं, पायु उत्सर्ग करता है तथा उपस्थ सन्तान की उत्पत्ति के द्वारा आनन्द प्रदान करता है।।२६।।

उभयात्मकमत्र मनः सङ्कल्पकमिन्द्रियञ्च साधर्म्यात्।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च।।२७।।

अन्वय :- अत्र मनः उभयात्मकं, सङ्कल्पकं, साधर्म्यात् च इन्द्रियम्। गुणपरिणामविशेषात् नानात्वं बाह्यभेदाः च।

अनुवाद :- इन इन्द्रियों के मध्य मन उभय स्वरूपवाला अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के साथ ज्ञानेन्द्रिय की तरह तथा कर्मेन्द्रियों के साथ कर्मेन्द्रिय की तरह है, सङ्कल्प करने वाला है, और (अन्य इन्द्रियों के साथ) समान धर्मवाला होने के कारण इन्द्रिय भी है। गुणों के परिणाम में विशिष्टता हो जाने से (इन्द्रियों में) अनेकता और बाह्य अर्थो में भी भेद होता है।

नरहरिः

अत्र = इन्द्रियवर्गे, मनः = अन्तःकरणम्, उभयात्मकम् = ज्ञानेन्द्रियेषु ज्ञानेन्द्रियवत्, कर्मेन्द्रियेषु कर्मेन्द्रियवदिति, सङ्कल्पकं = सङ्कल्पं करोत्ययं, साधर्म्यात् = सदृशधर्मस्य भावः, तस्मात् इन्द्रियम् – विषयान् गृह्णातीति। गुणपरिणामविशेषात् = गुणानां सत्त्वरजस्तमसां परिणामः तद्विशेषः, तस्मात् नानार्थम् = अनेकत्वं वैचित्र्यं बाह्यभेदाः च।।२७।।

गौडपादभाष्यम्

एवं बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियभेदेन दशेन्द्रियाणि व्याख्यातानि। मन एकादशकं किमात्मकं, किं स्वरूपञ्चेति? तदुच्यते – अत्र इन्द्रियवर्गे मन **उभयात्मकम्**। बुद्धीन्द्रियेषु बुद्धीन्द्रियवत्, कर्मेन्द्रियेषु कर्मेन्द्रियवत्। कस्मात्? बुद्धीन्द्रियाणां प्रवृत्तिं कल्पयति, कर्मेन्द्रियाणाञ्च, तस्मादुभयात्मकं मनः। सङ्कल्पयतीति सङ्कल्पकम्। किञ्चान्यदिन्द्रियञ्च, साधर्म्यात् = समानधर्मभावात्, सात्त्विकादहङ्कारात् बुद्धीन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि मनसा सहोत्पद्यमानानि मनसः साधर्म्यं प्रति, तस्मात् साधर्म्यान्मनोऽपीन्द्रियम्। एवमेतान्येका-दशेन्द्रियाणि सात्त्विकाद्वैकृतादहङ्कारादुत्पन्नानि। तत्र मनसः का वृत्तिरिति? सङ्कल्पो वृत्तिः। बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो वृत्तयः, कर्मेन्द्रियाणां वचनादयः।

अथैतानीन्द्रियाणि भिन्नानि भिन्नार्थग्राहकाणि – किमीश्वरेण? उत स्वभावेन कृतानि? यतः प्रधानबुद्ध्यहङ्कारा अचेतनाः पुरुषोऽप्यकर्त्तेति। अत्राह इह साङ्ख्यानां स्वभावो नाम कश्चित्कारणमस्ति। अत्रोच्यते – गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च। इमान्येकादशेन्द्रियाणि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्चानां, वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानां, सङ्कल्पश्च मनसः। एवमेते भिन्नानामेवेन्द्रियाणामर्थाः गुणपरिणामविशेषात्। गुणानां परिणामो गुणपरिणामस्तस्य विशेषादिन्द्रियाणां नानात्वं बाह्यार्थभेदाश्च। अथैतन्नानात्वं नेश्वरेण,

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

नाऽहङ्कारेण, न बुद्ध्या, न प्रधानेन, न पुरुषेण। (किन्तु) स्वभावात् कृतगुणपरिणामेनेति। गुणानामचेतनत्वान्न प्रवर्त्तते? प्रवर्त्तत एव। कथम्? वक्ष्यतीहैव –

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥

एवमचेतनाः गुणा एकादशेन्द्रियभावेन प्रवर्त्तन्ते, विशेषोऽपि तत्कृत एव, येनोच्चैः प्रदेशे चक्षुरवलोकनाय स्थितं, तथा घ्राणं, तथा श्रोत्रं, तथा जिह्वा स्वदेशे स्वार्थग्रहणाय। एवं कर्मेन्द्रियाण्यपि यथायथं स्वार्थसमर्थानि स्वदेशावस्थितानि स्वभावतो गुणपरिणामविशेषादेव न, तदर्था अपि। यत उक्तं शास्त्रान्तरे - 'गुणाः गुणेषु वर्त्तन्ते', गुणानां या वृत्तिः सा गुणविषया एवेति बाह्यार्था विज्ञेया गुणकृता एवेत्यर्थः प्रधानं यस्य कारणमिति॥२७॥

भाष्यानुवादः

इस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के भेद से दश इन्द्रियों की व्याख्या कर दी गयी। और ग्यारहवाँ मन किस स्वरूपवाला है? तब (इसके उत्तर में) कहते हैं – इस इन्द्रियवर्ग में मन उभयस्वरूपवाला है। ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञानेन्द्रियों की तरह, कर्मेन्द्रियों में कर्मेन्द्रियों की तरह। कैसे? (क्योंकि यह) ज्ञानेन्द्रियों की प्रवृत्ति की कल्पना करता है और कर्मेन्द्रियों की भी। इसलिए मन उभयात्मक है। सङ्कल्प करने वाला है, इसलिए सङ्कल्पक है। और फिर इन्द्रिय है, समान धर्म होने के कारण, सात्त्विक अहङ्कार से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ मन के साथ उत्पन्न होकर मन के साथ समानधर्मत्व के प्रति कारण होता है। इसलिए साधर्म्य के कारण मन भी इन्द्रिय है। इस प्रकार ये ग्यारह इन्द्रियाँ वैकृत संज्ञक अहङ्कार से उत्पन्न होती है। उसमें मन का व्यापार क्या है? इस पर कहते हैं – सङ्कल्प (करना) व्यापार है। ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार शब्द आदि है। और कर्मेन्द्रियों का व्यापार वचन आदि है।

इसके बाद (कहते हैं कि) इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न है, और भिन्न-भिन्न अर्थों (विषयों) को ग्रहण करने वाले हैं। (अब प्रश्न यह है कि इन्द्रियों का यह जो व्यापार है) क्या (वह) ईश्वर के द्वारा किया जाता है? अथवा इन्द्रियाँ अपने स्वभाव से प्रवृत्त होती है? क्योंकि प्रकृति, बुद्धि और अहङ्कार – ये अचेतन (जड़) है, (और चेतन) पुरुष भी अकर्त्ता है। यहाँ पर यह कहा जाता है कि साङ्ख्यों का स्वभाव नामक कोई कारण है (जिससे कि ये इन्द्रियाँ स्व-व्यापार का निष्पादन करते हैं)। अतः यहाँ पर कहते हैं – गुणपरिणाम० ये ग्यारह इन्द्रियाँ (जैसे - ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध – इन पाँच विषयों का (ग्रहण करती हैं)। कर्मेन्द्रियाँ वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग और आनन्द – इन पाँच विषयों का (ग्रहण करती है) और मन सङ्कल्प व्यापार का निष्पादन करता है। इस प्रकार ये भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के विषय गुणों के परिणाम का विशेषता होने से इन्द्रियों का व्यापार अनेक है, और बाह्यार्थ के भेद से। अब यह अनेकत्व न ईश्वर से, न अहङ्कार से, न बुद्धि से, न प्रकृति से, न पुरुष के द्वारा (किया जाता है)। परन्तु (ये अपने) स्वभाग से ही गुणपरिणाम करते हैं। (अब प्रश्न यह है कि) गुणों के अचेतनत्व होने से ये प्रवृत्त नहीं होते हैं? इस पर उत्तर देते हैं कि (ये) प्रवृत्त होते हैं। इस पर प्रश्न है कि किस प्रकार? (इस पर उत्तर देते हैं कि) प्रस्तुत साङ्ख्यकारिका में आगे कहेंगे कि –

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥

अर्थात् 'जिस प्रकार बछड़े के पोषण हेतु जड़ दुग्ध की प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार पुरुष के मोक्ष हेतु अचेतन प्रकृति की प्रवृत्ति होती है'।

इस प्रकार अचेतन गुण ग्यारह इन्द्रियों के रूप से प्रवृत्त होते हैं। विशेष भी उनके द्वारा ही किया जाता है। जिससे ऊँचे प्रदेश में चक्षु देखने के लिए रहता है, वैसे ही घ्राण, वैसे श्रोत्र, वैसे रसना अपने देश में स्वार्थ ग्रहण के लिए प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार कर्मेन्द्रियाँ भी अपने स्वभाग के अनुसार अपने देश में स्थित रहते हुए स्वार्थ ग्रहण के लिए प्रवृत्त होते हैं। क्योंकि अन्यशास्त्र में कहा गया है कि गुण गुणों में रहते हैं। गुणों का जो व्यापार, वह गुणविषय है, इस प्रकार बाह्य विषय होते हैं ऐसे जानना चाहिए। और गुणों का कार्यरूप होते हैं – इस प्रकार प्रधान जिनका कारण है॥२७॥

रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।
वचनाऽदानविहरणोत्सर्गाऽनन्दाश्च पञ्चानाम्॥२८॥

अन्वय :- रूपादिषु पञ्चानां वृत्तिः आलोचनमात्रम् इष्यते। पञ्चानां वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाः च (इष्यते)।

अनुवाद :- रूप आदि पाँचों की वृत्ति आलोचन मात्र कही जाती है। पाँच कर्मेन्द्रियों के व्यापार बोलना, लेना, विहार करना, (परिणत मलों के) उत्सर्ग और (सन्तानोत्पत्ति में) आनन्द हैं।

नरहरिः

रूपादिषु = शब्दस्पर्शादिविषयेषु पञ्चानाम् = चक्षुरादीनां पञ्चज्ञानेन्द्रियाणां वृत्तिः = व्यापारम् आलोचनमात्रम् = निर्विकल्पकमस्पष्टं ज्ञानं वा इष्यते = स्वीक्रियते। पञ्चानाम् = पञ्चकर्मेन्द्रियाणां वागादीनां = वचनाऽदानविहरणोत्सर्गाऽनन्दाः - वचनं चादानं च विहरणं

चोत्सर्गश्च आनन्दश्च, ते – वागिन्द्रियं वचनं, पाणीन्द्रियमादानं, पादेन्द्रियं विहरणं, पायु-इन्द्रियमुत्सर्गं, उपस्थेन्द्रियं चानन्दं सुतोत्पत्त्या करोतीति॥२८॥

गौडपादभाष्यम्

अथैन्द्रियस्य कस्य का वृत्तिरिति? उच्यते। मात्रशब्दो विशेषार्थोऽविशेषव्यावृत्त्यर्थो, यथा भिक्षापात्रं लभ्यते, नान्यो विशेष इति। तथा चक्षुः रूपमात्रे, न रसादिषु। एवं शेषाण्यपि। तद्यथा – चक्षुषो रूपं, जिह्वायाः रसः, घ्राणस्य गन्धः, श्रोत्रस्य शब्दः, त्वचः स्पर्शः। एवमेषां बुद्धीन्द्रियाणां वृत्तिः कथिता। कर्मेन्द्रियाणां वृत्तिः कथ्यते – **वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम्**। कर्मेन्द्रियाणामित्यर्थः। वाचो वचनं, हस्तयोरादानं, पादयोर्विहरणं, पायोर्भुक्तस्याऽहारस्य परिणतमलोत्सर्गः, उपस्थस्यानन्दः सुतोत्पत्तिविषया वृत्तिरिति सम्बन्धः॥२८॥

भाष्यानुवादः

अब इन्द्रियों का क्या व्यापार है? इस पर कहते हैं – (कारिका में प्रयुक्त) विशेष अर्थ का ग्रहण करने वाला और अविशेष अर्थ का ग्रहण न करना है। जैसे – भिक्षापात्र प्राप्त होता है अन्य विशेष नहीं है। उसी प्रकार जैसे चक्षुरिन्द्रिय केवल रूपमात्र में (व्यापार करता है), रस आदि में नहीं। इस प्रकार अवशिष्ट (इन्द्रियाँ) भी हैं। वह जैसे – चक्षु का रूप, जिह्वा का रस, घ्राण का गन्ध, श्रोत्र का शब्द, त्वक् का स्पर्श। इस प्रकार इन ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार कह दिया गया। (अब) कर्मेन्द्रियों का व्यापार कह रहे हैं – वचना० पाँच कर्मेन्द्रियों का वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग और आनन्द व्यापार है। जैसे - वागिन्द्रिय का वचन, दोनों हस्तों का आदान, दोनों पैरों का विहरण, पायु इन्द्रिय का भुक्त आहार का परिणत जो मल आदि है उसका उत्सर्ग, उपस्थ का आनन्द अर्थात् सन्तान की उत्पत्ति विषयक व्यापार है। यह सम्बन्ध है॥२८॥

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्याः वायवः पञ्च॥२९॥

अन्वय :- त्रयस्य वृत्तिः स्वालक्षण्यं (वर्त्तते)। एषा सा असामान्या भवति। प्राणाद्याः पञ्च वायवः सामान्यकरणवृत्तिः (भवति)।

अनुवाद :- तीनों अन्तःकरणों का व्यापार, उन (करणों/इन्द्रियों के) अपने लक्षण ही है। यह वृत्ति असाधारण है। प्राणादि पाँच वायु करणों की सामान्य वृत्ति है।

नरहरिः

त्रयस्य = अन्तःकरणस्य बुद्ध्यहङ्कारमनसामिति वृत्तिः = व्यापारं स्वालक्षण्यम् = स्वस्य लक्षणम् = स्वरूपं, तस्य भावः, यथा अध्यवसायो बुद्धेर्लक्षणं, एतदेव बुद्धेः व्यापारमिति। एषा वृत्तिः सा असामान्या – न सामान्या = असाधारणा भवति। प्राणाद्याः प्राणाऽपानव्यानोदानसमानाः पञ्चसङ्ख्यापरिमितो वायवः सामान्यकरणवृत्तिः सामान्यम् = साधारणं करणानां वृत्तिः व्यापारं वा भवति॥२९॥

गौडपादभाष्यम्

अधुना बुद्ध्यहङ्कारमनसामुच्यते स्वलक्षणस्वभावा = स्वालक्षण्या। अध्यवसायो बुद्धिरिति लक्षणमुक्तं, सैव बुद्धिवृत्तिः। तथाऽभिमानोऽहङ्कारः इत्यभिमानलक्षणोऽ-भिमानवृत्तिश्च। सङ्कल्पकं मनः इति लक्षणमुक्तं, तेन सङ्कल्प एव मनसो वृत्तिः। त्रयस्य = बुद्ध्यहङ्कारमनसां स्वालक्षण्या वृत्तिः असामान्या। या प्रागभिहिता। बुद्धीन्द्रियाणां च वृत्तिः साऽप्यसामान्यैवेति। इदानीं सामान्या वृत्तिराख्यायते – **सामान्यकरणवृत्तिः**। सामान्येन करणानां वृत्तिः, **प्रणाद्या वायवः पञ्च**। प्राणाऽपानसमानोदानव्याना इति पञ्च वायवः सर्वेन्द्रियाणां सामान्या वृत्तिः। यतः प्राणो नाम वायुर्मुखनासिकान्तर्गोचरः, तस्य यत् स्पन्दनं कर्म तत् त्रयोदशविधस्याऽपि सामान्या वृत्तिः, सति प्राणे यस्मात् करणानामात्मलाभ इति। प्राणोऽपि पञ्जरशकुनिवत् सर्वस्य चलनं करोतीति, प्राणनात् प्राण इत्युच्यते। तथाऽपनयनादपानः, तत्र यत् स्पन्दनं तदपि सामान्यवृत्तिरिन्द्रियस्य। तथा समानो मध्यदेशवर्त्ती, य आहारादीनां समं नयनात् समानो वायुः, तत्र यत् स्पन्दनं तत् सामान्यकरणवृत्तिः। तथा ऊर्ध्वारोहणादुत्कर्षा-दुन्नयनाद्वा उदानो नाभिदेशान्मस्तकान्तर्गोचरः, तत्रोदाने यत् स्पन्दनं तत् सर्वेन्द्रियाणां सामान्यवृत्तिः। किञ्च शरीरव्याप्तिरभ्य-न्तरविभागश्च येन क्रियतेऽसौ शरीरव्याप्याकाशवद्व्यानः। तत्र यत् स्पन्दनं तत् करणजालस्य सामान्या वृत्तिरिति। एवमेते पञ्च वायवः सामान्यकरणवृत्तिरिति व्याख्याताः। त्रयोदशविधस्यापि करणसामान्या वृत्तिरित्यर्थः॥२९॥

भाष्यानुवादः

अब बुद्धि, अहङ्कार और मन – इनके (व्यापार) कहे जा रहे हैं। स्वलक्षणस्वभाव० स्वलक्षण स्वरूप वाला स्वालक्षण्य है। स्वलक्षण का होना स्वालक्षण्य है। अध्यवसाय बुद्धि का लक्षण है ऐसा कहा गया है, वह (अध्यवसाय) ही बुद्धि का व्यापार है। उसी प्रकार अभिमान अहङ्कार का लक्षण है, और अभिमान ही व्यापार है, अर्थात् अभिमान व्यापारवाला है। सङ्कल्प० सङ्कल्प करना मन का लक्षण है, इससे सङ्कल्प ही मन का व्यापार (सिद्ध होता) है। इन तीनों बुद्धि, अहङ्कार और मन के अपना लक्षणरूप ही

व्यापार है और यह व्यापार असामान्य है। जो पहले कहा गया है ज्ञानेन्द्रियों का जो व्यापार है, वह भी असामान्य ही है। अब सामान्य वृत्ति कही जा रही है। सामान्य० सामान्यरूप से करणों की वृत्ति है। प्राणाद्या० प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान – ये पाँच वायु है, जो कि समस्त इन्द्रियों के सामान्यरूप व्यापार है। क्योंकि प्राण नामक वायु मुख और नासिका के भीतर रहता है, उस का जो स्पन्दनात्मक कर्म है, वह तेरह प्रकार के (करणों के) सामान्य वृत्ति है। (क्योंकि) प्राण के रहने पर उन तेरहों का आत्मलाभ होता है। प्राण भी पिंजरे के पक्षी के सदृश सब का सञ्चालन करता है। प्राणन करने से यह प्राण कहा जाता है। उसी प्रकार अपनयन करने से अपान है। उसमें जो स्पन्दनात्मक (कर्म) वह भी इन्द्रियों के सामान्यरूप व्यापार है। वैसे मध्यदेश में रहने वाला, (तथा वह वायु) आहार आदि की एकरसता को प्राप्त कराने से समान वायु है। उसमें जो स्पन्दन रूप कर्म है, वह सामान्यकरण वृत्ति है। तथा ऊपर की ओर आरोहण करने से, उत्कर्ष के कारण अथवा ऊपर की ओर लेने के कारण उदान वायु है, जो नाभिदेश से लेकर मस्तक तक गतिमान् है। उस उदान में जो स्पन्दनात्मक (कर्म) है, वह समस्त इन्द्रियों का सामान्य रूप व्यापार है। और फिर शरीर में जो व्याप्त और आभ्यन्तर का विभाग जिसके द्वारा किया जाता है, वह शरीरों में व्याप्त आकाश की तरह व्यान है। उसमें जो स्पन्दनात्मक कर्म, उस करणसमूह की सामान्यवृत्ति है। इस प्रकार ये पाँच वायु सामान्यकरणवृत्ति के रूप से व्याख्यात है। तेरह प्रकार के करणों के सामान्य वृत्ति हैं।।२९।।

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाऽप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः।।३०।।

अन्वय :- दृष्टे चतुष्टयस्य वृत्तिः तु युगपत् (भवति)। तस्य च क्रमशः (वृत्तिः) अपि निर्दिष्टा। तथा अदृष्टे तु त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः (भवति)।

अनुवाद :- दृष्ट विषय (अर्थात् प्रत्यक्ष भूत विषय) में (बुद्धि, अहङ्कार, मनस् और तद्विषयग्राह्य तदिन्द्रिय – इन) चारों के व्यापार एककालिक (होता) है। और इस (समुदाय का) व्यापार (भी) क्रमशः दिखाया गया है। उसी प्रकार अदृष्ट (प्रत्यक्षातिरिक्त विषय) में (बुद्धि, अहङ्कार और मन – इन) तीनों का व्यापार इन्द्रियपूर्वक ही होता है।

नरहरिः

दृष्टे = प्रत्यक्षविषये चतुष्टयस्य = बुद्ध्यहङ्कारमनांसि तथा इन्द्रियेष्वेकः एवं चतुष्टयः, तस्य तु = निश्चयेन वृत्तिः = व्यापारं, युगपत् = एकाकालमर्थं गृह्णातीति। यथा इदं रूपमिति, तस्य = चतुष्टयस्य क्रमशः = क्रमिकवृत्तिः व्यापारो वा भवति। यथा कश्चित् पथि गच्छन् दूरादेव दृष्ट्वा स्थाणुरयं पुरुषो वेति संशये सति, तत्रोपरुढं शकुनिं तल्लिङ्गं वा दृष्ट्वा मनसा सङ्कल्पयतीति, ततः तस्मिन् संशयात्मके बुद्धौ अहङ्कारोऽभिमतं कृत्वा निश्चयार्थं बुद्धौ समर्पयति। तदा बुद्धिः स्थाणुरेवेति निश्चिनोती एवं साङ्ख्याचार्यैः निर्दिष्टा = कथिता। तथापि अदृष्टे = न दृष्टः, तस्मिन् अतीतेऽनागते च विषये तु = निश्चयेन त्रयस्य बुद्ध्यहङ्कारमनसां तत्पूर्विका = इन्द्रियपूर्विका, यथा – चाक्षुषे चक्षूपूर्विका, स्पर्शे त्वक्पूर्विका, गन्धे घ्राणपूर्विका, रसे रसपूर्विका, शब्दे श्रवणपूर्विका चेति भवतीति।।३०।।

गौडपादभाष्यम्

युगपच्चतुष्टयस्य। बुद्ध्यहङ्कारमनसामेकैकेन्द्रियसम्बन्धे सति चतुष्टयं भवति। चतुष्टयस्य दृष्टे = प्रतिविषयाध्यवसाये युगपद् वृत्तिः। बुद्ध्यहङ्कारमनश्चक्षूंषि युगपदेककालं रूपं पश्यन्ति स्थाणुरयमिति। बुद्ध्यहङ्कारमनोजिह्वा युगपद्रसं गृह्णन्ति। बुद्ध्यहङ्कार-मनोघ्राणानि युगपद् गन्धं गृह्णन्ति। तथा त्वक्श्रोत्रे अपि। किञ्च **क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा**। तस्येति = चतुष्टयस्य, क्रमशश्च वृत्तिर्भवति। यथा कश्चित् पथि गच्छन् दूरादेव दृष्ट्वा स्थाणुरयं पुरुषो वेति संशये् सति, तत्रोपरूढं शकुनिं तल्लिङ्गं वा पश्यति। ततस्तस्य मनसा सङ्कल्पिते संशये व्यवच्छेदभूता बुद्धिर्भवति स्थाणुरयमिति। अतो अहङ्कारश्च निश्चयार्थः स्थाणुरेवेति। एवं बुद्ध्यहङ्कारमनश्चक्षुषां क्रमशो वृत्तिर्दृष्टा। यथा रूपे, तथा शब्दादिष्वपि बोद्धव्याः। दृष्टे = दृष्टविषये। किञ्चान्यत्? **तथाऽप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः**। अदृष्टेऽनागतेऽतीते च काले, बुद्ध्यहङ्कारमनसां रूपे चक्षुःपूर्विका त्रयस्य वृत्तिः, स्पर्शे त्वक्पूर्विका, गन्धे घ्राणपूर्विका, रसे रसनपूर्विका, शब्दे श्रवणपूर्विका बुद्ध्यहङ्कारमनसामनागते = भविष्यति कालेऽतीते च तत्पूर्विका क्रमशो वृत्तिः। वर्त्तमाने युगपत्, क्रमशश्चेति।।३०।।

भाष्यानुवादः

युगपत्० बुद्धि, अहङ्कार, मन – इन तीनों का एक-एक इन्द्रिय के साथ सम्बन्धित होकर ये चतुष्टय होते हैं। इन चारों का प्रत्यक्ष विषय में – प्रत्येक विषय के साथ अध्यवसाय में एककालिक व्यापार है। बुद्धि, अहङ्कार, मन और चक्षुरिन्द्रिय एककाल में (एकसाथ) रूप को देखते हैं (रूप का साक्षात्कार करते हैं) – यह स्थाणु है – इस प्रकार। बुद्धि, अहङ्कार, मन और घ्राणेन्द्रिय – एककाल (एकसाथ) में गन्ध को ग्रहण करते हैं। उसी प्रकार त्वक् और श्रोत्र में भी। और फिर क्रमशः० उन चारों का क्रमिक (क्रमशः) व्यापार होता है। जैसे – कोई मार्ग में जाते हुए दूर से ही देखकर, यह स्थाणु है, यह पुरुष है – इस प्रकार का संशय होने पर, उस पर आरुढ़ पक्षी अथवा किसी चिह्न को देखता है। उसके बाद उसका मन के द्वारा सङ्कल्प किया गया संशय में व्यवच्छेदभूता बुद्धि

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

होती है – यह स्थाणु है – इस प्रकार। अब अहङ्कार का अभिमत के लिए और बुद्धि का निश्चय ज्ञान के लिए व्यापार होता है, यह स्थाणु है। इस प्रकार बुद्धि, अहङ्कार, मन और चक्षुरिन्द्रिय का क्रमशः व्यापार देखा जाता है। जैसे - रूप में, उसी प्रकार शब्द आदि में भी समझना चाहिए। दृष्टे० दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्षभूत विषय में। और फिर अन्य क्या है? (तब कहते हैं) तथाऽप्य० अदृष्ट में अर्थात् भविष्यत् और अतीत कालिक विषयभूत रूप में बुद्धि, अहङ्कार, मन – इन तीनों का चक्षु:पूर्वक व्यापार होता है। स्पर्श में त्वक्पूर्वक, गन्ध में घ्राणपूर्वक, रस में रसनापूर्वक और शब्द में श्रोत्रपूर्वक। बुद्धि, अहङ्कार और मन का भविष्यत् काल में और अतीत काल में तत्पूर्वक क्रमशः व्यापार होता है। वर्त्तमान काल में तो एकसाथ और क्रमशः (इस प्रकार दोनों तरह के व्यापार) होता है॥३०॥

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराऽकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थो एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम्॥३१॥

अन्वय :- परस्परहेतुकां स्वां स्वां वृत्तिं प्रतिपद्यन्ते। (अत्र) पुरुषार्थः एव हेतुः। करणं केनचित् न कार्यते।

अनुवाद :- पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए बुद्धि आदि करण एक दूसरे के प्रति आदर को जान कर अपने-अपने विषयों को प्राप्त करने के लिए व्यापारों का निष्पादन करते हैं। (क्योंकि) करण किसी अन्य के द्वारा प्रवृत्त नहीं होता है।

नरहरि:

परस्परहेतुकां परस्परं प्रति आदरसम्भ्रमात् स्वां-स्वां स्वकीयां वृत्तिं व्यापारं प्रतिपद्यन्ते = प्राप्नुवन्ति। यत अत्र पुरुषार्थः शब्दाद्युपलब्धिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिश्च भोगापवर्गौ वा एव हेतुः कारणमिति। करणं बुद्ध्यादयः केनचिदन्येन करणेन न कार्यते = प्रवर्त्यत इत्यर्थः॥३१॥

गौडपादभाष्यम्

किञ्च **स्वां स्वामिति** वीप्सा। बुद्ध्यहङ्कारमनांसि स्वां-स्वां वृत्तिं **परस्पराकूतहेतुकाम्**, आकूतमादरसम्भ्रमः इति। प्रतिपद्यन्ते = पुरूषार्थकरणाय बुद्ध्यहङ्कारादयः, बुद्ध्यहङ्काराकूतं ज्ञात्वा स्वविषयं प्रतिपद्यते। किमर्थमिति चेत्? पुरुषार्थ एव हेतुः। पुरुषार्थः कर्त्तव्यः इत्येवमर्थ गुणानां प्रवृत्तिः। तस्मादेतानि करणानि पुरुषार्थं प्रकाशयन्ति। यद्यचेतनानीति कथं स्वयं प्रवर्त्तन्ते? **न केनचित् कार्यते करणम्**। पुरुषार्थ एवैकः कारयतीति वाक्यार्थः। न केनचिदीश्वरेण, पुरुषेण वा कार्यते = प्रबोध्यते करणम्॥३१॥

भाष्यानुवादः

और फिर स्वां-स्वां – यह विप्सा है। बुद्धि, अहङ्कार और मन – ये अपनी-अपनी वृत्ति को परस्पराकूतहेतुका कहा है। यहाँ पर आकूत, आदर या सम्भ्रम है। पुरुषार्थ को सिद्ध करने के लिए बुद्धि, अहङ्कार आदि बुद्धि और अहङ्कार (एक दूसरे) के आकूत को जानकर अपने-अपने विषय को प्राप्त करते हैं। (अगर यह प्रश्न उठता है कि) यह किसलिए? (तो कहा गया है) पुरुषार्थ ही निमित्त है। 'पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए' इसलिए गुणों की प्रवृत्ति होती है। इसलिए ये करण पुरुषार्थ को प्रकाशित करते हैं। (अब प्रश्न यह है कि) यदि (ये करण) अचेतन हैं, तो कैसे स्वयं प्रवृत्त होते हैं? अब उत्तर देते हैं कि ये करण किसी के द्वारा कार्य का निष्पादन नहीं करते हैं। पुरुषार्थ ही एक है, जो यह कराता है – यही (इसमें) तात्पर्य है। न किसी ईश्वर से अथवा पुरुष के द्वारा ये करण प्रवृत्त नहीं होते हैं॥३१॥

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम्।
कार्यञ्च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यञ्च॥३२॥

अन्वय :- करणं त्रयोदशविधं, तदाहरणधारणप्रकाशकरम्। तस्य च कार्यं दशधा – आहार्यं, धार्यं प्रकाश्यं च।

अनुवाद :- करण तेरह प्रकार के हैं। वे आहरण, धारण और प्रकाश करने वाले हैं। और उनके कार्य दश प्रकार के हैं, (वे जैसे) आहरण के योग्य, धारण के योग्य और प्रकाश के योग्य हैं।

नरहरि:

करणम् = त्रयोदशविधम्। यथा – बुद्धिः, अहङ्कारः, मनस्, श्रोत्रादीनि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, वागादीनिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि चेति। तत् = करणम्, आहरणधारण-प्रकाशकरम्, आहरणकरम्, धारणकरम्, प्रकाशकरं चेति। तत्र ज्ञानेन्द्रियाणि प्रकाशनं, कर्मेन्द्रियाणि चाहरणं धारणं च कुर्वन्तीति। तस्य = करणस्य त्रयोदशविधस्य च कार्यम् = परिणामं कर्त्तव्यं वा दशधा = दशप्रकारेण, आहार्यम् = आहर्त्तुं योग्यः, धार्यम् = धर्त्तुं योग्यः, प्रकाश्यम् = प्रकाशितुं योग्यः। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाख्यं दशविधम्। विषयाः बुद्धीन्द्रियैः प्रकाशिताः सन्तः, तान् कर्मेन्द्रियाण्याहरन्ति धारयन्ति चेति॥३२॥

गौडपादभाष्यम्

बुद्ध्यादि कतिविधं तदित्युच्यते **करणं त्रयोदशविधं बोद्धव्यम्**। महदादित्रयं, पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि वागादीनीति त्रयोदशविधं करणम्। तत् किं

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

करोतीत्येतदाह – **तदाहरणधारणप्रकाशकरम्**। तत्राऽऽहरणं, धारणं च कर्मेन्द्रियाणि कुर्वन्ति, प्रकाशं बुद्धीन्द्रियाणि। कतिविधं कार्यं तस्येति? तदुच्यते कार्यं च तस्य दशधा। तस्य = करणस्य कार्यं = कर्त्तव्यमिति। दशधा = दशप्रकारम्, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाख्यमेतद्दशविधं कार्यम्। बुद्धीन्द्रियैः प्रकाशितं कर्मेन्द्रियाण्याहरन्ति धारयन्ति चेति॥३२॥

भाष्यानुवादः

बुद्धि आदि कितने हैं, इस पर कहते हैं कि करण तेरह प्रकार के जानने चाहिए। वे महत् आदि तीन, चक्षुः आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और वागादि पाँच कर्मेन्द्रियाँ – ये तेरह प्रकार के करण हैं। वे क्या करते हैं? इसपर कहा गया है तदाह० उनमें से ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकाश करती हैं, आहरण और धारण कर्मेन्द्रियाँ करती हैं। (अब प्रश्न यह है कि) उनके कार्य कितने प्रकार के हैं? इसपर कहते हैं कि उनके दश प्रकार के कार्य हैं। जैसे – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नाम वाले (ज्ञानेन्द्रियों का) वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग और आनन्द नाम वाले (कर्मेन्द्रियों का) – इस प्रकार ये दश प्रकार के कार्य हैं। ज्ञानेन्द्रियों से प्रकाशित होकर कर्मेन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं और धारण करती हैं॥३२॥

अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्॥३३॥

अन्वय :- अन्तःकरणं त्रिविधं, त्रयस्य विषयाख्यं बाह्यं दशधा। बाह्यं साम्प्रतकालम्। आभ्यन्तरं करणं त्रिकालम् (उच्यते)।

अनुवाद :- अन्तःकरण तीन प्रकार के हैं। तीन प्रकार के (अन्तःकरण का) विषय बाह्य (रूप रसादि) दश प्रकार का है। (यह) बाह्य करण वर्त्तमान काल के विषय (को स्वीकार करते) हैं। (तथा) आभ्यन्तर करण तीनों कालों के (विषय को ग्रहण करने वाले) हैं।

नरहरिः

अन्तःकरणम् – बुद्ध्यहङ्कारमनांसि त्रिविधम् = त्रिप्रकारेण व्याख्यातम्। त्रयस्य = एतस्य अन्तःकरणस्य त्रिसमुदायस्य विषयाख्यम् = भोग्यम्। बाह्यम् = बाह्यं करणं दशधा दशप्रकारेण विभक्तम्, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यं वचनाऽदानविहरणो-त्सर्गाऽनन्दाख्यं च। बाह्यं करणं साम्प्रतकालम् = वर्त्तमानकालिकं विषयं गृह्णातीति। यथा – श्रोत्रेन्द्रियं वर्त्तमानमेव शब्दं श्रृणोति, नातीतं नानागतं चेति। एवम्। आभ्यन्तरम् = अन्तःकरणं त्रिकालम् = त्रिषु कालेषु विषयं स्वीकरोति। यथा बुद्धिः वर्त्तमानं घटं बुध्यते, अतीतमनागतं चेति॥३३॥

गौडपादभाष्यम्

किञ्च **अन्तःकरणमिति** – बुद्ध्यहङ्कारमनांसि। **त्रिविधं** महदादिभेदात्, **दशधा बाह्यञ्च**। बुद्धीन्द्रियाणि पञ्च, कर्मेन्द्रियाणि पञ्च. दशविधमेतत् करणं बाह्यम्। त्रयस्यान्तःकरणस्य विषयाख्यं = बुद्ध्यहङ्कारमनसां भोग्यम्। साम्प्रतकालं श्रोत्रं वर्त्तमानमेन शब्दं श्रृणोति, नाऽतीतं न च भविष्यन्तम्। चक्षुरपि वर्त्तमानं रूपं पश्यति, नाऽतीतं, नाऽनागतम्। त्वग्वर्त्तमानं स्पर्शम्, जिह्वा वर्त्तमानं रसं, नासिका वर्त्तमानं गन्धं नाऽतीताऽनागतञ्चेति। एवं कर्मेन्द्रियाणि। वाग्वर्त्तमानं शब्दमुच्चारयति, नाऽतीतं नाऽनागतम्। पाणी वर्त्तमानं घटमाददाते, नातीतमनागतञ्च। पादौ वर्त्तमानं पन्थानं विहरतो, नाऽतीतं, नाप्यनागतम्। पायूपस्थौ च वर्त्तमानावुत्सर्गानन्दौ कुरुतः, नाऽतीतं, नाऽनागतौ। एवं बाह्यं करणं साम्प्रतकालमुक्तम्। **त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्**। बुद्ध्यहङ्कारमनांसि त्रिकालविषयाणि। बुद्धिः वर्त्तमानं घटं बुध्यते, अतीतमनागतञ्चेति। अहङ्कारो वर्त्तमानेऽभिमानं करोत्यतीतेऽ-नागते च। तथा मनो वर्त्तमाने सङ्कल्पं कुरुतेऽतीतेऽनागते च। एवं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणमिति॥३३॥

भाष्यानुवादः

बुद्धि, अहङ्कार और मन – ये महदादि तीन अन्तःकरण है। बाह्य करण दश प्रकार के हैं। जैसे – पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ – इस प्रकार ये दश प्रकार के बाह्य करण होते हैं। बुद्धि, अहङ्कार, मन – इन तीनों अन्तःकरणों के विषय अर्थात् भोग्य वर्त्तमानकालिक हैं। जैसे – श्रोत्रेन्द्रिय वर्त्तमानकालिक शब्द का श्रौत्रप्रत्यक्ष कराता है अर्थात् श्रवण करता है, न अतीतकालिक और न भविष्यत्कालिक। चक्षुरिन्द्रिय भी वर्त्तमानकालिक रूप को देखता है अर्थात् चाक्षुष प्रत्यक्ष कराता है, न अतीतकालिक और न भविष्यत्कालिक। त्वगिन्द्रिय वर्त्तमानकालिक स्पर्श को, रसनेन्द्रिय वर्त्तमानकालिक रस को, घ्राणेन्द्रिय वर्त्तमानकालिक गन्ध को (ग्रहण करता है), न अतीतकालिक और न अनागतकालिक। इस प्रकार कर्मेन्द्रियाँ हैं। वागिन्द्रिय वर्त्तमानकालिक शब्द का उच्चारण करता है, न अतीतकालिक और न भविष्यत्कालिक। पाणीन्द्रिय वर्त्तमान कालिक घट का ग्रहण करता है, न अतीतकालिक और न भविष्यत्कालिक। पादेन्द्रिय वर्त्तमान कालिक मार्ग में विहार करता है, न अतीतकालिक और न अनागतकालिक। पायु और उपस्थ इन्द्रिय वर्त्तमानकालिक उत्सर्ग और आनन्द का निष्पादन करता है, न अतीतकालिक और न भविष्यत्कालिक। इस प्रकार बाह्य करण वर्त्तमानकालिक कहा गया है। आभ्यन्तरकरण त्रैकालिक है। अर्थात् बुद्धि, अहङ्कार और मन – ये तीनों कालों के विषयों को ग्रहण करते हैं। जैसे – बुद्धि वर्त्तमानकालिक घट का अवबोधन करती है, और भूतकालिक तथा

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

अनागतकालिक (घट का भी ग्राहिका होती है)। अहङ्कार भी वर्त्तमान विषय में अभिमत करता है, तथा अतीत और अनागत में भी। उसी प्रकार मन वर्त्तमान विषय में सङ्कल्प करता है, तथा अतीत और अनागत विषय में (भी सङ्कल्प करता है)। इस प्रकार से आभ्यन्तर (अन्त:) करण त्रैकालिक है॥३३॥
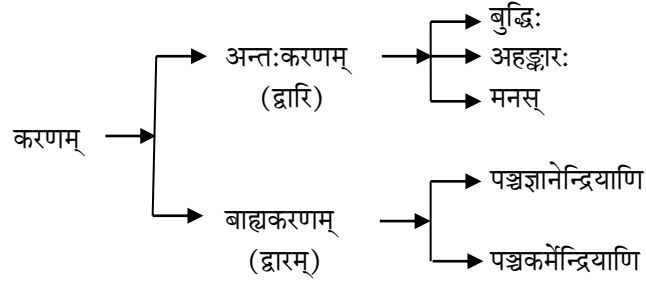
चित्रम् :-

बुद्धिन्द्रियाणि तेषां पञ्च विशेषाऽविशेषविषयाणि।
वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पञ्चविषयाणि॥३४॥

अन्वय :- तेषां पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि विशेषाऽविशेषविषयाणि (भवन्ति)। (तेषां) वाग् शब्दविषया भवति, तु शेषाणि पञ्चविषयाणि (भवन्ति)।

अनुवाद :- उनमें से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ विशेष और अविशेष विषय वाली होती हैं। इनमें से वाग् (इन्द्रिय) केवल शब्दविषया होती है, शेष (इन्द्रियाँ) तो पाँचों विषयों वाली होती हैं।

नरहरि:

तेषाम् = इन्द्रियाणां 'यतश्च निर्धारण इति षष्ठी', पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि विशेषाऽविशेषविषयाणि सविशेषं निर्विशेषं च विषयं गृह्णान्तीति, विशेषास्तावत् स्थूला: शब्दादय: शान्तघोरमूढा: पृथिव्यादिरूपा:, अविशेषास्तन्मात्राणि सूक्ष्मा: शब्दादय:। वाक् – वागिन्द्रियं कर्मेन्द्रियाणां मध्ये शब्दविषया: - शब्दं स्वीकरोति, शेषाणि = वाग्व्यतिरिक्तानि पाणिपादादीनीन्द्रियाणि पञ्चविषयाणि शब्दादीन् विषयान् स्वीकुर्वन्तीत्यर्थ:॥३४॥

गौडपादभाष्यम्

इदानीमिन्द्रियाणि कानि सविशेषविषयं गृह्णन्ति, कानि निर्विशेषमिति? तदुच्यते **बुद्धीन्द्रियाणि तेषां** सविशेषं निर्विशेषञ्च विषयं गृह्णन्ति। सविशेषविषयं मानुषाणां, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धान् सुखदु:खमोहविषययुक्तान् बुद्धीन्द्रियाणि प्रकाशयन्ति। देवानां निर्विशेषान् विषयान् प्रकाशयन्ति। तथा कर्मेन्द्रियाणां मध्ये वाग्भवति शब्दविषया। देवानां, मनुष्याणाञ्च वाग्वदति, श्लोकादीनुच्चारयति, तस्माद्देवानां, मानुषाणाञ्च वागिन्द्रियं तुल्यम्। शेषाण्यपि वाग्व्यतिरिक्तानि पाणिपादपायूपस्थसंज्ञितानि पञ्चविषयाणि = पञ्च विषया: शब्दादयो येषां तानि पञ्चविषयाणि। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा: पाणौ सन्ति। पञ्चशब्दादिलक्षणायां भुवि पादो विहरति। पाय्विन्द्रियं पञ्चक्लृप्तमुत्सर्गं करोति। तथोपस्थेन्द्रियं पञ्चलक्षणं शुक्रमानन्दयति॥३४॥

भाष्यानुवाद:

ये इन्द्रियाँ किन सविशेष विषयों को ग्रहण करती हैं, और किन निर्विशेष विषयों को ग्रहण करती हैं? तब उस पर कहते हैं कि बुद्धि इन्द्रियाँ उनकी सविशेष और निर्विशेष विषयों को ग्रहण करती हैं। सविशेषविषय जैसे मनुष्यों की ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा सुख, दु:ख, मोह आदि विषयों से युक्त (विषयों का) प्रकाशन करती हैं, तथा देवताओं के निर्विशेष विषयों को प्रकाश करती हैं। उसी प्रकार कर्मेन्द्रियों में वागिन्द्रिय शब्द विषय को ग्रहण करती है। वागिन्द्रिय देवताओं के और मनुष्यों के श्लोकादि का उच्चारण करती है, इसलिए देवताओं और मनुष्यों की वागिन्द्रिय समान है। शेष भी वागिन्द्रिय व्यतिरिक्त पाणि, पाद, पायु, उपस्थ संज्ञक इन्द्रियाँ पाँच विषयों वाली होती हैं। शब्द आदि पाँच विषय होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाणीन्द्रिय में रहते हैं। पञ्चविषयोपेत पादेन्द्रिय भूमि में विहार करती है। वायु इन्द्रिय पञ्चविषयसमुदित उत्सर्ग करती है। उसी प्रकार उपस्थेन्द्रिय पाँचलक्षणों से युक्त शुक्र आनन्द प्रदान करती है॥३४॥

सान्त:करणा बुद्धि: सर्वं विषयमवगाहते यस्मात्।
तस्मात्त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि॥३५॥

अन्वय :- यस्माद् सान्त:करणा बुद्धि: सर्वं विषयम् अवगाहते, तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि, शेषाणि द्वाराणि (सन्ति)।

अनुवाद :- चूँकि अन्त:करण (अहङ्कार और मन) के साथ बुद्धि समस्त विषयों को ग्रहण करती है, इसलिए तीन प्रकार के (अन्त:) करण द्वारि, (तथा) शेष (बाह्य करण) द्वार है।

नरहरि:

यस्मात् = यस्मात् कारणात् सान्त:करणा = अन्त:करणाभ्यां सह (मनोऽहङ्काराभ्यां) बुद्धि: सर्वं विषयम् = भोग्यमवगाहते = गृह्णाति। तदाकाराकारितं वा भवति। तस्मात् त्रिविधा

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

त्रिधा विभक्तं करणमाभ्यन्तरं द्वारि = प्रधानं, शेषाणि = बाह्यकरणानि अन्तरिन्द्रियव्यतिरिक्तानि द्वाराणि = अप्रधानानि सन्ति।।३५।।

गौडपादभाष्यम्

सान्तःकरणा बुद्धिः। अहङ्कारमनःसहितेत्यर्थः। यस्मात् सर्वं विषयमवगाहते = गृह्णाति। त्रिष्वपि कालेषु शब्दादीन् गृह्णाति। तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि, द्वाराणि शेषाणि। करणानीति वाक्यशेषः।।३५।।

भाष्यानुवादः

अन्तःकरण के साथ बुद्धि, इससे तात्पर्य यह है कि बुद्धि अहङ्कार और मन के साथ। क्योंकि समस्त विषयों को ग्रहण करती है। तीनों ही कालों में शब्दादि विषयों को ग्रहण करती है। इसलिए तीन अन्तःकरण द्वारि, शेष (करण) द्वार स्वरूपक है।।३५।।

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणाः गुणविशेषाः।
कृत्स्नं पुरुषस्याऽर्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति।।३६।।

अन्वय :- एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणाः गुणविशेषाः पुरुषस्य कृत्स्नम् अर्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति।

अनुवाद :- ये प्रदीप के सदृश परस्पर विलक्षण गुणविशेष, पुरुष के समस्त विषयों को प्रकाश करते हुए बुद्धि को प्रदान कर देते हैं।

नरहरिः

एते गुणविशेषाः प्रदीपकल्पाः = प्रदीपसदृशाः परस्परविलक्षणाः = परस्परं विलक्षणं विशिष्टलक्षणोपेतं, यथा प्रदीपे वर्त्तिसूत्रधारणलक्षणोपेतं, तैलमाहरणोपेतं, अग्निः ज्वलनलक्षणोपेतम्। यथा वा सत्त्वं प्रकाशलक्षणोपेतं, रजो प्रवृत्तिलक्षणो-पेतं, तमो नियमनलक्षणोपेतं गुणविशेषाः पुरुषस्य = ज्ञतत्त्वस्य, कृत्स्नं = सकलम्, अर्थं = विषयं भोग्यं प्रकाश्य = प्रकाशनं कृत्वा बुद्धौ = बुद्धितत्त्वं प्रति प्रयच्छन्ति = प्रकर्षेण यच्छन्ति बुद्धिस्थं कुर्वन्तीत्यर्थः।।३६।।

गौडपादभाष्यम्

किञ्चान्यत् यानि करणान्युक्तानि – **एते** गुणविशेषाः। किं विशिष्टाः? **प्रदीपकल्पाः** प्रदीपवद्विषयप्रकाशकाः। परस्परविलक्षणाः = असदृशाः, भिन्नविषया इत्यर्थः। गुणविशेषेति। गुणविषयाः = गुणेभ्यो जाताः। कृत्स्नं पुरुषस्याऽर्थं बुद्धीन्द्रियाणि, कर्मेन्द्रियाण्यहङ्कारो मनश्चैतानि स्वं स्वमर्थं पुरुषस्य प्रकाश्य, बुद्धौ प्रयच्छन्ति = बुद्धिस्थं कुर्वन्तीत्यर्थः। यतो बुद्धिस्थं सर्वं विषयसुखादिकं पुरुष उपलभ्यते।।३६।।

भाष्यानुवादः

ये जो करण कहे गये हैं, वे गुणविशेष हैं। किस विशिष्ट गुण से युक्त है यह जिज्ञासा होने पर (उत्तर दिया जाता है कि) दीपक के सदृश (ये करण) विषयों को प्रकाशित करते हैं। गुणों से उत्पन्न यह गुणविशेष का तात्पर्य है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, अहङ्कार, मन – ये सब अपने-अपने विषय को प्रकाशित करते हुए पुरुष के लिए समस्त विषयों को बुद्धि में अर्पण कर देते हैं। क्योंकि बुद्धि में स्थित समस्त सुख आदि विषय पुरुष में उपलब्ध होता है।।३६।।

सर्वं प्रत्यपुभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्।।३७।।

अन्वय :- यस्मात् बुद्धिः पुरुषस्य सर्वं प्रत्युपभोगं साधयति, पुनः सा एव च सूक्ष्मं प्रधानपुरुषान्तरं विशिनष्टि।

अनुवाद :- जिस कारण बुद्धि पुरुष के प्रति समस्त उपभोगों की सिद्धि करती है, और फिर वह ही प्रधान और पुरुष के जो सूक्ष्म अन्तर है, उसको प्रतिपादन करती है।

नरहरिः

यस्मात् कारणात् बुद्धिः = महत्, पुरुषस्य चेतनस्य सर्वम् = सम्पूर्णं प्रत्युपभोगम् उपभोगं प्रति साधयति = सिद्धिं करोति। पुनः सा = बुद्धिः एवं सूक्ष्मं प्रधानपुरुषान्तरम् = प्रधानपुरुषयोरन्तरम् = पृथग्बुद्धिं विशिनष्टि = विशेषेण उपदिशति। यथा इयं बुद्धिः, अयमहङ्कारः, एतानि एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि, पञ्चमहाभूतानि, इयमन्या प्रकृतिः, अयमन्यः पुरुष इति।।३७।।

गौडपादभाष्यम्

इदञ्चान्यत् – सर्वेन्द्रियगतं त्रिष्वपि कालेषु, **सर्वं प्रत्युपभोगम्** = उपभोगं प्रति, देवमनुष्यतिर्यक्षु बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियद्वारेण सान्तःकरणा बुद्धिः साधयति = सम्पादयति यस्मात् तस्मात् सैव च विशिनष्टि = प्रधानपुरुषयोर्विषयविभागं करोति, प्रधानपुरुषान्तरं नानात्वमित्यर्थः। **सूक्ष्ममिति**, अनधिकृततपश्चरणैरप्राप्यम्। इयं प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था, इयं बुद्धिः, अयमहङ्कारः, एतानि पञ्च तन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानि, अयमन्यः पुरुषः एभ्यो व्यतिरिक्तं इत्येवं बोधयति बुद्धिः, यस्याऽवापादपवर्गो भवति।।३७।।

भाष्यानुवादः

और यह भी है कि सर्वे० समस्त इन्द्रियों में स्थित, तीनों कालों में होने वाले समस्त उपभोगों को देव, मनुष्य, तिर्यक् आदि सभी की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों पूर्वक अन्तःकरण सहित बुद्धि ही सम्पादन करती है। इसलिए वही प्रकृति और पुरुष – इन दोनों के विषय का विभाग करती है, यही प्रकृति और पुरुष का अन्तर अर्थात् इनका वैचित्र्य है। यह प्रकृति सत्त्व, रजस् और तमस् – इन तीनों गुणों की साम्यावस्था है, यह बुद्धि है, यह अहङ्कार है, ये पाँच तन्मात्राएँ हैं, ये ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, ये पाँच महाभूत हैं और यह पुरुष इनसे व्यतिरिक्त अन्य (भिन्न) है – इस प्रकार का अवबोध बुद्धि करती है, जिस की प्राप्ति से अपवर्ग होता है॥३७॥

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः।
एते स्मृताः विशेषाः शान्ताः घोराश्च मूढाश्च॥३८॥

अन्वय :- तन्मात्राणि अविशेषाः, तेभ्यः पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि (जायन्ते), एते च विशेषाः स्मृताः - शान्ताः, घोराः मूढाः च (सन्ति)।

अनुवाद :- तन्मात्राएँ अविशेष (संज्ञा वाले होते) हैं, उन पाँचों (तन्मात्राओं) से पाँच महाभूत (उत्पन्न होते) हैं। ये (महाभूत) विशेष स्मृत हैं, जो कि शान्त, घोर और मूढ (वृत्ति वाले) हैं।

नरहरिः

तन्मात्राणि = शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यानि अविशेषाः = विशेषशून्यत्वरूपाः तेभ्यः पञ्चभ्यः तन्मात्रेभ्यः पञ्चमहाभूतानि = पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि उत्पद्यन्ते। यथा शब्दतन्मात्रादाकाशम्, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, रूपतन्मात्रात्तेजः, रसतन्मात्रादापः, गन्धतन्मात्रात् पृथिवीति। एतानि महाभूतानि विशेषाः = विशिष्टाः स्मृताः = कथिताः। एते विशेषाः शान्ताः = सुखलक्षणाः, घोराः = दुःखलक्षणाः, मूढाः = मोहजनका इत्यर्थः॥३८॥

गौडपादभाष्यम्

पूर्वमुक्तं विशेषाऽविशेषविषयाणि। तत् के विषयास्तान् दर्शयति। यानि पञ्च तन्मात्राण्यहङ्कारादुत्पद्यन्ते ते शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रम् – एतान्यविशेषा उच्यन्ते। देवानामेते सुखलक्षणा विषया दुःखमोहरहिताः। तेभ्यः पञ्चभ्यः तन्मात्रेभ्यः पञ्च महाभूतानि = पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसंज्ञानि यान्युत्पद्यन्ते एते स्मृताः विशेषाः। गन्धतन्मात्रात् पृथिवी, रसतन्मात्रादापः, रूपतन्मात्रात्तेजः, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, शब्दतन्मात्रादाकाशमित्येवमुत्पन्नान्येतानि महाभूतानि, एते विशेषाः = मानुषाणां विषयाः, शान्ताः = सुखलक्षणाः, घोराः = दुःखलक्षणाः, मूढाः = मोहजनकाः। यथा आकाशं कस्यचिदनवकाशादन्तर्गृहादेर्निर्गतस्य सुखात्मकं शान्तं भवति। तदेव शीतोष्णवातवर्षाभिभूतस्य दुःखात्मकं घोरं भवति। तदेव पन्थानं गच्छतो वनमार्गद् भ्रष्टस्य दिङ्मोहान्मूढं भवति। एवं वायुर्घर्मार्त्तस्य शान्तो भवति, शीतार्त्तस्य घोरो, धूलिशर्कराविमिश्रो गतिमान् मूढ इति। एवं तेजःप्रभृतिषु द्रष्टव्यम्॥३८॥

भाष्यानुवादः

पहले कहा गया है – ये विशेष और अविशेष विषय वाले होते हैं। तब वे विषय कौन होते हैं? उनको दिखाते हैं। जो पाँच तन्मात्राएँ अहङ्कार से उत्पन्न होती हैं, वे जैसे – शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र हैं। ये अविशेष (विषय) कहे जाते हैं। देवताओं के ये (विषय) दुःख और मोह से रहित सुखलक्षण वाले होते हैं। उन पाँच तन्मात्राओं से जो पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं, जैसे – पृथिवी, जल, तेजस्, वायु और आकाश संज्ञावाले – वे विशेष (विषय) कहलाते हैं। गन्धतन्मात्र से पृथिवी, रसतन्मात्र से जल, रूपतन्मात्र से तेजस्, स्पर्शतन्मात्र से वायु और शब्दतन्मात्र से आकाश - इस प्रकार ये महाभूत उत्पन्न होते हैं। ये विशेष मनुष्यों का विषय होते हैं। और ये शान्ता • सुखलक्षणक, घोरा • दुःखलक्षणक, मूढा • मोह को उत्पन्न कराने वाले हैं। जैसे – आकाश जो कि अनवकाश • शून्य स्थान का नाम है, घर के भीतर से (बाहर) निकलते हुए व्यक्ति के लिए शान्ता (वृत्ति) सुखलक्षणक है, वही शीत, उष्ण, वायु और वर्षा से अभिभूत व्यक्ति के लिए दुःख स्वरूपवाला अर्थात् घोरा (वृत्ति) होता है। तथा वह ही मार्ग से जाते हुए वनमार्ग से भ्रष्ट होने पर व्यक्ति के लिए दिङ्मोह के कारण मूढा वृत्तिवाला होता है। इस प्रकार वायु, धूप से सताये व्यक्ति के लिए शान्त होता है, शीतार्त्त के लिए घोर और धूल तथा शर्करा आदि से मिश्रित (वात्या) मूढ होता है। इस प्रकार तेजस् प्रभृति में देखना चाहिए॥३८॥

सूक्ष्माः मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियताः मातापितृजाः निवर्त्तन्ते॥३९॥

अन्वय :- विशेषाः, सूक्ष्मा मातापितृजाः प्रभूतैः सह त्रिधा स्युः, तेषां सूक्ष्माः नियताः, मातापितृजाः निवर्त्तन्ते।

अनुवाद :- ये विशेष (संज्ञा वाले, जैसे) सूक्ष्म, माता और पिता से उत्पन्न तथा महाभूतों के साथ तीन प्रकार के होते हैं। इनमें से सूक्ष्म नियत है और माता तथा पिता से उत्पन्न (शरीर पाँच भूतों के साथ) निवृत्त हो जाते हैं।

नरहरिः

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

विशेषाः = विशेषसंज्ञकाः, सूक्ष्माः = तन्मात्राणि, मातापितृजाः = स्थूलशरीरोपचायकाः प्रभूतैः = महाभूतैः सह त्रिधा = त्रिप्रकारेण तन्मात्रकं, षाट्कौशिकं, पाञ्चभौतिकं स्युः = भवन्तीत्यर्थः। तेषाम् = एतेषां त्रयाणां मध्ये सूक्ष्माः = तन्मात्रसंज्ञकाः नियताः = नित्याः। एतन्नियतं सूक्ष्मशरीरं संसरति, यावत् ज्ञानं नोत्पद्यते। मातापितृजाः महाभूतैः सह, तत् सूक्ष्मशरीरं परित्यज्येहैव प्राणत्यागवेलायां मातापितृजाः निवृत्ताः भवन्ति। मरणकाले मातापितृजाः शरीरमिहैव निवृत्त्य यथातत्त्वं पृथिव्यादिषु प्रलयं प्राप्नुवन्ति॥३९॥

गौडपादभाष्यम्

अथाऽन्ये विशेषाः सूक्ष्माः = तन्मात्राणि, यत्संगृहीतं तन्मात्रकं सूक्ष्मशरीरं महदादिलिङ्गं सदा तिष्ठति, संसरति च ते सूक्ष्माः। तथा मातापितृजाः = स्थूलशरीरोपचायकाः, ऋतुकाले मातापितृसंयोगे शोणितशुक्रमिश्रीभावेनोदरान्तः सूक्ष्मशरीरस्यो-पचयं कुर्वन्ति। तत् सूक्ष्मशरीरं पुनर्मातुरशितपीतनानाविधरसेन नाभिनिबन्धेनाऽऽप्यायते, तथाप्यारब्धं शरीरं सूक्ष्मैर्मातापितृजैश्च सह महाभूतैस्त्रिधा विशेषैः, पृष्ठोदरजङ्घाकट्युरशिरःप्रभृति षाट्कौशिकं, पाञ्चभौतिकं रुधिरमांसस्नायु-शुक्रास्थिमज्जासम्भृतम्, आकाशोऽवकाशदानाद्, वायुर्वर्द्धनात्, तेजः पाकाद्, आपः संग्रहात्, पृथिवी धारणात्, समस्तावयवोपेतं मातुरुदराद् बहिर्भवति। एवमेते **त्रिधा विशेषाः स्युः**। अत्राह – के नित्याः? के वाऽनित्याः? **सूक्ष्मास्तेषां नियताः**। सूक्ष्माः = तन्मात्रसंज्ञकास्तेषां मध्ये नियताः = नित्याः, तैरारब्धशरीरमधर्मवशात् पशुमृगपक्षि-सरीसृपस्थावरजातिषु संसरति, धर्मवशादि-न्द्रलोकेषु। एवमेतन्नियतं सूक्ष्मशरीरं संसरति, न यावज्ज्ञानमुत्पद्यते। उत्पन्ने ज्ञाने विद्वान् शरीरं त्यक्त्वा मोक्षं गच्छति। तस्मादेते विशेषाः सूक्ष्माः नित्या इति। **मातापितृजाः निवर्त्तन्ते**। तत् सूक्ष्मशरीरं परित्यजेहैव प्राणत्यागवेलायां मातापितृजा निवर्त्तन्ते। मरणकाले मातापितृजं शरीरमिहैव निवृत्त्य भूम्यादिषु प्रलीयते, यथातत्त्वम्॥३९॥

भाष्यानुवादः

अब अन्य विशेष – सूक्ष्म है। जैसे तन्मात्राएँ। जो संगृहीत तन्मात्रक (महदादि लिङ्गवाला) सूक्ष्मशरीर सदा रहता है और संसरण करता है, वे सूक्ष्म कहलाते हैं। मातापितृजा स्थूलशरीर के उपचायक, ऋतुकाल में माता और पिता के संयोग से रक्त तथा शुक्र के मिश्रीभाव से उदर के भीतर सूक्ष्म शरीरा का उपचय करते हैं। वह सूक्ष्मशरीर फिर माता के खाये-पीये नाना प्रकार के रसों से नाभि से बन्धित होकर आप्यायित होता है। तथापि आरब्ध जो शरीर है वह सूक्ष्म माता और पिता से उत्पन्न होने वाले महाभूतों के साथ तीन प्रकार के विशेष से युक्त है। पृष्ठ, उदर, जंघा, कटि, ऊर, शिर प्रभृति ६ कोश वाला ; रक्त, मांस, स्नायु, शुक्र, अस्ति तथा मज्जा से युक्त पाँच भौतिक, जैसे अवकाश देने से आकाश, वर्द्धन होने से वायु, पाक होने से तेजस्, संगृहीत होने से जल, धारण करने से पृथिवी – इस प्रकार समस्त अवयवों से युक्त होकर माता के उदर से बाह्य देश को आता है। इस प्रकार तीन विशेष होते हैं। अब यहाँ पर कहा गया – कौन नित्य है? अथवा कौन अनित्य है? सूक्ष्मा० तन्मात्र संज्ञावाले सूक्ष्म उनके मध्य नित्य है। उनसे आरब्ध शरीर अधर्म के कारण पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप, स्थावर आदि जाति में संसरण करता है। और धर्म के कारण इन्द्र आदि लोकों में (संसरण करता) है। इस प्रकार यह नियत रूप से सूक्ष्मशरीर संसरण करता है, जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। ज्ञान के उत्पन्न होने पर विद्वान् शरीर को छोड़कर मोक्ष को प्राप्त कर जाता है, इसलिए ये विशेष सूक्ष्म नित्य है। माता० इस संसार में वह सूक्ष्मशरीर को छोड़कर प्राणत्याग की वेला में माता और पिता से उत्पन्न विशेष से निवृत्त हो जाते हैं। मृत्यु के समय में माता और पिता से (प्राप्त) शरीर यहीं पर ही निवृत्त होकर अपने तत्त्व के अनुसार पृथिवी आदि में लीन हो जाते हैं॥३९॥

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्॥४०॥

अन्वय :- पूर्वोत्पन्नम् असक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तं निरुपभोगं भावैः अधिवासितं (सत्) लिङ्गं संसरति।

अनुवाद :- यह सूक्ष्म शरीर सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ, असंलिप्त, (ज्ञान उत्पन्न होने तक) नित्य, महत्तत्त्व से लेकर सूक्ष्मतन्मात्र तक उपभोगों से रहित, (धर्माधर्मादि) भावों से उपरञ्जित होकर संसरण करता है।

नरहरिः

लिङ्गम् = सूक्ष्मशरीरं पूर्वोत्पन्नम् = यदाऽनुत्पन्नाः लोका आसन् तदा प्रधानादिसर्गे सूक्ष्मशरीरमुत्पन्नं, देवमनुष्यतिर्य-ग्स्थानेषु, नियतम् = नित्यम्, यावत् ज्ञानं नोत्पद्यते तावदिदं संसरति। महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् – महान् = बुद्धिः आदौ यस्य तत् महदादिसूक्ष्मं तन्मात्रं यावत् बुद्ध्यहङ्कारमनांसि पञ्चतन्मात्राणि चेति, सूक्ष्माः निरुपभोगम् = उपभोगरहितं सत् भावैः = धर्माऽधर्मादिनिमित्तैः ऊर्ध्वगमनादिनैमित्तिकैः सह अधिवासितम् = उपरञ्चितं लिङ्गम् = लययुक्तं प्रलयकाले महदादिसूक्ष्मपर्यन्तं करणोपेतं प्रधाने लीयते। अतः लिङ्गमिदं सूक्ष्मशरीरं संसरति = संसरणं करोतीत्यर्थः॥४०॥

गौडपादभाष्यम्

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

सूक्ष्मञ्च कथं संसरति? तदाह – यदा लोका अनुत्पन्नाः प्रधानादिसर्गे तदा सूक्ष्मशरीरमुत्पन्नमिति। किञ्चान्यत् – असक्तं = न संयुक्तं, तिर्यग्योनिदेवमानुषस्थानेषु। सूक्ष्मत्वात्, कुत्रचिदसक्तं, पर्वतादिष्वप्रतिहतप्रसरं संसरति = गच्छति। **नियतम्।** यावन्न ज्ञानमुत्पद्यते तावत् संसरति। तच्च **महदादि सूक्ष्मपर्यन्तम्।** महानादौ यस्य तत् महदादि = बुद्धिरहङ्कारो, मन इति। पञ्चतन्मात्राणि (सूक्ष्माः), सूक्ष्मपर्यन्तं = तन्मात्रपर्यन्तं संसरति शूलग्रहपिपीलिकावत् त्रीनपि लोकान्। **निरुपभोगं** = भोगरहितम्। तत् सूक्ष्मशरीरं मातापितृजेन बाह्येनोपचयेन क्रियाधर्मग्रहणाद्भोगेषु समर्थं भवतीत्यर्थः। भावैरधिवसितम्। पुरस्ताद् भावान् = धर्मादीन् वक्ष्यामः, तैरधिवासितम् = उपरञ्जितम्, **लिङ्गमिति**। प्रलयकाले महदादि सूक्ष्मपर्यन्तं करणोपेतं प्रधाने लीयते, असंसरणयुक्तं सत् आसर्गकालमत्र वर्त्तते प्रकृतिमोहबन्धनबद्धं सत् संसरणादिक्रियास्वसमर्थमिति। पुनः सर्गकाले संसरति, तस्माल्लिङ्गं सूक्ष्मम्।।४०।।

भाष्यानुवादः

और सूक्ष्म (शरीर) का संसरण कैसे होता है? तब इस पर कहते हैं – जब लोक उत्पन्न नहीं हुए थे तब प्रधानादि सर्ग में सूक्ष्मशरीर उत्पन्न हुआ था। और फिर क्या? असक्त अर्थात् संयुक्त न होना, तिर्यग्योनि, देवता तथा मनुष्य आदि स्थानों में (संयुक्त न होना)। सूक्ष्म होने के कारण पर्वत आदि में अप्रतिबन्धित गतिवाला होकर संसरण करता है। नियत० जब तक ज्ञान (विवेक) उत्पन्न नहीं होता है तब तक संसरण करता है। और वह महत् से लेकर सूक्ष्मतक अर्थात् बुद्धि, अहङ्कार, मन और पाँच तन्मात्राएँ हैं। सूक्ष्मपर्यन्त अर्थात् तन्मात्रपर्यन्त शूल ग्रह पिपीलिका के सदृश तीनों लोकों में संसरण करता है, निरुप० भोग से रहित होकर। वह सूक्ष्मशरीर माता और पिता से उत्पन्न बाह्य उपचय के द्वारा क्रिया तथा धर्म के ग्रहण करने से भोग में समर्थ होना है, यही अर्थ है। भावै० आगे धर्म आदि भावों को कहेंगे, उनसे उपरञ्जित होकर (संसरण करता है)। प्रलय के समय में महत् से लेकर तन्मात्र पर्यन्त समस्त प्रधान में लीन हो जाते हैं। संसरण के अभाव से युक्त होकर सर्गकाल तक उसमें रहता है। प्रकृतिमोह के बन्धन से बन्धकर संसरण आदि क्रियाओं में समर्थ होता है। पुनः सर्ग के समय में संसरण करता है, इसलिए लिङ्ग सूक्ष्म है।।४०।।

चित्रं यथाऽऽश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथा च्छाया।
तद्वद्विनाऽविशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्।।४१।।

अन्वय :- चित्रं यथा आश्रयम् ऋते न तिष्ठति, यथा च्छाया स्थाण्वादिभ्यः विना (न तिष्ठति), तद्वत् अविशेषैः विना निराश्रयं लिङ्गं (न तिष्ठति)।

अनुवाद :- जैसे चित्र आश्रय के बिना नहीं रहता है, जैसे छाया स्थाणु आदि के बिना (नहीं रहती), उसी प्रकार अविशेषों के बिना आश्रयरहित होकर सूक्ष्मशरीर नहीं रहता है।

नरहरिः

चित्रं यथा आश्रयं = कुड्याद्याश्रयमृते = विना न तिष्ठति, यथा वा च्छाया स्थाण्वादिभ्यो विना न तिष्ठति, यथा वा शैत्यं विनाऽपो न भवति, शैत्यं वाऽद्भिर्विना न तिष्ठति, तद्वत् = तत्सदृशमविशेषैः - विशेषाः = तन्मात्राणि, तेभ्यः रहिताः अविशेषाः भूतानि = स्थूलदेहाः, तैः विना निराश्रयम् = आश्रयरहितं सत् लिङ्गम् = सूक्ष्मशरीरं न तिष्ठति।।४१।।

गौडपादभाष्यम्

किं प्रयोजनेन त्रयोदशविधं करणं संसरतीत्येवं चोदिते सति आह – चित्रं यथा कुड्याद्याश्रयमृते न तिष्ठति, स्थाण्वदिभ्यः कीलकादिभ्यो विना यथा च्छाया न तिष्ठति = तैर्विना न भवति। आदिग्रहणाद्यथा – शैत्यं विना नाऽपो भवन्ति, शैत्यं वाऽद्भिर्विना। अग्निरुष्णं विना, वायुः स्पर्शं विना, आकाशमवकाशं विना, पृथिवी गन्धं विना। तद्वदेतेन दृष्टान्तेन न्यायेन, विनाऽविशेषैः = अविशेषैस्तन्मात्रैर्विना न तिष्ठति। अथ विशेषभूतान्युच्यते। शरीरं पञ्चभूतमयम्, विशेषिणा शरीरेण विना क्व, लिङ्गस्थानञ्चेति क्व, (यदेव) एकदेहमुज्झति तदैवाऽन्यमाश्रयति। निराश्रयम् = आश्रयरहितम्, लिङ्गं = त्रयोदशविधं करणमित्यर्थः।।४१।।

भाष्यानुवादः

किस प्रयोजन के कारण यह तेरह प्रकार के करण संसरण करते हैं? इस प्रकार जिज्ञासा होने पर कहा जा रहा है कि चित्र० जिस प्रकार कीलकादि के बिना चित्र नहीं रह पाता है, उसी प्रकार आश्रय के बिना छाया नहीं रहती है। आदि ग्रहण से जैसे – शीतलता के बिना जल नहीं रहता है, तथा शीतलता जल के बिना नहीं रहती है। अग्नि उष्णता के बिना, वायु स्पर्श के बिना, आकाश अवकाश के बिना, पृथिवी गन्ध के बिना नहीं रहती है। इस प्रकार इस उदाहरण की युक्ति से अविशेष तन्मात्राओं के बिना नहीं रहता है। अब विशेष भूत कहे जा रहे हैं। शरीर पाँच भूतों वाला है। इस विशेष शरीर के बिना लिङ्ग शरीर कहाँ रह पाएगा। क्योंकि वह (लिङ्गशरीर) एक स्थूल शरीर को छड़कर

अन्य शरीर का आश्रय ग्रहण करता है। यह तेरह करण वाला सूक्ष्मशरीर आश्रय रहित होकर नहीं रहता है॥४१॥

पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन।
प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्॥४२॥

अन्वय :- इदं लिङ्गं पुरुषार्थहेतुकं, निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन प्रकृतेः विभुत्वयोगात् नटवत् व्यवतिष्ठते।

अनुवाद :- यह सूक्ष्मशरीर पुरुषार्थ हेतुवाला है, (और यह) धर्माधर्मादि निमित्त भाव और ऊर्ध्वगमनादि नैमित्तिक भावरूप प्रसङ्ग से प्रकृति के विभुत्व के साथ युक्त हो जाने के कारण अभिनेता की तरह व्यवस्थित रहता है।

नरहरिः

इदं लिङ्गम् = सूक्ष्मशरीरं पुरुषार्थहेतुकम् = पुरुषस्य अर्थः प्रयोजनं पुरुषार्थः, सैव हेतुः प्रयोजकः यस्य, भोगापवर्गरूपः पुरुषार्थः कर्त्तव्येति वा। निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन = निमित्तं च नैमित्तिकं च, तयोः प्रसङ्गस्तेन धर्माधर्मादि-निमित्तप्रसङ्गेन च प्रकृतेः = प्रधानस्य विभुत्वयोगात् = विभोः भावः विभुत्वं, तेन सह योगः, तस्मात् व्यापकत्वाद्वा सर्वत्र नटवत्, यथा – नटः पटान्तरेण प्रविश्य कदाचित् देवो भूत्वा निर्गच्छति, कदाचित् मानुषः कदाचिच्च विदुषकः। तथैव लिङ्गशरीरमिदं विभुत्वयोगात् विभुत्वेन सह योगः, तस्मात् प्रधानस्य निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन हस्ती-स्त्री-पुरुषादिरूपेण व्यवतिष्ठते = पृथक्-पृथक् देहधारणे लिङ्गस्य व्यवस्थां करोति॥४२॥

गौडपादभाष्यम्

किमर्थम्? तदुच्यते – 'पुरुषार्थः कर्त्तव्यः' इति प्रधानं प्रवर्त्तते। स च द्विविधः = शब्दाद्युपलब्धिलक्षणो, गुणपुरुषान्तरो-पलब्धिलक्षणश्च। शब्दाद्युपलब्धिर्ब्रह्मादिषु लोकेषु गन्धादिभोगाऽवाप्तिः। गुणपुरुषान्तरोपलब्धिर्मोक्ष इति। तस्माद्युक्तं – **पुरुषार्थहेतुकमिदं** सूक्ष्मशरीरं प्रवर्त्तत इति। **निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन**। निमित्तं = धर्मादि, नैमित्तिकम् = ऊर्ध्वगमनादि पुरस्तादेव वक्ष्यामः प्रसङ्गेन = प्रसक्त्या। प्रकृतेः = प्रधानस्य, विभुत्वयोगात्। यथा राजा स्वराष्ट्रे विभुत्वाद्यद्यदिच्छति तत्तत्करोतीति, तथा प्रकृतेः सर्वत्र विभुत्वयोगान्निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन व्यवतिष्ठते = पृथक् पृथग्देहधारणे लिङ्गस्य व्यवस्थां करोति। लिङ्गं = सूक्ष्मैः परमाणुभिस्तन्मात्रैरुपचितं शरीरं, त्रयोदशविधकरणोपेतं मानुषदेवतिर्यग्योनिषु व्यवतिष्ठते। कथम्? नटवत्। यथा नटः पटान्तरेण प्रविश्य देवो भूत्वा निर्गच्छति, पुनर्मानुषः, पुनर्विदूषकः। एवं लिङ्गं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेनोदरान्तः प्रविश्य हस्ती, स्त्री, पुमान् भवति॥४२॥

भाष्यानुवादः

(करणों का समूह सूक्ष्मशरीर के साथ जो संसरण करता है, वह) किस लिए? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि – पुरुषार्थ का सम्पादन करना है, इसलिए प्रधान तत्त्व प्रवृत्त होता है। वह (पुरुषार्थ) दो प्रकार का है, जैसे शब्दादि की उपलब्धिरूप और गुणपुरुषान्तर की उपलब्धिरूप है। ब्रह्मादि लोक में गन्धादि विषयों भोगों की प्राप्ति शब्दादि की उपलब्धिरूप है, तथा मोक्ष (अपवर्ग) गुणपुरुषान्तर की उपलब्धिरूप है। इसलिए कहा गया है – पुरुषार्थ हेतु से ही यह सूक्ष्म शरीर प्रवृत्त होता है। निमित्त – धर्म, अधर्म आदि, नैमित्तिक – ऊर्ध्वगमनादि प्रसङ्ग क्रम से आगे कहे जाएँगे। प्रकृति के विभुत्व० व्यापक धर्म से युक्त होने से। जैसे – राजा अपने राज्य में विभुत्व के कारण जो-जो इच्छा करता है, उन सबको कर लेता है। उसी प्रकार प्रकृति का विभुत्व से योग होने से सर्वत्र (धर्मादि) निमित्त और (ऊर्ध्वगमनादि) नैमित्तिक प्रसङ्ग से भिन्न-भिन्न शरीर के धारण में सूक्ष्मशरीर की व्यवस्था वह करती है। (अब प्रश्न यह है कि) लिङ्ग० सूक्ष्म परमाणुरूप तन्मात्राओं से उपचित शरीर, जो कि तेरह करणों से युक्त मनुष्य, देवता तथा तिर्यक् योनि आदि में व्यवस्था को प्राप्त करता है वह कैसे? (इसके उत्तर में कहते हैं कि) नट की तरह (वह भिन्न-भिन्न अवस्था को प्राप्त करता है)। जैसे – नट परदे के भीतर प्रवेश करके, (उससे) देवता होकर (स्वरूप को धारण कर) निकलता है, तो पुनः मनुष्य के रूप से, पुनः कभी विदूषक होकर। इस प्रकार सूक्ष्मशरीर निमित्त और नैमित्तिक प्रसङ्ग से उदर के भीतर प्रवेश करके हस्ती, पुरुष होता है॥४२॥

सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिकाः वैकृतिकाश्च धर्माद्याः।
दृष्टाः करणाऽऽश्रयिणः कार्याऽऽश्रयिणश्च कललाद्याः॥४३॥

अन्वय :- धर्माद्याः भावाः सांसिद्धिकाः प्राकृतिकाः वैकृतिकाः च (उच्यन्ते)। (एते) करणाश्रयिणः च कललाद्याः कार्याऽश्रयिणः दृष्टाः।

अनुवाद :- धर्मादि भाव सांसिद्धिक, प्राकृतिक और वैकृतिक (नाम वाले कहे जाते) हैं। (ये) कारण में रहने वाले हैं और कललादि कार्य में रहने वाले देखे गये हैं।

नरहरिः

धर्माद्याः = धर्माऽधर्माद्यष्टौ भावाः त्रिप्रकारेण वर्णिताः, यथा सांसिद्धिकाः = स्वाभाविकाः, प्रकृतिकाः = प्रकृतिप्रदत्ता प्रकृतिनिमित्ता वा, वैकृतिकाः = विकृतिजन्याः च

उच्यन्ते। एते भावा: करणाश्रयिण: - करणं = बुद्धि:, तदाश्रयिण: बुद्धि-मेवाश्रयन्तीति, कललाद्या: = मातापितृजा: कार्याश्रयिण: - कार्यं = स्थूलशरीरं, तदाऽश्रयन्तीति, अन्नादिविषयभोगनिमित्ता: जायन्ते।।४३।।

गौडपादभाष्यम्

'भावैरधिवासितं लिङ्गं संसरती'त्युक्तं, तत: के भावा:? इत्याह – भावास्त्रिविधाश्चिन्त्यन्ते – सांसिद्धिका:, प्राकृता:, वैकृताश्च। तत्र सांसिद्धिका: यथा – भगवत: कपिलस्याऽदिसर्गे उत्पद्यमानस्य चत्वारो भावा: सहोत्पन्ना: – धर्मो, ज्ञानं, वैराग्यमैश्वर्यमिति। प्राकृता: कथ्यन्ते – ब्रह्मणश्चत्वार: पुत्रा: सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमारा: बभूवु:। तेषामुत्पन्नकार्य-कारणानां शरीरिणां षोडशवर्षाणामेते भावाश्चत्वार: समुत्पन्ना:, तस्मादेते प्राकृता:। तथा वैकृता – यथा आचार्यमूर्त्तिं निमित्तं कृत्वाऽस्मदादीनां ज्ञानमुत्पद्यते, ज्ञानाद्वैराग्यं, वैराग्याद्धर्म:, धर्मादैश्वर्यमिति। आचार्यमूर्त्तिरपि विकृतिरिति, तस्माद्वैकृता एते भावा उच्यन्ते, यैरधिवासितं लिङ्गं संसरति। एते चत्वारो भावा: सात्त्विका:, तामसा विपरीता: 'सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्' इत्यत्र व्याख्याता:। एवमष्टौ = धर्मो, ज्ञानं, वैराग्यमैश्वर्यमधर्मोऽज्ञानमवैराग्यमनैश्वर्यमित्यष्टौ भावा:। क्व वर्त्तन्ते? **दृष्टा करणाश्रयिण:**। बुद्धि: = करणं, तदाश्रयिण:। एतदुक्तम् - 'अध्यवसायो बुद्धि:, धर्मो ज्ञानमिति'। कार्यं कललाद्या: = देहस्तदाश्रया: कललाद्या ये मातृजा इत्युक्ता:, शुक्रशोणितसंयोगे विवृद्धिहेतुका: कललाद्या: बुद्बुद्मांसपेशीप्रभृतय:, तथा कौमारयौवनस्थविरत्वादयो भावा अन्नपानरसनिमित्ता: निष्पद्यन्ते, अत: कार्याश्रयिण उच्यन्ते, अन्नादिविषयभोगनिमित्ता: जायन्ते।।४३।।

भाष्यानुवाद:

'भावों से अधिवासित होकर लिङ्गशरीर संसरण करता है' यह कहा गया है। (तब प्रश्न यह है कि) भाव कितने हैं? (इस पर उत्तर देते हैं कि) भाव तीन प्रकार के चिन्तित है। जैसे – सांसिद्धिक, प्राकृतिक और वैकृतिक। इनमें से सांसिद्धिक भाव – जैसे सर्ग के आरम्भ में उत्पन्न हुए भगवान् कपिल का, उनके साथ चार भाव साथ उत्पन्न हुए थे, जैसे – धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। ये प्राकृत कहे जाते हैं। ब्रह्मा के चार पुत्र हुए थे, जैसे – सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार। इनके उत्पन्न कार्यकारणरूप षोडशवर्षीय शरीरों का चार भाव उत्पन्न हुए हैं, इसलिए ये प्राकृत हैं। वैसे वैकृतभाव। जैसे – आचार्यमूर्त्ति को निमित्त मान कर हम लोग आदि का जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उस ज्ञान से वैराग्य, वैराग्य से धर्म, धर्म से ऐश्वर्य (उत्पन्न होता है)। (यहाँ पर) आचार्यमूर्त्ति भी विकृति है, इसलिए ये वैकृतभाव कहे जाते हैं, जिनसे आधिवासित होकर लिङ्गशरीर संसरण करता है। ये चार भाव सात्त्विक है। तामस (भाव इन से) विपरीत है। तामस० इस कारिका में व्याख्या कर दी गयी है। इस प्रकार ये आठ भाव हैं। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य - इस प्रकार ये आठ भाव हैं, कहाँ पर रहते हैं? दृष्टा० बुद्धि करण है, उसके आश्रित (ये धर्मादि भाव रहते हैं)। यह कहा गया है अध्यवसाय बुद्धि है, धर्म तथा ज्ञान आदि। कार्य० देह, तथा उसके आश्रय कललादि जो माता तथा पिता से उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। शुक्र और शोणित के संयोग से (स्थूल शरीर के) विशिष्ट वृद्धि के हेतुभूत बुद्-बुद्, मांसपेशी प्रभृति, तथा कौमार, योवन, स्थविर आदि भाव अन्न, पान रस के निमित्त से निष्पन्न होते हैं। इसलिए (ये) कार्याश्रयी (शरीर के आश्रित) कहे जाते हैं और अन्न आदि विषय भोग के निमित्त होते हैं।।४३।।

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चाऽपवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्ध:।।४४।।

अन्वय :- धर्मेण ऊर्ध्वं गमनं भवति, अधर्मेण अधस्तात् गमनं (भवति), ज्ञानेन च अपवर्ग: (भवति), विपर्ययात् बन्ध: भवति।

अनुवाद :- धर्म से (धर्माचरण से) ऊर्ध्वगमन होता है, अधर्म से अधोगमन (होता है), और ज्ञान से अपवर्ग तथा अज्ञान से बन्ध होता है – यह कहा जाता है।

नरहरि:

धर्मेण = धर्माचरणेन विहितकर्माचरणेन ऊर्ध्वम् = ब्राह्मप्राजापत्याद्यष्टौ स्थानानि सूक्ष्मशरीरस्य गमनम् = गति: भवति। अधर्मेण = अधर्माचरणेन निषिद्धकर्मानुष्ठानेन वा अधस्तात् = पशुमृगादिस्थानानि प्रति सूक्ष्मशरीरं गमनम् = गतिमान् भवति। ज्ञानेन = पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानेन अपवर्ग: = मोक्ष: जायते। एतेन सूक्ष्मशरीरं निवर्त्तते, न संसरतीत्यर्थ:। विपर्ययात् = ज्ञानविपर्ययात् अज्ञानात् बन्ध: = प्रकृतिकादय इष्यते = स्वीक्रियते।।४४।।

गौडपादभाष्यम्

'निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेने'ति यदुक्तमत्रोच्यते – **धर्मेण गमनमूर्ध्वम्**। धर्म निमित्तं कृत्वोर्ध्वमुपनयति। ऊर्ध्वमित्यष्टौ स्थानानि गृह्यन्ते। तद्यथा – ब्राह्मं, प्राजापत्यं, सौम्यमैन्द्रं, गान्धर्वं, याक्षं, राक्षसं, पैशाचमिति, तत्र सूक्ष्मं शरीरं गच्छति। पशुमृगपक्षी-सरीसृपस्थावरान्तेष्वधर्मो निमित्तम्। किञ्च **ज्ञानेन चापवर्ग:**, अपवर्गश्च पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानम्। तेन निमित्तेनापवर्गो = मोक्ष:, तत: सूक्ष्मं शरीरं निवर्त्तते परम-आत्मा उच्यते।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

विपर्ययादिष्यते बन्धः। अज्ञाननिमित्तम्। स चैष नैमित्तिकः - प्राकृतो, वैकारिको, दाक्षिणिकश्च बन्ध इति वक्ष्यति पुरस्तात्। यदिदमुक्तम् –

प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेण च।
दाक्षिणेन तृतीयेन बद्धो नाऽन्येन मुच्यते॥४४॥

भाष्यानुवादः

निमित्त और नैमित्तिक प्रसङ्ग से यह जो कहा गया है, उस पर यहाँ कहते हैं कि धर्मेण० धर्म को निमित्त मान कर किय गया कार्य ऊर्ध्व को ले जाता है। ऊर्ध्व का तात्पर्य आठ प्रकार के स्थान गृहीत होते हैं। वे जैसे – ब्राह्म, प्राजापत्य, सौम्य, ऐन्द्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस, पैशाच – ये आठ लोक हैं, इन में सूक्ष्मशरीर जाता है। पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप,स्थावर पर्यन्त जाने में अधर्म निमित्त होता है। और फिर ज्ञान से अपवर्ग होता है, और अपवर्ग २५ तत्त्वों का ज्ञान है। इस (ज्ञान) निमित्त से अपवर्ग अर्थात् मोक्ष होता है। उससे सूक्ष्मशरीर निवृत्त हो जाता है। परम-आत्मा कहा जाता है। विपर्यय से बन्ध प्राप्त होता है। अज्ञान निमित्त से ही बन्ध होता है। और यह बन्ध नैमित्तिक है, जो कि आगे कहेंगे – प्रकृत, वैकारिक और दाक्षिणिक बन्ध है। जो यह कहा गया है –

प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेण च।
दाक्षिणेन तृतीयेन बद्धो नाऽन्येन मुच्यते॥

अर्थात् 'प्राकृत बन्ध से और वैकारिक बन्ध से तथा दाक्षिणिक बन्ध से बद्ध हुआ (जीव) किसी अन्य प्रकार से मुक्त नहीं होता है'॥४४॥

वैराग्यात् प्रकृतिलयः संसारो भवति राजसाद्रागात्।
ऐश्वर्यादविघातो विपर्ययात्तद्विपर्यासः॥४५॥

अन्वय :- वैराग्यात् प्रकृतिलयः भवति, राजसात् रागात् संसारः (भवति), ऐश्वर्यात् अविघातः (भवति), विपर्ययात् तद्विपर्यासः (भवति)।

अनुवाद :- वैराग्य से (साधक) प्रकृति में लीन हो जाता है, राजसिक राग से संसार (होता है), ऐश्वर्य से अप्रतिहतवाला (हो जाता है), अनैश्वर्य से प्रतिहतवाला (हो जाता है)।

नरहरिः

वैराग्यात् – विरागस्य भावः, विशिष्टो परमार्थवस्तुविषयको रागो वा (अभावस्य साङ्ख्यमते अधिकरणस्वरूपत्वात्), तस्य भावः, तस्मात् प्रकृतिलयः = प्रकृतौ लयः मृतोऽष्टासु प्रकृतिषु प्रधानबुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेषु लयं = लीनं भवति प्राप्नोतीति, न मोक्षः। सः तावत् संसरति यावत् ज्ञानं नोत्पद्यत इति। राजसात् = रजोगुणौत्कट्यात् रागात् संसारः = जन्ममृत्युचक्रमध्ये पतति, सः योगी पौनःपुन्येन जन्मं मृत्युं च प्राप्नोति। ऐश्वर्यात् = ऐश्वर्यकारणात् अविघातः - न विघातः = प्रतिबन्धः, तस्मात् रहितः, अप्रतिबन्धयुक्तः जायते। ब्रह्मादिषु लोकेष्वैश्वर्यं न विहन्यत इति। विपर्ययात् = ऐश्वर्यविपर्ययादनैश्वर्यात् तद्विपर्यासः - तस्य अविघातस्य विपर्यासः विपरीतः विघातः भवति। अनैश्वर्यात् सर्वत्र प्रतिबध्यत इति॥४५॥

गौडपादभाष्यम्

तथाऽन्यदपि निमित्तं – यथा कस्यचिद्वैराग्यमस्ति, न तत्त्वज्ञानं, तस्मादज्ञानपूर्वाद्वैराग्यात् प्रकृतिलयः, मृतोऽष्टासु प्रकृतिषु प्रधानबुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेषु लीयते, न मोक्षः। ततो भूयोऽपि संसरति। तथा योऽयं राजसो रागः - यजामि, दक्षिणां ददामि, येनाऽमुष्मिन् लोकेऽत्र यद्दिव्यं मानुषं सुखमनुभवामि। एतस्माद्राजसाद्रागात् संसारो भवति। तथा **ऐश्वर्यादविघातः**। एतदैश्वर्यमष्टगुणमणिमादियुक्तं, तस्मादैश्वर्यनिमित्तादविघातो नैमित्तिको भवति = ब्रह्मादिषु स्थानेष्वैश्वर्यं न विहन्यते। किञ्चान्यत् – **विपर्ययात्तद्विपर्यासः**। तस्य – अविघातस्य विपर्यासो = विघातो भवति, अनैश्वर्यात् सर्वत्र विहन्यते॥४५॥

भाष्यानुवादः

तथा अन्य भी निमित्त है, जैसे – किसी का वैराग्य है, तत्त्वज्ञान नहीं है। इसलिए अज्ञानपूर्वक वैराग्य से प्रकृतिलय होता है। मरने के बाद वह (सूक्ष्म शरीर) प्रधान, बुद्धि, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्ररूप आठ प्रकृतियों में लीन हो जाता है, मोक्ष को (प्राप्त) नहीं करता है। उसके बाद वह बार-बार (जन्म-मृत्यु में) संसरण करता है। तथा जो यह रजोगुण वाला राग है, जैसे - ''यज्ञ करता हूँ, दक्षिणा देता हूँ, जिससे परलोक तथा इस लोक में जो दिव्य तथा मानुष सुख का अनुभव करता हूँ'' – इस प्रकार के राजस राग से संसार होता है। तथा ऐश्वर्या० अर्थात् ऐश्वर्य से अविघात होता है। यह ऐश्वर्य आठगुणों वाला अणिमादि से युक्त हैं, उस ऐश्वर्य का विघात नहीं होता है। और फिर – विपर्यया० विपर्यय से, उस अविघात के विघात होता है अर्थात् अनैश्वर्य से सर्वत्र विघात होता है॥४५॥

चित्रम् :-

ISBN No. : 978-81-217-0247-8
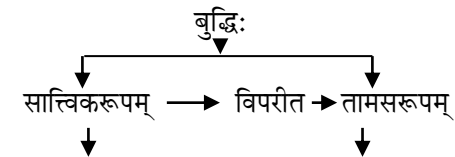
ऊर्ध्वगमनम्	← धर्मः		अधर्मः →	अधोगमनम्
अपवर्गः	← ज्ञानम्		अज्ञानम् →	बन्धः
प्रकृतिलयः	← वैराग्यम्		अवैराग्यम् →	संसारः
अविघातः (अप्रतिबन्धः)	← ऐश्वर्यम्		अनैश्वर्यम् →	विघातः (प्रतिबन्धः)

एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात्तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्॥४६॥

अन्वय :- एषः प्रत्ययसर्गः विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः। गुणवैषम्यविमर्दात् तु तस्य पञ्चाशत् भेदाः (भवन्ति)।

अनुवाद :- यह बुद्धि का सर्ग विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि नाम वाला है। गुणों की विषमता में वैचित्र्य होने के कारण उसके भेद पच्चास (५०) प्रकार के (होते हैं)।

नरहरिः

एषः प्रत्ययसर्गः = प्रतीयन्तेऽर्थाः अनेनेति प्रत्ययः, तस्य बुद्धितत्त्वस्य बुद्धेः सर्गः चतुर्धा विभज्यते, यथा – विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः। विपर्ययाख्यः, अशक्त्याख्यः, तुष्ट्याख्यः सिद्ध्याख्यश्चेति। गुणवैषम्यविमर्दात् – सत्त्वादीनां गुणानां वैषम्यं न्यूनाधिकभावः गुणवैषम्यम्, तेषां विमर्दः = वैचित्र्यं तस्मादस्य प्रत्ययसर्गस्य पञ्चाशद्भेदाः भवन्ति॥४६॥

गौडपादभाष्यम्

एष निमित्तैः सह नैमित्तिकः षोडशविधो व्याख्यातः, स किमात्मक इत्याह – यथा एष षोडशविधो निमित्तनैमित्तिकभेदो व्याख्यातः, एष प्रत्ययसर्ग उच्यते। प्रत्ययो = बुद्धिरित्युक्ता, अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानमित्यादि। स च प्रत्ययसर्गश्चतुर्धा भिद्यते, **विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्धियाख्यभेदात्**। तत्र संशयोऽज्ञानं विपर्ययः। यथा कस्यचित् स्थाणुदर्शने स्थाणुरयं पुरुषो वेति संशयः। अशक्तिर्यथा – तमेव स्थाणुं सम्यग् दृष्ट्वा संशयं छेत्तुं न शक्नोतीत्यशक्तिः। एवं तृतीयस्तुष्ट्याख्यो यथा तमेव स्थाणुं ज्ञातुं, संशयितुं वा नेच्छति किमनेनाऽस्माकमित्येषा तुष्टिः। चतुर्थः सिद्ध्याख्यो यथा – आनन्दितेन्द्रियः स्थाणुमारुढां वल्लिं पश्यति, शकुनिं वा, तस्य सिद्धिर्भवति स्थाणुरयमिति। एवमस्य चतुर्विधस्य प्रत्ययसर्गस्य गुणवैषम्यविमर्दात् **तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्**। योऽयं सत्त्वरजस्तमोगुणानां वैषम्यं = विमर्दः,तेन तस्य प्रत्ययसर्गस्य पञ्चाशद्भेदाः भवन्ति॥४६॥

भाष्यानुवादः

यह (धर्मादि) निमित्तभावों के साथ (ऊर्ध्वगमनादि) नैमित्तिक भाव, जो सोलह प्रकार की व्याख्या की गई है, वे किस स्वरूपवाले हैं? इस पर कहते हैं, जैसे – यह १६ प्रकार के निमित्त-नैमित्तिक भेद व्याख्यात है। यह प्रत्ययसर्ग (बुद्धि का सर्ग) कहा जा रहा है। प्रत्ययशब्द को बुद्धि कहा गया है। 'अध्यवसाय बुद्धि है, तथा यह धर्म, ज्ञान अदि (भावों से युक्त है)' इस कारिका से कह दिया गया है। और यह प्रत्ययसर्ग चार भाग से विभक्त है। जैसे – विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि। इनमें से संशय (तथा) अज्ञान विपर्यय कहलाता है। जैसे किसी स्थाणु के दर्शन होने पर 'यह स्थाणु है अथवा पुरुष है' यह संशय है। अशक्ति, जैसे – उस स्थाणु को भलीभाँति देखने पर भी संशय का छेदन करने में समर्थ न होना अशक्ति है। इस प्रकार तीसरा तुष्टि नाम वाला, जैसे उस स्थाणु को जानने की, (उसके विषय में) संशय करने की इच्छा नहीं करता है, (क्योंकि वह चिन्तन करता है कि) इसके (ज्ञान के द्वारा हमारा क्या?) लाभ होगा, यह तुष्टि है। चौथी सिद्धि नाम वाला है, जैसे कोई आनन्दित इन्द्रिय वाला स्थाणु पर आरूढ़ लता अथवा पक्षी को देखता है, (तब) उसको सिद्धि होती है कि यह स्थाणु है। इस प्रकार चार प्रकार के इस प्रत्ययसर्ग का गुणों के वैषम्य में वैचित्र्य होने से उसके पच्चास भेद होते हैं। यह जो सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणों का वैषम्य है, उससे उस प्रत्ययसर्ग का ५० भेद होते हैं॥४६॥

पञ्च विपर्ययभेदाः भवन्त्यशक्तिस्तु करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदाः तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः॥४७॥

अन्वय :- पञ्चविपर्ययभेदाः भवन्ति। करणवैकल्यात् अशक्तिः अष्टाविंशतिभेदाः (भवन्ति)। तुष्टिः नवधा (तथा) सिद्धिः अष्टधा भवति।

अनुवाद :- विपर्यय के पाँच भेद होते हैं। करणों की विकलता के कारण अशक्ति २८ भेदवाली (होती है)। तुष्टि ९ प्रकार की तथा सिद्धि ८ प्रकार की होती है।

नरहरिः

पञ्च विपर्ययभेदाः। विपर्ययः = मिथ्याज्ञानम्, तस्य भेदाः भवन्ति। यथा तमो, मोहः, महामोहः, तामिस्रः, अन्धतामिस्रश्चेति। एतेष्वश्रेयसि प्रवृत्तस्य प्रत्ययावरे श्रेयोऽभिमाने विपर्ययस्तम इत्यभिधीयते। श्रवणस्पर्शनरसनघ्राणवचनादान-विहरणोत्सर्गानन्दसङ्कल्पाभिमानाध्यवसायायलक्षणेषु करणवृत्तिष्वहं श्रोता द्रष्टा चेत्येवमादिराद्यकालप्रवृत्तो ग्रहः सर्वस्मादवरो मोह इत्युच्यते। क्रोधश्चतुर्थो विपर्ययः तामिस्र इत्यभिधीयते। मरणविषादः पञ्चमो अन्धतामिस्र इत्यभिधीयते। करणवैकल्यात् =

करणानामिन्द्रियाणां वैकल्यात् अशक्तिः – अशक्तेः अष्टविंशतिभेदाः भवन्ति वाधिर्यादयः। तुष्टिः नवधा, अष्टधा च सिद्धिः भवति॥४७॥

गौडपादभाष्यम्

तथा क्वापि सत्त्वमुत्कटं भवति, रजस्तमसी उदासीने। क्वपि रजः क्वापि तम इति। भेदाः कथ्यन्ते – **पञ्च विपर्ययभेदाः**। ते यथा – तमो, मोहो, महामोहः, तामिस्रः, अन्धतामिस्र इति। एषां भेदानां नानात्वं वक्ष्यतेऽनन्तरमेवेति अशक्तेस्त्वष्टा-विंशतिभेदाः भवन्ति, **करणवैकल्यात्**, तानपि वक्ष्यामः। ऊर्ध्वस्रोतसि राजसानि ज्ञानानि। तथा **तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः**। सात्त्विकानि ज्ञानानि तत्रैवोर्ध्वस्रोतसि॥४७॥

भाष्यानुवादः

तथा कभी सत्त्वगुण उत्कट होताहै, रजोगुण और तमोगुण उदासीन। कभी रजोगुण (उत्कट होता है), तो कभी तमोगुण (उत्कट होता है)। अब भेद कहते हैं कि विपर्यय पाँच प्रकार का है। वे जैसे – तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। इन भेदों के नानात्व आगे कहे जाएँगे। इसके अनन्तर करणों की विकलता के कारण अशक्ति के २८ भेद होते हैं। वे भी आगे कहे जाएँगे। ऊर्ध्वस्रोत में राजस ज्ञान है। तथा तुष्टि नौ प्रकार की और आठ प्रकार की सिद्धि है। उसमें ऊर्ध्वस्रोत में सात्त्विक ज्ञान होता है॥४७॥

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवन्त्यन्धतामिस्रः॥४८॥

अन्वय :- तमसः भेदः अष्टविधः, मोहस्य च (अष्टविधः)। महामोहः दशविधः, तामिस्रः अष्टादशधा तथा अन्धतामिस्रः (अष्टादशधा) भवति।

अनुवाद :- तमस् के भेद ८ प्रकार के हैं और मोह के भी (८ भेद)। महामोह १० प्रकार का है, तामिस्र १८ प्रकार के हैं तथा अन्धतामिस्र भी १८ प्रकार के हैं।

नरहरिः

तमसः भेदः = प्रकारः अष्टविधः प्रधानबुद्ध्यहङ्कारतन्मात्राख्यः, मोहस्य च अष्टविधः - अष्टगुणमैश्वर्यम्। महामोहः दशविधः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः देवानां सुखलक्षणाः, पञ्च मानुषाणां शब्दादयः पञ्च, एवम्। तामिस्रः अष्टादशधा अष्टविधमैश्वर्यम्, तामिस्रस्य दृष्टानुश्रविकदशविषयाः। अन्धतामिस्रः अपि अष्टादशधा भवति। एवं द्विषष्ठिभेदाः विपर्ययस्य उच्यन्ते॥४८॥

गौडपादभाष्यम्

एतत् क्रमेणैव वक्ष्यते। तत्र विपर्ययभेदा उच्यन्ते – तमसस्तावदष्टधा भेदः। प्रलयी अज्ञानाद्विभज्यते, सोऽष्टासु प्रकृतिषु लीयते प्रधानबुद्ध्यहङ्कारपञ्चतन्मात्राख्यासु। ततः लीनमात्मानं मन्यते – मुक्तोऽहमिति, तमोभेद एषः। अष्टविधस्य मोहस्य भेदो अष्टविध एवेत्यर्थः। तत्राऽष्टगुणमणिमाद्यैश्वर्यम्। तत्र सङ्गादिन्द्रादयो देवा न मोक्षं प्राप्नुवन्ति, पुनश्च तत्क्षये संसरत्येषोऽष्टविधो मोह इति। **दशविधो महामोहः**। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः देवानामेते पञ्च विषयाः सुखलक्षणाः, मानुषाणामप्येते एव शब्दादयः पञ्च विषयाः - एवमेतेषु दशसु महामोह इति। **तामिस्रोऽष्टादशधा**। अष्टविधमैश्वर्यं, दृष्टानुश्रविकाः विषयाः दश, एतेषामष्टादशानां सम्पदमनुनन्दन्ति विपदं नानुमोदन्ते। एषोऽष्टादशविधो विकल्पस्तामिस्रः। यथा तामिस्रोऽष्टगुणमैश्वर्यं दृष्टानुश्रविकाः दश विषयास्तथाऽन्धतामिस्रोऽप्यष्टादशभेद एव। किन्तु विषयसम्पत्तौ सम्भोगकाले य एव म्रियतेऽष्टगुणमैश्वर्याद्वा भ्रंश्यते, ततस्तस्य महद्दुःखमुत्पद्यते, सोऽन्धतामिस्र इति। एवं विपर्ययभेदास्तमःप्रभृतयः पञ्च प्रत्येकं भिद्यमानाः द्विषष्टिभेदाः सम्वृत्ता इति॥४८॥

भाष्यानुवादः

ये क्रमसे कहे जाएँगे। उसमें से विपर्यय के भेद कहे जा रहे हैं। उनमें से तमस् के आठ भेद हैं। अज्ञान से प्रलयी विभक्त (भिन्न) होता है, वह प्रधान, बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्र – नाम वाले आठ प्रकृतियों में लीन होते हैं। उसमें लीन आत्मा को 'मैं मुक्त हूँ' यह मानता है। यह तमस् के भेद है। मोह के आठ प्रकार भेद होते हैं। वे आठ गुण वाले अणिमादि ऐश्वर्य हैं, इनसे सङ्ग के कारण इन्द्र आदि देवता मोक्ष को प्राप्त नहीं करते हैं, उसके क्षय होने पर संसरण करते हैं, यह आठ प्रकार के मोह हैं। महामोह दश प्रकार के हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध – ये देवताओं के सुखलक्षणवाले विषय होते हैं तथा मनुष्यों के ये शब्द आदि पाँच विषय होते हैं। इस प्रकार ये दश महामोह है। १८ प्रकार का तामिस्र है। आठ प्रकार के ऐश्वर्य, दृष्ट तथा आनुश्रविक १० विषय – इन १८ प्रकार के रहने पर प्रसन्न होते हैं, तथा न रहने पर दुःखी होते हैं। यह १८ प्रकार का विकल्प अन्धतामिस्र है। जैसे – ८ गुण वाला ऐश्वर्य जो तामिस्र है तथा दृष्ट और आनुश्रविक १० विषय – इस प्रकार ये अन्धतामिस्र १८ प्रकार का है। किन्तु विषयों के सन्निकट से उपभोग काल में जो मर जाता है अथवा आठ गुणों से युक्त ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है, उसे अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है, वह अन्धतामिस्र है। इस प्रकार विपर्यय के तमस् प्रभृति पाँच भेद प्रत्येक भिन्न-भिन्न होते हुए (यह विपर्यय) ६२ भेद वाला हो जाता है॥४८॥

ISBN No. : 978-81-217-0247-8
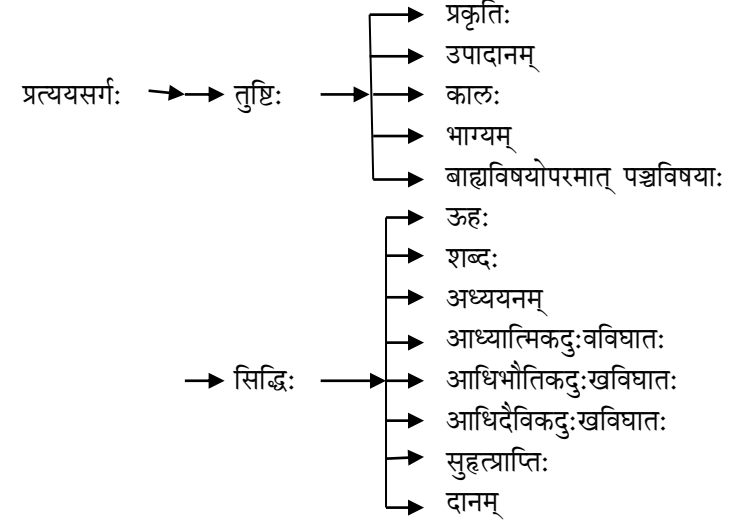
एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदशवधाः बुद्धेः[३]विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम्॥४९॥

अन्वय :- एकादश: इन्द्रियवधा: बुद्धिवधै: सह अशक्ति: उद्दिष्टा। तुष्टिसिद्धीनां विपर्ययात् बुद्धे: सप्तदशवधा: (भवन्ति)।

अनुवाद :- ग्यारह इन्द्रिय वध, (सत्रह) बुद्धिवधों के साथ (मिलकर) अशक्ति कही जाती है। तुष्टि (९) और सिद्धि (८) के विपरीत (स्वभाव वाले) बुद्धि के सत्रह (१७) वध होते हैं।

नरहरि:

एकादशेन्द्रियवधा: - इन्द्रियस्य वध: = कुण्ठितत्वम्, ते बुद्धिवधै: - बुद्धे: वध:, तै: सह अष्टाविंशति: अशक्ति: उद्दिष्टा – कथिता। उच्यते च –

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं मूकता जडता च या।
उन्मादकौष्ठ्यकौण्यानि क्लैव्योदावर्त्तपङ्गुता:॥

चित्रम् :-

विपर्यय: → तमस् → अष्टविध:; मोह: → अष्टविध:; महामोह: → दशविध:; तामिस्र: → अष्टादशधा; अन्धतामिस्र: → अष्टादशधा
अशक्ति: → एकादशेन्द्रियवधा:; सप्तदशबुद्धिवधा:
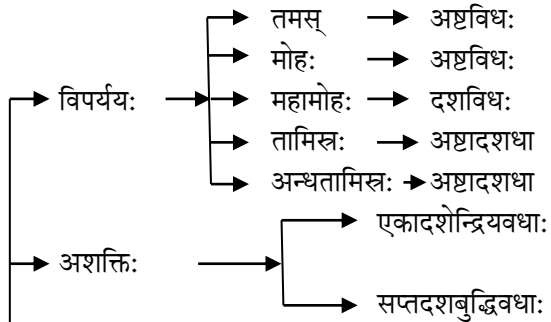
३. 'बुद्धि:' इति क्वचित् पठ्यते।

तत्र बाधिर्यं श्रोत्रस्य, आन्ध्यं चक्षुषः, अघ्रत्वं नासिकायाः, मूकता वाचः, जडता रसनस्य, उन्मादो मनसः, कौष्ठ्यं त्वचः, कौण्यं पाणेः, क्लैव्यमुपस्थस्य, उदावर्त्तः पायोः, पङ्गुता पादयोरित्येवमिन्द्रियवधा एकादश। सप्तदश बुद्धिवधाः, यथा – बुद्धिवधस्तु तुष्टिसिद्धीनां विपर्ययात्, नवविधस्य तुष्टेः विपर्ययात् अष्टधाविभक्तस्य सिद्धेः विपर्ययात् बुद्धेः एते सप्तदशवधाः कथ्यन्ते। तुष्टयो नवधेति तद्विपर्ययास्तन्निरूपणान्नवधा भवन्ति। एवं सिद्धयोऽष्टाविति तद्विपर्ययास्तन्निरूपादष्टौ भवन्ति। एवं एकादशेन्द्रियवधाः सप्तदशबुद्धिवधाः मिलित्वा अष्टाविंशतिः अशक्तिभेदा इति कथ्यन्ते॥४९॥

गौडपादभाष्यम्

अशक्तिभेदाः कथ्यन्ते - 'भवन्त्यशक्तेश्च करणवैकल्यादष्टाविंशति भेदाः' इत्युद्दिष्टम्। **तत्रैकादशेन्द्रियवधाः** बाधिर्यम्, अन्धता, प्रसुप्तिः, उपजिह्विका, घ्राणपाको, मूकता, कुणित्वं, खाञ्ज्यं, गुदावर्त्तः, क्लैब्यमुन्माद इति। **सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा**, ये बुद्धिवधास्तैः सहाऽशक्तेरष्टाविंशतिभेदाः भवन्ति। **सप्तदश वधा बुद्धेः**। सप्तदश वधास्ते तुद्धिभेदसिद्धिभेदवैपरीत्येन। तुष्टिभेदाः नव, सिद्धिभेदा अष्टौ, एतद्विपरीतैः सह एकादश(इन्द्रिय)वधा, एवमष्टाविंशतिविकल्पा अशक्तिरिति॥४९॥

भाष्यानुवादः

अशक्ति के भेद कहे जा रहे हैं ; भवन्त्य० इससे उद्दिष्ट है। उनमें ग्यारह इन्द्रिय वध है, जैसे – वाधिर्य, अन्धता, प्रसुप्ति, उपजिह्विका, घ्राणपाको, मूकता, कुणित्व, खाञ्ज्य, गुदावर्त्त, क्लैव्य, उन्माद। जो बुद्धि के वध हैं, उनके साथ (मिलकर) अशक्ति २८ प्रकार के हो जाते हैं। बुद्धि के वध १७ प्रकार के हैं। वे वध तुष्टि और सिद्धि के भेदों के विपरीत से होते हैं। जैसे – तुष्टि के ९ भेद और सिद्धि के ८ भेद – इनसे विपरीत स्वभाववाले भेदों के साथ ११ इन्द्रिय वध मिलकर – इस प्रकार २८ प्रकार के विकल्पवाली अशक्ति होती है।४९॥

आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।
बाह्याः विषयोपरमात्पञ्च नव तुष्टयोऽभिमताः॥५०॥

अन्वय :- प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः चतस्रः आध्यात्मिक्यः विषयोपरमात् पञ्च बाह्याः (एवं) तुष्टयः नव अभिमताः।

अनुवाद :- प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य नाम वाले चार आध्यात्मिक (आभ्यन्तर विषय), विषयों के शान्त हो जाने के कारण पाँच बाह्य (विषय), (इस प्रकार) तुष्टियाँ नौ (९) प्रकार के अभिमत हैं।

नरहरिः

प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः - प्रकृत्याख्यः, उपादानाख्यः, कालाख्यः, भाग्याख्यश्चेति चतस्रः आध्यात्मिक्यः - अध्यात्मनि भवा इति। विषयोपरमात् विषयाणामुपरमकारणात् पञ्चविषयाः बाह्याः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेभ्यः उपरताः एवं प्रकारेण तुष्टयः नव अभिमताः = अभिप्रेताः॥५०॥

गौडपादभाष्यम्

विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनामेवं भेदक्रमो द्रष्टव्यः। तत्र तुष्टिर्नवधा कथ्यते – **आध्यात्मिक्यश्चतस्रस्तुष्टयः**। अध्यात्मनि भवा आध्यात्मिक्यः। ताश्च **प्रकृत्युपादनकालभाग्याख्याः**। तत्र प्रकृत्याख्या यथा – कश्चित् प्रकृतिं वेत्ति, तस्याः सगुणनिर्गुणत्वं च, तेन तत्त्वं = तत्कार्यं विज्ञायैव केवलं तुष्टस्तस्य नास्ति मोक्षः, एषा प्रकृत्याख्या। उपादानाख्या यथा – कश्चिदविज्ञायैव तत्त्वान्युपादनग्रहणं करोति – त्रिदण्डकमण्डलुविविदिषाभ्यो मोक्ष इति, तस्यापि नास्ति मोक्ष इति, एषा उपादानाख्या। तथा कालाख्या – कालेन मोक्षो भविष्यतीति किं तत्त्वाभ्यासेनेत्येषा कालख्या तुष्टिस्तस्य नास्ति मोक्ष इति। तथा भाग्याख्या – भाग्येनैव मोक्षो भविष्यतीति भाग्याख्या। चतुर्द्धा तुष्टिरिति। **बाह्याः विषयोपरमाच्च पञ्च**। बाह्यास्तुष्टयः पञ्च, विषयोपरमात्। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेभ्यः उपरतोऽर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनात्। (धन)बृद्धिनिमित्तं पशुपाल्यवाणिज्यप्रतिग्रहसेवाः कार्याः, एतदर्जनं दुःखम्। अर्जितानां रक्षणे दुःखम्। उपभोगात्क्षीयत इति क्षयदुःखम्। तथा विषयोपभोगप्रसङ्गे कृते नास्तीन्द्रियाणामुप-शम इति सङ्गदोषः। तथा नानुपहत्य भूतान्युपभोग इत्येष हिंसादोषः। एवमर्जनादिदोषदर्शनात् पञ्चविषयोपरमात् पञ्च तुष्टयः। एवमाध्यात्मिकी – बाह्याभेदान्नव तुष्टयः। तासां नामानि शास्त्रान्तरे प्रोक्तानि – अम्भ, सलिलं, मेघो, वृष्टिः, सुतमः, पारसुनेत्रं, नारीकम्, अनुत्तमाम्भसिकम् – इति। आसां तुष्टीनां विपरीता अशक्तिभेदाद् बुद्धिवधा भवन्ति। तद्यथा – अनम्भोऽसलिलममेघ इत्यादिवैपरीत्याद् बुद्धिवधा इति॥५०॥

भाष्यानुवादः

विपर्यय से तुष्टि, सिद्धि आदि का भेदक्रम इस प्रकार जानना चाहिए। वहँ पर तुष्टि ९ प्रकार की कही गई है। आध्यात्मिक्य० आत्मा (अपने) में होने वाली तुष्टियाँ आध्यात्मिक्य कही जाती हैं। वे प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य नामों वाली होती हैं। उनमें से प्रकृति नामवाली (तुष्टि); जैसे – कोई प्रकृति को जानता है और उसके सगुण और निर्गुणरूप (को भी जानता है), इससे उसके तत्त्वरूप कार्य को जानकर तुष्ट हो जाता है, उसको

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

मोक्ष नहीं होता है। यह प्रकृति नामवाली तुष्टि है। उपादान नामवाली; जैसे – कोई तत्त्व को जानकर भी तत्त्व के उपादान आदि का ग्रहण करता है, जैसे – त्रिदण्ड, कमण्डलु और ज्ञान की जिज्ञासा से ही मोक्ष होगा (यह जानना) है, उसका मोक्ष नहीं होता है। यह उपादान नामवाली तुष्टि है। तथा काल वाली; जैसे – समय के अनुसार ही मोक्ष होगा, तत्त्वों के अभ्यास से क्या प्रयोजन है? यह काल नामक तुष्टि है, इसका मोक्ष नहीं होता है। तथा भाग्य वाली; जैसे – भाग्य से ही मोक्ष हो जाएगा, यह भाग्य नामक तुष्टि है। यह चार प्रकार की तुष्टि है। बाह्या० विषयों के उपरम से बाह्य तुष्टि पाँच प्रकार की हैं। जैसे – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि से उपरत होने वाली तुष्टियाँ बाह्य है। अर्जन, रक्षण, क्षय, सङ्ग, हिंसा आदि दोषों के दर्शन से विरक्ति हो जाना है। जैसे – स्वकीय बृष्टि निमित्त पशु का पालन, व्यापार, प्रतिग्रह, सेवा आदि करना पडता है। यह अर्जन दु:ख है। अर्जित वस्तु के रक्षण में होने वाला कष्ट रक्षण दु:ख है। (उस अर्जित वस्तु का) उपभोग के कारण क्षय होने से (जो दु:ख प्राप्त) होता है, अत: (इससे प्राप्त कष्ट) क्षय दु:ख है। तथा विषयों के उपभोग सङ्ग करने से इन्द्रियों की शान्ति (शमन) नहीं होती है, यह (सङ्ग जन्य कष्ट होने से) सङ्गदोष है। भूतों के उपघात के बिना विषयों का उपभोग करना – यह हिंसा दोष है। इस प्रकार इन अर्जन आदि दोषों के दर्शन होने से, पाँच विषयों के उपरम से बाह्य तुष्टि पाँच प्रकार की होती है। इस प्रकार आध्यात्मिकी (चार) और बाह्य (पाँच) – इस प्रकार से ९ तुष्टियाँ हैं। इनके नाम अन्यशास्त्रों में इस प्रकार कहे गये हैं; जैसे – अम्भ, सलिल, मेघ, वृष्टि, सुतम, पारसुनेत्र, नारीक, अनुत्तम और आम्भसिक। इन तुष्टियों के विपरीत (जो भाव हैं), वे अशक्ति के भेद से बुद्धिवध होते हैं। वे जैसे – अनम्भ, असलिल, अमेघ आदि विपरीत से बुद्धिवध होते हैं॥५०॥

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः॥५१॥

अन्वय :- ऊह:, शब्द:, अध्ययनं, त्रय: दु:खविघाता:, सुहृत्प्राप्ति:, दानं च (इति) सिद्धय: अष्टौ (भवन्ति)। सिद्धे: पूर्व: त्रिविध: अङ्कुश:।

अनुवाद :- ऊह, शब्द, अध्ययन, तीन प्रकार के दु:खविघात (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक), सुहृत्प्राप्ति और दान – ये सिद्धियाँ ८ हैं। सिद्धि के पूर्व तीन प्रकार (विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि – ये) अङ्कुश है।

नरहरि:

ऊह: - ऊहनं सत्यासत्ययो:, शब्द: - शब्दज्ञानम्, पञ्चविंशतितत्त्वानां ज्ञानम्, अध्ययनं – स्वाध्यायो वेदादिशास्त्राध्य-यनाद् पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानं, त्रय: दु:खविघाता: - आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदु:खत्रयविघाताय गुरुं समुपगम्य तत उपदेशान्मोक्षं याति, एषा चतुर्थी सिद्धि:। एषैव दु:खत्रयभेदात्त्रिधा कल्पनीयेति षट् सिद्धय:। सुहृत्प्राप्ति: – सुहृत्कारणात् प्राप्तं ज्ञानं, तस्मान्मोक्ष:। दानम् – कश्चिद् भगवतां प्रत्याश्रयौषधित्रिदण्डकुण्डिकादीनां ग्रासाच्छादनादीनां च दानेनोपकृत्य तेभ्यो ज्ञानमवाप्य मोक्षं प्राप्नोति। एवमेते एकैकश: अष्ट सिद्धय: सन्ति, यस्मान्मोक्षो लभ्यत इति॥५१॥

गौडपादभाष्यम्

सिद्धिरुच्यते। ऊहो यथा कश्चिन्नित्यमूहते – किमिह सत्यं? किं परं? किं नि:श्रेयसं? किं कृत्वा कृतार्थ: स्याम्? इति चिन्तयतो ज्ञानमुत्पद्यते, प्रधानादन्य एव पुरुष:, इतोऽन्या बुद्धिरन्योऽहङ्कारोऽन्यानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि, पञ्च महाभूतानीत्येवं तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते, येन मोक्षो भवति, एषा ऊहाख्या प्रथमा सिद्धि:। तथा शब्दज्ञानात् प्रधानपुरुषबुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेन्द्रिय-पञ्चभूतविषयं ज्ञानं भवति, ततो मोक्ष इत्येषा शब्दाख्या सिद्धि:। अध्ययनाद् वेदादिशास्त्राध्ययनात् पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानं प्राप्यते, तेन मोक्षं यातीत्येषा तृतीया सिद्धि:। **दु:खविघातास्त्रय:**। आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविक-दु:खत्रयविघाताय गुरुं समुपगम्य तत उपदेशान्मोक्षं याति, एषा चतुर्थी सिद्धि:। एषैव दु:खत्रयभेदात्त्रिधा कल्पनीयेति षट् सिद्धय:। **तथा सुहृत्प्राप्ति:**। यथा कश्चित् सुहृज्ज्ञानमधिगम्य मोक्षं गच्छति एषा सप्तमी सिद्धि:। **दानं** यथा – कश्चिद् भगवतां प्रत्याश्रयौषधित्रिदण्डकुण्डिकादीनां ग्रासाच्छादनादीनाञ्च दानेनोपकृत्य तेभ्यो ज्ञानमवाप्य मोक्षं याति, एषाष्टमी सिद्धि:। आसामष्टानां सिद्धीनां शास्त्रान्तरे संज्ञा: कृता: - तारं, सुतारं, तारतारं, प्रमोदं, प्रमुदितं, प्रमोदमानं, रम्यकं, सदाप्रमुदितम् इति। आसां विपर्ययात् बुद्धेर्वधा ये विपरीतास्ते असक्तौ निक्षिप्ता:, यथाऽतारमसुतारमतारतारमित्यादि द्रष्टव्यम्। अशक्तिभेदा अष्टाविंशतिरुक्तास्ते, सह बुद्धिवधैरेकादशेन्द्रियवधा इति तत्र तुष्टिविपर्यया नव, सिद्धीनां विपर्यया अष्टौ, एवमेते सप्तदश बुद्धिवधा:, एतै: सहेन्द्रियवधा अष्टाविंशतिरशक्तिभेदा: पश्चात् कथिता इति, विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्धीनामेवोद्देशो, निर्देशश्च कृत इति। किञ्चान्यत् – **सिद्धे: पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविध:**। सिद्धे: पूर्वा या विपर्ययाऽशक्तितुष्टयस्ता एव सिद्धेरङ्कुशस्तद् भेदादेव त्रिविध:। यथा – हस्ती गृहीताङ्कुशेन वशो भवति, एवं विपर्ययाऽशक्तितुष्टिभिर्गृहीतो लोकोऽज्ञानमाप्नोति, तस्मादेता: परित्यज्य सिद्धि: सेव्या, सिद्धेस्तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते, तस्मान्मोक्ष इति॥५१॥

भाष्यानुवादः

अब सिद्धि कही जा रही है। ऊह – जैसे कोई नित्य तर्कणा करता है कि इस संसार में सत्य क्या है? क्या श्रेष्ठ है? क्या अपवर्ग है? क्या करके हम कृतार्थ हो जाएँगे? इस प्रकार का चिन्तन करते हुए ज्ञान उत्पन्न होता है कि प्रधान से भिन्न ही पुरुष है, इससे भिन्न बुद्धि है, इससे भिन्न अहङ्कार है, इससे भिन्न तन्मात्राएँ हैं, इनसे भिन्न इन्द्रियाँ तथा महाभूत भिन्न है – इस प्रकार तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे कि मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यह ऊह नामक प्रथम सिद्धि है। तथा शब्दज्ञान से जो प्रधान, पुरुष, बुद्धि, अहङ्कार, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ तथा पँच महाभूत विषयक ज्ञान होता है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है, यह शब्द नामक सिद्धि है। अध्ययन से जैसे – वेद आदि शास्त्रों के अध्यय से २५ तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने से, उससे मोक्ष प्राप्त हो जाता है, यह तृतीय सिद्धि है। दुःखविघाताः० आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक - इन तीन प्रकार के दुःखों के विनाश के लिए गुरु के पास जाकर, उनके उपदेश से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यह चौथी सिद्धि है। यह दुःखत्रय भेद से तीन होने से इनको तीन प्रकार जानना चाहिए। इस प्रकार ये ६सिद्धियाँ हो गये। तथा सुहृत्प्राप्ति, जैसे कोई सुहृत् के द्वारा ज्ञान को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है। यह सातवीं सिद्धि है। दान, जैसे – कोई ऐश्वर्यशाली व्यक्ति के प्रति आश्रय, औषधि, दण्ड, कमण्डलु, भोजन, आच्छादन आदि दान से उपकार करते हुए उससे तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर मोक्ष पा जाता है। यह आठवीं सिद्धि है। इन आठ सिद्धियों की अन्यशास्त्रों में संज्ञा इस प्रकार की गई है, जैसे – तार, सुतार, तारतार, प्रमोद, प्रमुदित, प्रमोदमान, रम्यक, सदाप्रमुदित। इनके विपर्यय से जो बुद्धिवध होते हैं, वे अशक्ति में स्वीकृत होते हैं, जैसे – अतार, अतारतार आदि। अशक्ति के २८ भेद कहे गए हैं, वे बुद्धिवधों के साथ ग्यारह इन्द्रिय वध होते हैं। उसमें तुष्टि के विपर्यय ९, और सिद्धि के विपर्यय ८ भेद रहते हैं। इस प्रकार ये १७ बुद्धिवध होते हैं, इनके साथ ग्यारह इन्द्रियवध मिलकर २८ प्रकार के अशक्ति के भेद बाद में कहे गए हैं। इस प्रकार विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि के उद्देश और निर्देश कर दिया गया। और फिर क्या? सिद्धेः० सिद्धि के पूर्व जो विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि (ये तीन कहे गए) हैं, वे सिद्धि के लिए अङ्कुश के समान है। जैसे – हस्ती अङ्कुश के ग्रहण करने से वशीभूत होता है, उसी प्रकार व्यक्ति विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि से (वशीभूत) गृहीत होकर अज्ञान को प्राप्त करता है। इसलिए इनको छोड़कर सिद्धि की सेवा करनी चाहिए, सिद्धि से तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है तथा उससे मोक्ष (की प्राप्ति होती है)।।५१।।

न विना भावैः लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिवृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः।।५२।।

अन्वय :- भावैः विना लिङ्गं न (तिष्ठति), लिङ्गेन विना भावनिवृत्तिः न (भवति)। तस्मात् लिङ्गाख्यः भावाख्यः (इति) द्विविधः सर्गः प्रवर्त्तते।

अनुवाद :- भाव (सर्गों) के बिना लिङ्ग (सर्ग) नहीं (रहता है), लिङ्ग (सर्ग) के बिना भाव (सर्ग) की निवृत्ति नहीं (होती है)। इसलिए लिङ्गनामक और भावनामक दो प्रकार के सर्ग प्रवृत्त होते हैं।

नरहरिः

भावैः = प्रत्ययसर्गैः विना लिङ्गम् = तन्मात्रसर्गः न तिष्ठति। लिङ्गेन = तन्मात्रसर्गेण विना भावनिवृत्तिः - भावस्य = प्रत्ययसर्गस्य निवृत्तिः न भवति। तस्माद् द्विविधः = द्विप्रकारेण सर्गः = सृष्टिः प्रवर्त्तते = प्रवृत्ता भवति। यथा लिङ्गाख्यः भावाख्यश्चेति।।५२।।

गौडपादभाष्यम्

अथ यदुक्तं भावैरधिवासितं लिङ्गं, तत्र भावाः धर्मादयोऽष्टावुक्ता बुद्धिपरिणामाः, विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्धिपरिणताः, स भाग्याख्यः प्रत्ययसर्गो, लिङ्गश्च = तन्मात्रसर्गश्चतु-र्दशभूतपर्यन्तः उक्तः। तत्रैकेनैव सर्गेण पुरुषार्थसिद्धौ किमुभयविधसर्गेणेत्यत आह – भावैः = प्रत्ययसर्गैर्विना लिङ्गं न = तन्मात्रसर्गो न, पूर्वपूर्वसंस्काराऽदृष्टकारितत्वा-दुत्तरदेहलम्भस्य। लिङ्गेन = तन्मात्रसर्गेण च विना भावनिर्वृत्तिर्न। स्थूलसूक्ष्मदेह-साध्यत्वाद्धर्मादेः, अनादित्वाच्च सर्गस्य बीजाङ्कुरवदन्योऽन्याश्रयो न दोषाय, तत्तज्जातीयापेक्षितत्वेऽपि तत्तद्व्यक्तीनां परस्परानपेक्षितत्वात्। तस्माद् भावाख्यो लिङ्गाख्यश्च द्विविधः प्रवर्त्तते सर्ग इति।।५२।।

भाष्यानुवादः

अब जो कहा गया है 'भावों से अधिवासित होकर सूक्ष्मशरीर संसरण करता है', वहाँ भाव धर्म आदि आठ कहे गये हैं, जो बुद्धि के परिणाम हैं तथा विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धिरूप में परिणत होते हैं, वह ही भाव नामक प्रत्ययसर्ग (कहा जाता) है और सूक्ष्मशरीर तन्मात्रसर्ग चौदह भुवन पर्यन्त कहा गया है। (अब यह प्रश्न उठता है कि) यदि उसमें एक ही सर्ग से पुरुषार्थ की सिद्धि हो जाती है, तो दोनों प्रकार के सर्गों को मानने से लाभ क्या है? (अब उत्तर में कहते हैं कि) भावै० प्रत्ययसर्ग के बिना तन्मात्रसर्ग नहीं रहता है, क्योंकि उत्तर-उत्तर शरीर की प्राप्ति पूर्व-पूर्व संस्कार तथा अदृष्ट कारित होता है। तथा तन्मात्रसर्ग के बिना भाव (सर्ग) की निवृत्ति नहीं होती है। धर्म आदि के स्थूल-सूक्ष्म देह साध्य होने से और अनादि होने से सर्ग का बीज और अङ्कुर के सदृश जो

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

अन्योऽन्याश्रय दोष होता है, वह यहाँ पर दोष नहीं है, क्योंकि तत्-तत् जाति की अपेक्षा रहते हुए भी तत्-तत् व्यक्ति में परस्पर अपेक्षा नहीं रहती है। इसलिए भाव नामक और लिङ्ग नामक दो प्रकार का सर्ग प्रवृत्त होता है।।५२।।

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्चपञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः।।५३।।

अन्वय :- दैवः अष्टविकल्पः, तैर्यग्योनश्च पञ्चधा, मानुषश्च एकविधः भवति। (एवं) समासतः भौतिकः सर्गः (उच्यते)।

अनुवाद :- दैव (सर्ग) ८ विकल्पवाला है, तिर्यग् योनि पाँच प्रकार की है और मनुष्य (सर्ग) एक प्रकार का है। (इस प्रकार) सङ्क्षेप से (यह) भौतिक सर्ग कहलाता है।

नरहरिः

दैवः - देवे भव, देवसम्बन्धी वा सर्गः अष्टविकल्पः = अष्टप्रकारम्। यथा – ब्राह्मं, प्राजापत्यं, सौम्यम्, ऐन्द्रं, गान्धर्वं, याक्षं, राक्षसं, पैशाचं चेति। तिर्यग्योनः पशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावराणि भूतानि पञ्चधा = पञ्चप्रकारेण भवति, मानुषः = मनुष्यसर्गः एकविधः = एकप्रकारकः, एवं समासतः चतुर्दश भौतिकसर्गः उच्यते।।५३।।

गौडपादभाष्यम्

किञ्चान्यत् – तत्र **अष्टविकल्पो दैवः** = दैवमष्टप्रकारं – प्राजापत्यं, सौम्यम्, ऐन्द्रं, गान्धर्वं, याक्षं, राक्षसं, पैशाचमिति। पशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावराणि भूतान्येवं पञ्चविध स्तैरश्चः। मानुषयोनिरेकैव इति चतुर्दश भूतानि।।५३।।

भाष्यानुवादः

और फिर दैव सर्ग आठ प्रकार का है। जैसे – प्राजापत्य, सौम्य, ऐन्द्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच। पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप और स्थावर आदि भूत पाँच प्रकार के (तिर्यक् योनि) है। मनुष्य योनि एक प्रकार का है। इस प्रकार यह १४ प्रकार का भौतिक सर्ग है।।५३।।

ऊर्ध्वं सत्त्वविशालस्तमोविशालश्च मूलतः सर्गः।
मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः।।५४।।

अन्वय :- ऊर्ध्वं सत्त्वविशालः, मूलतः तमोविशालः मध्ये च रजोविशालः (एवमयं) सर्गः ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः।

अनुवाद :- (सर्ग में) ऊपर (दैव सर्ग में) सत्त्वगुण उत्कट (होता है), मूल से (तिर्यग् सर्ग में) तमोगुण उत्कट (होता है) और मध्य (मनुष्य सर्ग) में रजोगुण उत्कट (होता है)। (इस प्रकार से) यह सर्ग ब्रह्म से लेकर स्थाणु तक है।

नरहरिः

ऊर्ध्वम् – अष्टसु देवस्थानेषु दैवसर्गेषु सत्त्वविशलः = सत्त्वविस्तारः सत्त्वगुणौत्कर्ष्यं वा विद्यते। मूलतः - पश्चादिषु तिर्यग्सर्गेषु तमोविशालः - तमोविस्तारः तमोगुणस्यौत्कर्ष्यं विद्यते, तथा च मध्ये = द्वयोः ऊर्ध्वमूलयोः सर्गयोः मध्ये मानुषः = मनुष्यसर्गः रजोविशालः = रजोगुणौत्कर्ष्यं। एवं सर्गः ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तः - ब्रह्मादिस्थावरान्तरमिति।।५४।।

गौडपादभाष्यम्

त्रिष्वपि लोकेषु गुणत्रयमस्ति, तत्र कस्मिन् किमधिकमित्युच्यते – **ऊर्ध्वमिति**। अष्टसु देवस्थानेषु सत्त्वविशालः सत्त्वविस्तारः, सत्त्वोत्कर्ष इति, तत्रापि रजस्तमसी स्तः। **तमोविशालश्च मूलतः**। पश्वादिषु स्थावरान्तेषु सर्वः सर्गस्तमसाधिक्येन व्याप्तः। तत्रापि सत्त्वरजसी विद्येते। **मध्ये** = मानुषे रज उत्कटं, तत्रापि सत्त्वतमसी विद्येते, तस्माद् दुःखप्रायाः मनुष्याः। एवं **ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः**। ब्रह्मादिस्थावरान्ताः इत्यर्थः। एवमभौतिकः सर्गो = लिङ्गसर्गो, भावसर्गः। भूतसर्ग = देवमानुषतैर्यग्योना इति। एष प्रधानकृतः षोडशविधः सर्गः।।५४।।

भाष्यानुवादः

तीनों लोकों में भी तीनों गुण विद्यमान हैं। उसमें से किस में किस गुण की अधिकता है, उसे कहते हैं - आठ देवस्थानों में सत्त्वगुण की उत्कर्षता है। यहाँ रजोगुण और तमोगुण भी रहते हैं। तमोविशाल० पशु आदि स्थावर पर्यन्त समस्त सर्ग तमोगुण की अधिकता से व्याप्त है। यहाँ पर भी सत्त्वगुण और रजोगुण रहते हैं। मध्य में मनुष्यसर्ग में रजोगुण उत्कटता से व्याप्त है। यहाँ पर भी सत्त्वगुण और तमोगुण विद्यमान है। इसलिए मनुष्य प्रायशः दुःखी रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्म से लेकर स्थावर तक सृष्टि है। इस प्रकार लिङ्गसर्ग और भावसर्ग अभौतिक सर्ग है; देव, मनुष्य और तिर्यग् – ये भूतसर्ग हैं। यह प्रधान के द्वारा १६ प्रकार की सृष्टि होती है।।५४।।

चित्रम् :-

ISBN No. : 978-81-217-0247-8
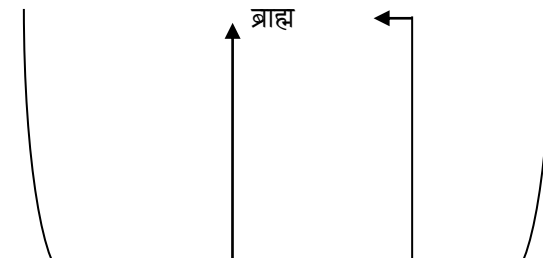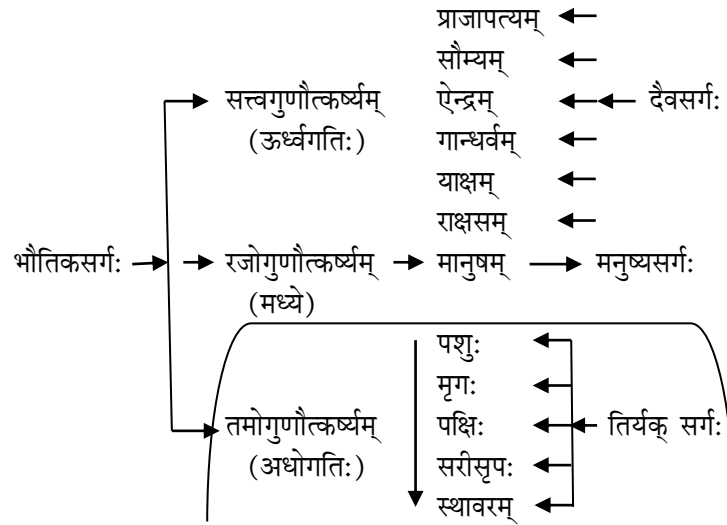
तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः।
लिङ्गस्याऽविनिवृत्तेस्तस्माद् दुःखं स्वभावेन॥५५॥

अन्वय :- तत्र लिङ्गस्य अविनिवृत्तेः चेतनः पुरुषः जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति। तस्मात् स्वभावेन दुःखं (भवति)।

अनुवाद :- उन (सृष्टियों) में लिङ्गशरीर के विनिवृत्त न होने तक चेतन पुरुष जरा और मरण जन्य दुःख को प्राप्त करता है। इसलिए स्वभाव से ही (सब कुछ) दुःख होता है।

नरहरिः

तत्र – देवमानुषतिर्यग्योनिषु लिङ्गस्य = सूक्ष्मशरीरस्य अविनिवृत्तेः = विनिवृत्तिं यावत् विशेषेण निवृत्तिः विनिवृत्तिः, तद्यावत् चेतनः = चैतन्ययुक्तः पुरुषः जरामरणकृतं – जराकृतं मरणकृतं च दुःखं प्राप्नोति। तस्मात् स्वभावेन दुःखं, दुःखमेव सर्वं विवेकिन इति योगसूत्रादित्याशयः॥५५॥

गौडपादभाष्यम्

तत्रेति। तेषु देवमानुषतिर्यग्योनिषु जराकृतं मरणकृतञ्चैव दुःखं चेतनः = चैतन्यवान् पुरुषः प्राप्नोति, न प्रधानं न बुद्धिर्नाहङ्कारो, न तन्मात्राणीन्द्रियाणि, महाभूतानि च। कियन्तं कालं पुरुषो दुःखं प्राप्नोतीति, तद्विविनक्ति – **लिङ्गस्याऽविनिवृत्तेरिति**। यत्तन्महदादिलिङ्गशरीरेणाविश्य तत्र व्यक्तीभवति, तद्यावन्न निवर्त्तते संसारशरीरमिति, तावत् सङ्क्षेपेण त्रिषु स्थानेषु पुरुषो जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति। लिङ्गस्याऽविनिवृत्तेः = लिङ्गस्य विनिवृत्तिं यावत्। लिङ्गनिवृत्तौ मोक्षो, मोक्षप्राप्तौ नास्ति दुःखमिति। तत् पुनः केन निवर्त्तते? यदा पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानं स्यात् सत्त्वपुरुषान्यथाख्यातिलक्षणम्, 'इदं प्रधानमियं बुद्धिरयमहङ्कार इमानि पञ्चतन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि. पञ्चमहाभूतानि एभ्योऽन्यः पुरुषो विसदृशः' इत्येवं ज्ञानाल्लिङ्गनिवृत्तिस्ततो मोक्ष इति॥५५॥

भाष्यानुवादः

उन देव, मनुष्य तथा तिर्यग्योनियों में बार्धक्य से उत्पन्न और मृत्यु कृत दुःख को चेतन से युक्त पुरुष प्राप्त करता है, न कि प्रधान, न बुद्धि, न अहङ्कार, न तन्मात्राएँ, न इन्द्रियाँ और न महाभूत (प्राप्त करते हैं)। कितने समय तक पुरुष दुःख प्राप्त करता है, उसका विवेचन करते हैं कि लिङ्ग० जो महदादि लिङ्गशरीर में प्रवेश करके उस (स्थूलशरीर) में व्यक्त होता है, जब तक वह संसारशरीर निवृत्त नहीं होता है, तब तक सङ्क्षेप से उन तीन स्थानों में पुरुष जरा और मरण जन्य दुःख को प्राप्त करता है, अर्थात् जब तक लिङ्गशरीर की निवृत्ति न हो जाए तब तक। लिङ्गशरीर के निवृत्ति होने पर मोक्ष होता है, तथा मोक्ष के प्राप्त होने पर दुःख नहीं होता है। फिर वह (स्थूलशरीर) कैसे निवृत्त होता है? जब २५ तत्त्वों का ज्ञान हो जाता है, जो कि सत्त्वपुरुषान्यथाख्यातिलक्षण वाला है; जैसे – यह प्रधान है, यह बुद्धि है, यह अहङ्कार है, ये पाँच तन्मात्राएँ हैं, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत हैं; इनसे भिन्न विसदृश पुरुष है – इस प्रकार के ज्ञान से लिङ्गशरीर निवृत्त हो जाता है। तथा उससे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है॥५५॥

इत्येष प्रकृतिकृतौ महदादिविशेषभूतपर्यन्तः।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः॥५६॥

अन्वय :- इति एष प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं महदादिविशेषभूतपर्यन्तः प्रकृतिकृतौ स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः।

अनुवाद :- इस प्रकार यह सर्ग प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिए महत्तत्त्व से लेकर महाभूत पर्यन्त, प्रकृति के द्वारा अपने कार्य की तरह दूसरे (पुरुष) का कार्य करता है।

नरहरिः

इति – एवमेषः सर्गः प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं – प्रत्येकं पुरुषस्य विशेषेण मोक्षनिमित्तं महदादिविशेषभूतपर्यन्तः - महत्तत्त्वतः विशेषभूतपर्यन्तः प्रकृतिकृतौ – प्रकृत्या कृतः,

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

प्रकृतिकरणे प्रकृतिविक्रियायां स्वार्थ इव परार्थ: - परपुरुषाय इदमिति आरम्भ: - सर्ग: जायते॥५६॥

गौडपादभाष्यम्

प्रकृते: किंनिमित्तमारम्भ इत्युच्यते - **इत्येष** – परिसमाप्तौ निर्देशे च। प्रकृतिकृतौ प्रकृतिकरणे, प्रकृतिविक्रियायां, य आरम्भो महदादिविशेषभूतपर्यन्त: प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारस्तस्मात् तन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि, तन्मात्रेभ्य: पञ्चमहाभूता-नीत्येष, प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं = पुरुषं पुरुषं प्रति, देवमनुष्यतिर्यग्भावं गतानां विमोक्षार्थमारम्भ:। कथम्? **स्वार्थ इव परार्थ आरम्भ:**। यथा कश्चित् स्वार्थं त्यक्त्वा मित्रकार्याणि करोति, एवं प्रधानम्। पुरुषोऽत्र प्रधानस्य न किञ्चित् प्रत्युपकारं करोति, स्वार्थ इव। न च स्वार्थ:, परार्थ एव। अर्थ: = शब्दादिविषयोपलब्धिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिश्च। 'त्रिषु लोकेषु शब्दादिविषयै: पुरुषो योजयितव्या:, अन्ते च मोक्षेणे'ति प्रधानस्य प्रवृत्ति:। तथा चोक्तम् - 'कुम्भवत् प्रधानं, पुरुषार्थं कृत्वा निवर्त्तते' इति॥५६॥

भाष्यानुवाद:

प्रकृति से किस प्रयोजन (को स्वीकार करते हुए) यह प्रपञ्च आरम्भ होता है। इसपर कहते हैं इत्येष० यहाँ एष पद परिसमाप्ति और निर्देश सूचक है। प्रकृति० प्रकृति के करण में अर्थात् प्रकृति के द्वारा की गई सर्गरूप क्रिया में जो आरम्भ है, प्रकृते:० प्रकृति से महत्, महत् से अहङ्कार, उससे तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ, तन्मात्राओं से पाँच महाभूत – इस प्रकार (ये महद् से लेकर विशेषभूत पर्यन्त है)। प्रति० देव, मनुष्य और तिर्यग्भाव को प्राप्त किये हुए प्रत्येक पुरुष के प्रति मोक्ष के लिए यह आरम्भ है। कैसे? स्वार्थ० जैसे कोई अपने स्वार्थ को छोड़कर मित्र का कार्य (जो परार्थ) उसको करता है, उसी प्रकार प्रकृति भी स्वार्थ की अपेक्षा न रखती हुई पुरुष के मोक्ष के प्रति प्रवृत्त होती है। यहाँ पर पुरुष प्रकृति का कोई प्रत्युपकार नहीं करता है। इस अर्थ से तात्पर्य है कि शब्द आदि विषयों की उपलब्धि और गुणपुरुषान्तर की उपलब्धि। तीनों लोकों में शब्द आदि विषयों के साथ पुरुषों को जोड़ना चाहिए, और अन्त में मोक्ष करवा देना चाहिए – यह ही प्रधान की प्रवृत्ति है। और भी कहा गया है – (जैसे कुम्भकार घड़ा बनाकर निवृत्त हो जाता है) ठीक् उसी घड़े की तरह प्रकृति भी पुरुषार्थ का सम्पादन करके निवृत्त हो जाती है॥५६॥

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्ति: प्रधानस्य॥५७॥

अन्वय :- यथा वत्सविवृद्धिनिमित्तम् अज्ञस्य क्षीरस्य प्रवृत्ति:, तथा पुरुषविमोक्षनिमित्तं प्रधानस्य प्रवृत्ति: (जायते)।

अनुवाद :- जिस प्रकार बछड़े के वर्द्धन हेतु अचेतन (जड़) दुग्ध की (गाय के स्तन से) प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार पुरुष के मोक्ष के लिए (अचेतन) प्रकृति की प्रवृत्ति होती है।

नरहरि:

यथा वत्सविवृद्धिनिमित्तं – वत्सस्य विवृद्ध्यर्थं = पोषणार्थं पुष्ट्यर्थं वाऽचेतनस्य जडस्य क्षीरस्य – दुग्धस्य मातु: स्तनत: प्रवृत्ति: दृश्यते, तथा पुरुषविमोक्षनिमित्तं पुरुषस्य विशिष्टमुक्तिहेतो: अचेतनाया: प्रकृत्या: प्रवृत्ति: प्राप्यते॥५७॥

गौडपादभाष्यम्

अत्रोच्यते् – अचेतनं प्रधानं, चेतन: पुरुष: इति - 'मया त्रिषु लोकेषु शब्दादिभिर्विषयै: पुरुषो योज्योऽन्ते मोक्ष: कर्त्तव्य:' इति कथं चेतनवत् प्रवृत्ति:? सत्यम्। किन्त्वचेतनामपि प्रवृत्तिर्दृष्टा, निवृत्तिश्च यस्मादित्याह। यथा तृणोदकं गवा भक्षितं क्षीरभावेन परिणम्य वत्सविवृद्धिं करोति, पुष्टे च वत्से निवर्त्तते, एवं पुरुषविमोक्षनिमित्तं प्रधानस्येति, अज्ञस्य प्रवृत्तिरिति॥५७॥

भाष्यानुवाद:

अब यहाँ पर कहा जा रहा है कि यदि अचेतन प्रकृति है और चेतन पुरुष है, तो तीनों लोकों में मेरे द्वारा शब्दादि विषयों के साथ संयुक्त करना चाहिए, और अन्त में मोक्ष भी करना चाहिए – यह कैसे चेतन की तरह (प्रकृति की) प्रवृत्ति होती है? (इस के उत्तर में कहते हैं कि जो आपने कहा) वह सत्य ही है। परन्तु अचेतनों की भी प्रवृत्ति देखी जाती है, इसलिए ऐसा कहा गया है। जैसे – गाय के द्वारा खाया हुआ घास, जल इत्यादि दुग्ध के रूप में परिणत होकर बछड़े की विबृद्धि करता है, और बछड़े के पुष्ट होने पर निवृत्त हो जाता है, उसी प्रकार पुरुष के लिए अचेतन प्रकृति भी प्रवृत्त होती है॥५७॥

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्त्तते लोक:।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्त्तते तद्वदव्यक्तम्॥५८॥

अन्वय :- यथा लोक: औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं क्रियासु प्रवर्त्तते, तद्वत् अव्यक्तं पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्त्तते।

अनुवाद :- जिस प्रकार लोग (अपनी) उत्कण्ठा के निवारण हेतु कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, उसी प्रकार अव्यक्त तत्त्व भी पुरुष के मोक्ष के लिए प्रवृत्त होता है।

नरहरि:

यथा लोकः औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थम् = उत्सुकतायाः भावः औत्सुक्यं, तस्य निवृत्त्यर्थं = निवारणाय क्रियासु = कार्येषु प्रवर्त्तते = प्रवृत्तं भवतीति। तद्वत् = तत्सदृशमव्यक्तम् = प्रधानं पुरुषस्य विमोक्षार्थं = विशिष्टगुणोपेतमोक्षनिमित्तं प्रवर्त्तत इति॥५८॥

गौडपादभाष्यम्

किञ्च – यथा लोक इष्टौत्सुक्ये सति तस्य निवृत्त्यर्थं क्रियासु प्रवर्त्तते = गमनाऽगमनक्रियासु, कृतकार्यो निवर्त्तते, तथा पुरुषस्य विमोक्षर्थं = शब्दादिविषयोपलब्धिलक्षणं, गुणपुरुषान्तरोपलब्धिलक्षणञ्च द्विविधमपि पुरुषार्थं कृत्वा, प्रधानं निवर्त्तते॥५८॥

भाष्यानुवादः

और, जैसे – मनुष्य अभीष्ट (वस्तु के प्राप्ति) के लिए गमनागमनादि क्रियाओं में प्रवृत्त होता है, तथा कृतकार्य होने पर निवृत्त होता है, तथा कृतकार्य होने पर निवृत्त हो जाता है, उसी प्रकार पुरुष के मोक्ष के लिए अर्थात् शब्दादि विषयों की उपलब्धिरूप और गुणपुरुषान्तर की उपलब्धिरूप – दोनों प्रकार के पुरुषार्थ का निष्पादन करते हुए प्रधानतत्त्व निवृत्त हो जाता है॥५८॥

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्त्तते[४] प्रकृतिः॥५९॥

अन्वय :- यथा नर्त्तकी रङ्गस्य दर्शयित्वा नृत्यात् निवर्त्तते, तथा प्रकृतिः पुरुषस्य (कृते) आत्मानं प्रकाश्य निवर्त्तते।

अनुवाद :- जिस प्रकार नर्त्तकी रङ्गमञ्च पर (अपना नृत्य) दिखाकर नृत्य से निवृत्त होती है, उसी प्रकार प्रकृति पुरुष के लिए अपने आपको दिखाकर निवृत्त हो जाती है।

नरहरिः

यथा नर्त्तकी – नर्त्तनं या करोति सा रङ्गस्य = रङ्गभूमेः श्रृङ्गारादिरसैः रत्यादिभिः भावैः गीतादिभिश्च रङ्गस्य प्रेक्षकानां कृते दर्शयित्वा नृत्यात् = स्वाभिनयात् निवर्त्तते = निवृत्ता भवति। तथा प्रकृतिः पुरुषस्य कृते आत्मानं प्रकाश्य बुद्ध्यहङ्कारादिभेदेन दर्शयित्वा निवर्त्तत इति॥५९॥

गौडपादभाष्यम्

[४]. 'निवर्त्तते' इति क्वचित् गौडपादसम्मतः पाठः स्वीक्रियते।

किञ्चान्यत् – यथा नर्त्तकी श्रृङ्गारादिरसैः रतिहासादिभावैश्च निबद्धानि गीतवादित्रनृत्यानि रङ्गस्य दर्शयित्वा कृतकार्या नृत्यान्निवर्त्तते, तथा प्रकृतिरपि पुरुषस्यात्मानं प्रकाश्य = बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेन्द्रियमहाभूतभेदेन निवर्त्तते॥५९॥

भाष्यानुवादः

और फिर; जैसे – नर्त्तकी श्रृङ्गारादि रसों से और इतिहासादि भावों से निबद्ध गीत, वादित्र, नृत्य आदि को उपस्थित प्रेक्षकों को दिखाकर, कृतकार्य होकर नृत्य से निवृत्त हो जाती है। तथा प्रकृति भी पुरुष को बुद्धि, अहङ्कार, तन्मात्र, इन्द्रिय, महाभूत भेदसे (अपने को) दिखाकर स्वयं निवृत्त हो जाती है॥५९॥

नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकं चरति॥६०॥

अन्वय :- नानाविधैः उपायैः उपकारिणी गुणवती (प्रकृतिः) अनुपकारिणः अगुणस्य सतः तस्य पुंसः अर्थम् अपार्थकं चरति।

अनुवाद :- अनेक प्रकार के उपायों से उपकार करने वाली त्रिगुणात्मिका (यह प्रकृति) उपकार न करने वाला निर्गुण नित्य उस पुरुष के प्रयोजन को स्वार्थरहित होकर सिद्ध करती है।

नरहरिः

नानाविधैः = अनेकप्रकारैः उपायैः उपकारिणी – उपकारं या करोति सा गुणवती – गुणः अस्यास्तीति स्त्रीयां त्रिगुणात्मिका इयं प्रकृतिः अनुपकारिणः - उपकारं यः न करोति तस्य अगुणस्य – गुणरहितस्य सतः - नित्यस्य पुंसः = पुरुषस्य अर्थं = प्रयोजनं भोगापवर्गरूपमपार्थकं = स्वार्थरहिता सति चरति = सम्पादयतीति॥६०॥

गौडपादभाष्यम्

कथं को वाऽस्याः निवर्त्तको हेतुः? तदाह – **नानाविधैरुपायैः** प्रकृतिः पुरुषस्योपकरिण्यनुपकरिणः पुंसः। कथम्? देवमानुषतिर्यग्भावेन, सुखदुःखमोहात्मक-भावेन, शब्दादिविषयभावेन एवं नानाविधैरुपायैरात्मानं प्रकाश्य – अहमन्यो त्वमन्य इति निवर्त्तते। सतो नित्यस्य **तस्यार्थमपार्थकं चरति =** कुरुते। यथा कश्चित् परोपकारी सर्वस्योपकुरुते, नाऽत्मनः प्रत्युपकारमीहते, एवं प्रकृति पुरुषार्थं चरति = करोत्यपार्थकम्। पश्चादुक्तमात्मानं प्रकाश्य निवर्त्तते॥६०॥

भाष्यानुवादः

कैसे अथवा कौन इसके निवर्त्तक हेतु है? तब कहते हैं – नानाविधै० अनेकप्रकार के उपायों से पुरुष का उपकारिणी प्रकृति अनुपकारी पुरुष का पुरुषार्थ साधन करती है; कैसे? देव, मनुष्य और तिर्यग् भाव से अर्थात् सुख, दुःख और मोह रूपसे (पुरुष के सामने) अपने आपको प्रकाशित करते हुए – मैं भिन्न हूँ, तुम भिन्न हो – इस प्रकार दिखाकर निवृत्त हो जाती है। सतो० उस नित्य अनुपकारी पुरुष का पुरुषार्थ सम्पादन करती है। जैसे – कोई परोपकारी पुरुष सबका उपकार करता है, अपने आपके लिए प्रत्युपकार नहीं चाहता है, इस प्रकार प्रकृति अनुपकारी पुरुष का पुरुषार्थ को सिद्ध कर देती है। पश्चात् अपने आपको प्रकाशित करते हुए निवृत्त हो जाती है॥६०॥

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य॥६१॥

अन्वय :- प्रकृतेः सुकुमारतरं किञ्चित् न अस्ति इति मे मतिः भवति, या दृष्टा अस्मि इति पुनः पुरुषस्य दर्शनं न उपैति।

अनुवाद :- प्रकृति से कोमलतर कुछ नहीं है – इस प्रकार मेरी (पुरुष की) बुद्धि होती है। जो (मैं) देख ली गई हूँ – इस प्रकार (विचार कर) फिर पुरुष के दर्शनपथ को नहीं आती है।

नरहरिः

प्रकृतेः = प्रधानात् सुकुमारतरं किञ्चित् नास्तीति मे = पुरुषस्य मतिः = बुद्धिः भवति। या = प्रकृतिः दृष्टा अस्मीति विचार्य पुनः पुरुषस्य दर्शनं = दृष्टिपथं (भोग्यपथं) न उपैति = गच्छतीत्यर्थः॥६१॥

गौडपादभाष्यम्

निवृत्ता च किं करोतीत्याह - लोके **प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीत्येवं मे मतिर्भवति**, येन परार्थ एव मतिरुत्पन्ना। कस्मात्? अहमनेन पुरुषेण दृष्टास्मीत्यस्य पुंसः पुनर्दर्शनं नोपैति। पुरुषस्याऽत्मदर्शनमुपयातीत्यर्थः। तत्र सुकुमारतरं वर्णयति। केचिदीश्वरं कारणं ब्रूवते –

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं नरकमेव वा॥

अपरे स्वभावकारणिकां ब्रूवते – केन शुक्लीकृताः हंसाः, मयूराः केन चित्रिताः। स्वभावेनैव इति। अत्र सांख्याचार्या आहुः - निर्गुणत्वादीश्वरस्य कथं सगुणः प्रजा जायेरन्। कथं वा पुरुषान्निर्गुणादेव? तस्मात् प्रकृतेर्युज्यते। यथा शुक्लेभ्य-स्तन्तुभ्यः शुक्ल एव पटो भवति, कृष्णेभ्यः कृष्ण एव इति। एवं त्रिगुणात् प्रधानात् त्रयो लोकास्त्रिगुणाः समुत्पन्ना इति गम्यते। निर्गुण ईश्वरः सगुणानां लोकानां तस्मादुत्पत्तिरयुक्तेति। अनेन पुरुषो व्याख्यातः। तथा – केषाञ्चित् मते कालः कारणमिति। उक्तञ्च –

कालः पचति भूतानि कालः संहरते जगत्।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥

व्यक्ताऽव्यक्तपुरुषास्त्रयः पदार्थाः तेन कालोऽन्तर्भूतोऽस्ति। स हि व्यक्तः, सर्वकर्तृत्वात्, कालस्यापि प्रधानमेव कारणम्, स्वभावोऽप्यत्रैव लीनः। तस्मात् कालो न कारणम्, नापि स्वभाव इति, तस्मात् प्रकृतिरेव कारणम्। न प्रकृतेः कारणान्तरमस्तीति। **न पुनर्दर्शनमुपयति पुरुषस्य**। अतः प्रकृतेः सुकुमारतरं = सुभोग्यतरं, न किञ्चिदीश्वरादिकारणमस्तीति मे मतिर्भवति। तथा च लोके रूढम्॥६१॥

भाष्यानुवादः

निवृत्त होने पर (प्रकृति) क्या करती है? इस लोक में प्रकृति से सुकुमारतर कुछ नहीं है, इस प्रकार बुद्धि होती है, जिससे परार्थ में भी मति उत्पन्न होती है। कैसे? मैं इस पुरुष के द्वारा देख ली गई हूँ, (इस प्रकार) पुनः पुरुष के दर्शनपथ को नहीं आती है। पुरुष के लिए वह अदर्शन हो जाती है। उसमें (प्रकृति के) सुकुमारतर का वर्णन करते हैं। कुछ लोग (इस सृष्टि के विषय में) ईश्वर को कारण कहते हैं। जैसे –

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मानः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं नरकमेव वा॥

अर्थात् 'यह जीव अज्ञ है और अपने सुख तथा दुःख को भोगने में स्वयं असमर्थ होता हुआ ईश्वर के द्वारा प्रेरित होकर स्वर्ग अथवा नरक को जाता है।'

दूसरे स्वभाव को कारण मानते हैं; जैसे – किस के द्वारा हंस शुक्ल किये गए हैं? मयूर किससे चित्रित है? (इस प्रकार प्रश्न होने पर उत्तर दिया जाता है कि) स्वभाव से ही (हंस सफेद है, मयूर चित्रित है)। यहाँ पर साङ्ख्याचार्य प्रश्न करते हैं कि ईश्वर के निर्गुणत्व होने से उनसे सगुण प्रजा कैसे उत्पन्न हुए हैं? अथवा निर्गुण पुरुष से (वे कैसे उत्पन्न हुए हैं)। इसलिए प्रकृति ही युक्तियुक्त है (जिससे यह प्रपञ्च उत्पन्न हुआ है)। जैसे – शुक्ल तन्तु से शुक्ल पट एवं कृष्ण तन्तु से कृष्ण पट ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार त्रिगुणात्मक प्रकृति से त्रिगुणात्मक लोक उत्पन्न हुआ है, यही उचित है। ईश्वर निर्गुण है, सगुण लोकों का उससे उत्पन्न होना अयुक्त ही है। इससे पुरुषतत्त्व व्याख्यात है। तथा कुछ लोगों के मत में काल कारण है। और कहा भी गया है –

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

कालः पचति भूतानि कालः संहरते जगत्।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः।।

अर्थात् 'काल ही प्राणियों को परिणाम में परिवर्त्तन करता है, काल ही जगत् का संहार करता है। काल के सोने (निमेष होने) पर सोते हैं और काल के ही जागने (उन्मेष होने) पर जागते हैं। इसलिए काल अनतिक्रमणीय है।'

व्यक्त, अव्यक्त और पुरुष – ये तीन पदार्थ हैं, इनसे ही काल अन्तर्भूत है। वह व्यक्त ही है, सब के कर्त्ता होने से काल भी प्रधान कारण है। स्वभाव भी इसमें अन्तर्भूत हो जाता है। इसलिए काल कारण नहीं है, न तो स्वभाव। इसलिए प्रकृति ही कारण, प्रकृति से कोई अन्य कारण विद्यमान नहीं है। वह प्रकृति पुनः पुरुष के दर्शनपथ को नहीं आती है। अतः प्रकृति से सुकुमारतर अर्थात् सुभोग्यतर और कोई ईश्वरादि कारण नहीं है – इस प्रकार मेरी पुरुष की बुद्धि होती है। और लोक में यह प्रसिद्ध भी है।।६१।।

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः।।६२।।

अन्वय :- तस्मात् अद्धा न बध्यते, न मुच्यते, न अपि कश्चित् संसरति। नानाश्रया प्रकृतिः बध्यते मुच्यते संसरति च।

अनुवाद :- इसलिए पुरुष न बँधता है, न मुक्त होता है, न ही संसरण करता है। अनेक (उपाधि) का आश्रय करने वाली प्रकृति बँधती है, मुक्त होती है और संसरण करती है।

नरहरि:

तस्मात् पुरुषः न बध्यते = बन्धनं प्राप्नोति, न मुच्यते = मुक्तः भवति, न संसरति = संसरणं करोतीति। तर्हि कः संसरणं करोतीति? उच्यते – नानाश्रया = अनेकोपाधिमाश्रित्य दैवमानुषतिर्यग्योन्याश्रित्य प्रकृतिः बध्यते = बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेन्द्रियभूतस्वरूपेण मुच्यते = मुक्ता भवति, संसरति = नानाविधेषु शरीरेषु संसरणं करोतीति।।६२।।

गौडपादभाष्यम्

पुरुषः मुक्तः, पुरुषः संसारीति – चोदिते आह – तस्मात् = कारणात्, **पुरुषो न बध्यते, नापि मुच्यते, नापि संसरति**, यस्मात् कारणात् प्रकृतिरेव नानाश्रया = दैवमानुषतिर्यग्योन्याश्रया, बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेन्द्रियभूतस्वरूपेण बध्यते, मुच्यते, संसरति चेति। अथ मुक्त एव स्वभावात् स सर्वगतश्च कथं संसरति? अप्राप्तप्रापणार्थं संसरणमिति, तेन पुरुषो बध्यते, पुरुषो मुच्यते, पुरुषः संसरतीति व्यपदिश्यते, येन संसारित्वं विद्यते। सत्त्वपुरुषान्तरज्ञानात्तत्वं पुरुषास्याऽभिव्यज्यते। तदभिव्यक्तौ केवलः, शुद्धः, मुक्तः, स्वरूपप्रतिष्ठः पुरुष इति। अथ यदि पुरुषस्य बन्धो नास्ति, ततो मोक्षोऽपि नास्ति? अत्रोच्यते – प्रकृतिरेवात्मानं बध्नाति, मोचयति च, यत्र सूक्ष्मशरीरं तन्मात्रकं, त्रिविधकरणोपेतं तत् त्रिविधेन बन्धेन बध्यते। उक्तञ्च –

प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेण च।
दक्षिणेन तृतीयेन बद्धो नान्येन मुच्यते।।

तत् सूक्ष्मं शरीरं धर्माऽधर्मसंयुक्तम्।।६२।।

भाष्यानुवाद:

'पुरुष मुक्त है, पुरुष संसारी है' इस प्रकार व्यवहार होने पर कहते हैं तस्मात्० उसी कारण से पुरुष न बँधता है, न मुक्त होता है, न संसरण करता है; क्योंकि जिस कारण से प्रकृति अनेक का आश्रय करते हुए, जैसे – देव, मनुष्य और तिर्यग्योनि का आश्रय लेकर बुद्धि, अहङ्कार, तन्मात्र, इन्द्रिय और महाभूत स्वरूप से बन्धन को प्राप्त करती है, मुक्त होती है और संसरण करती है। अब वह पुरुष अपने स्वभाव से मुक्त और सर्वगत है (तो फिर वह) कैसे संसरण करता है? (इसके उत्तर देते हैं कि) अप्राप्तप्रापण के लिए (पुरुष का) संसरण होता है। उससे पुरुष बँधता है, मुक्त होता है और पुरुष संसरण करता है – यह व्यपदेश किया जाता है। जिससे उसमें संसारित्व विद्यमान रहता है। सत्त्वपुरुषान्यतर ज्ञान से पुरुष का तत्त्व अभिव्यक्त होता है। उसकी अभिव्यक्ति होने पर पुरुष केवल, शुद्ध, मुक्त तथा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है। अब यह प्रश्न है कि यदि पुरुष का बन्ध नहीं है, तो मोक्ष भी नहीं होना चाहिए? इसके उत्तर में कहते हैं कि प्रकृति ही अपने आपक बाँधती है और मुक्त करती है। जिसमें तन्मात्र तथा तीन प्रकार के करणों से युक्त सूक्ष्मशरीर रहता है, वह तीन प्रकार के बन्धनों से बँधता है। और कहा भी गया है कि –

प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेण च।
दक्षिणेन तृतीयेन बद्धो नान्येन मुच्यते।।

अर्थात् 'प्राकृत बन्ध से, वैकारिक बन्ध से और तीसरो दाक्षिणिक बन्ध से बद्ध हुआ (प्राणी) किसी अन्य से मुक्त नहीं होता है।' वह सूक्ष्मशरीर धर्म तथा अधर्म से संयुक्त होता है।।६२।।

रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण।।६३।।

अन्वय :- प्रकृतिः एव सप्तभिः रूपैः आत्मना आत्मानं बध्नाति। सा एव च एकरूपेण पुरुषार्थं प्रति विमोचयति।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

अनुवाद :- प्रकृति ही सात रूपों (धर्माधर्मादि भावों) से अपने से अपने को बाँधती है। और वह ही (प्रकृति) एकरूप (ज्ञान भाव) से पुरुष के प्रयोजन (सिद्धि) हेतु मुक्त करती है।

नरहरि:

प्रकृतिः = प्रधानमेव सप्तभिः रूपैः = भावैः, धर्माऽधर्माज्ञानवैराग्यावैराग्यैश्वर्यानैश्वर्यरूपैः आत्मना स्वस्वरूपेण आत्मानं = स्वं बध्नाति। सा प्रकृतिरेव एकरूपेण ज्ञानरूपभावेनैकेन पुरुषार्थं प्रति = पुरुषार्थः कर्त्तव्य इति विमोचयति – विशेषेण मुक्तं करोतीत्यर्थः।।६३।।

गौडपादभाष्यम्

'प्रकृतिश्च बध्यते, प्रकृतिश्च मुच्यते, संसरतीति' कथम्? तदुच्यते - **रूपैः सप्तभिरेव**। एतानि सप्त प्रोच्यन्ते – धर्मो, वैराग्यमैश्वर्यमधर्मोऽज्ञानमवैराग्यमनैश्वर्यम्। एतानि प्रकृतेः सप्त रूपाणि। तैरात्मानं = स्वं बध्नाति प्रकृतिः। आत्मना = स्वेनैव। सैव प्रकृतिः पुरुषस्यार्थः = पुरुषार्थः कर्त्तव्य इति। विमोचयत्यात्मानमेकरूपेण = ज्ञानेन।।६३।।

भाष्यानुवाद:

प्रकृति ही बँधती है और प्रकृति ही मुक्त होती है और संसरण करती है – यह कैसे? अब कहते हैं - रूपै० अर्थात् सात प्रकार के रूपों (भावों) से ही। यह सात रूप कहे जा रहे हैं। जैसे – धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य। ये प्रकृति के सातरूप हैं। तै० इनसे प्रकृति अपने आपको बाँधती है। अपने से ही, वह ही प्रकृति अपने से ही, वह ही प्रकृति पुरुषार्थ का सम्पादन करना चाहिए। इस प्रकार से विमोच्य० एक रूप से अर्थात् ज्ञान रूप से मुक्त करती है।।६३।।

एवं तत्त्वाभ्यासान्नाऽस्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।।६४।।

अन्वय :- एवं तत्त्वाभ्यासात् न अस्मि, न मे, न अहम् – इति अपरिशेषम् अविपर्ययात् विशुद्धं केवलं ज्ञानम् उत्पद्यते।

अनुवाद :- इस प्रकार (साङ्ख्योक्त २५) तत्त्वों के अभ्यास के कारण – मैं कर्त्ता नहीं हूँ, यह मेरा (शरीर) नहीं है, में (भोक्ता) नहीं हूँ – इस प्रकार की अपरिशेष, मिथ्याज्ञान से रहित होने से विशुद्ध, केवल ज्ञान उत्पन्न होता है।

नरहरि:

एवं तत्त्वाभ्यासात् = तत्त्वानामभ्यासो तस्मादिति, साङ्ख्योक्तानां पञ्चविंशतितत्त्वानामभ्यासो, तस्मादित्यर्थः, पुरुषस्य ज्ञानमुत्पद्यते न अस्मि = कर्त्ता, न मे = मम शरीरमिदमस्ति, न अहम् = भोक्ता अस्मि – इत्येवं प्रकारकमपरिशेषम् = अहङ्काररहितमविपर्ययाद् – विपर्ययो = मिथ्याज्ञानं संशयो वा, न विपर्ययः तस्मात् विशुद्धं = विशेषेण शुद्धं स्वच्छं, केवलम् = अन्यत्वं, यथा अहमन्यः शरीरादिव्यतिरिक्तरिति ज्ञानं = विवेकख्यातिः तत्त्वज्ञानं वा पुरुषस्य उत्पद्यते = जायते।।६४।।

गौडपादभाष्यम्

कथं तज्ज्ञानमुत्पद्यते? एवमुक्तेन क्रमेण पञ्चविंशतितत्त्वालोचनाभ्यासादियं प्रकृतिः, अयं पुरुषः, एतानि पञ्चतन्मात्रेन्द्रिय-महाभूतानीति पुरुषस्य ज्ञानमुत्पद्यते। नास्मि = नाहमेव भवामि, न मे = मम शरीरं तत्, यतोऽहमन्यः, शरीरमन्यत्। नाहमित्यपरिशेषम्, अहङ्काररहितम्। अविपर्ययाद्विशुद्धं, विपर्ययः = संशयोऽविपर्ययादसंशयाद्विशुद्धं = केवलं, तदेवं नाऽन्यदस्तीति मोक्षकारणमुत्पद्यतेऽभिव्यज्यते, ज्ञानं = पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानं पुरुषस्येति।।६४।।

भाष्यानुवाद:

वह ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है? इस प्रकार कहे जाने पर - क्रम से २५ तत्त्वों के आलोचन तथा अभ्यास से – यह प्रकृति, यह पुरुष, ये पाँच तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच महाभूत हैं – इस प्रकार के पुरुष का ज्ञान उत्पन्न होता है, जैसे – न मैं (कर्त्ता) हूँ, न मैं ही (भोक्ता) हूँ, न यह शरीर मेरा है। चूँकि मैं शरीर से भिन्न हूँ, अतः (मुझसे) शरीर भिन्न है। इस प्रकार नाह० का मैं नहीं हूँ – अपरिशेष अन्तिम अहङ्कार रहित, अविपर्यया० विपर्यय – संशय अथवा मिथ्याज्ञान, (जो विपर्ययात्मक नहीं है वह अविपर्यय, उस), अविपर्यय से अर्थात् असंशय से विशुद्ध (मिथ्याज्ञान रूप मल से रहित) केवल (पुरुषमात्र गोचर) वह पुरुष ही केवल है, अन्य कुछ नहीं, ऐसा मोक्ष का कारण पुरुष का (२५ तत्त्वों का ज्ञान) उत्पन्न होता है अर्थात् अभिव्यक्त होता है।।६४।।

तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम्।
प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः।।६५।।

अन्वय :- तेन प्रेक्षकवद् अवस्थितः स्वस्थः पुरुषः, निवृत्तप्रसवाम्, अर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम् प्रकृतिं पश्यति।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

अनुवाद :- उस (ज्ञान) से प्रेक्षक की तरह रहते हुए, अपने में स्थित पुरुष सृष्टि प्रक्रिया से निवृत्त हुई, प्रयोजन के कारण (धर्माधर्मादि) सात प्रकार के रूपों से भलिभाँति निवृत्त होने वाली प्रकृति को देखता है।

नरहरि:

तेन = तत्त्वज्ञानो साङ्ख्योक्तानां पञ्चविंशतीनां तत्त्वानां ज्ञानेन प्रेक्षकवद् = प्रेक्षकसदृश अवस्थित: स्वस्थ: - स्वस्मिन् = आत्मनि तिष्ठतीति स्वस्थ: पुरुष: = ज्ञ: निवृत्तप्रसवां – प्रसवात् या निवृत्ता जाता तां, सृष्टिप्रक्रियाया: निवृत्ता बुद्ध्यहङ्कारकार्यां तामर्थवशात् = प्रयोजनवशात् सप्तरूपविनिवृत्तामर्थात् यै: धर्मादिभि: सप्तभि: रूपै: प्रकृतिरात्मानं बध्नाति, तेभ्य: सप्तभ्यो रूपेभ्यो विनिवृत्तां = विशेषेण निवृत्तां प्रकृतिं पश्यतीति॥६५॥

गौडपादभाष्यम्

ज्ञाने पुरुष: किं करोति? थेन विशुद्धेन = केवलज्ञानेन, पुरुष: प्रकृतिं पश्यति, प्रेक्षकवत् = प्रेक्षकेण तुल्यम्, **अवस्थित: स्वस्थ:**। यथा रङ्गप्रेक्षकोऽवस्थितो नर्त्तकीं पश्यति, स्वस्थ: = स्वस्मिंस्तिष्ठति। स्वस्थ: = स्वस्थानस्थित:। कथम्भूतां प्रकृतिम्? निवृत्तप्रसवां = निवृत्तबुद्ध्यहङ्कारकार्याम्। अर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्तां निवर्त्तितपुरुषोभयप्रयोजनवशाद्, यै: सप्तभिरूपैर्धर्मादिभिरात्मानं बध्नाति, तेभ्य: सप्तभ्यो रूपेभ्यो विनिवृत्तां प्रकृतिं पश्यति॥६५॥

भाष्यानुवाद:

ज्ञान होने पर पुरुष क्या करता है? उस विशुद्ध केवल ज्ञाने से पुरुष प्रेक्षक के समान प्रकृति को देखता है। जैसे – नाच देखने वाला वहाँ पर उपस्थित नर्त्तकी को देखता है, उसी प्रकार पुरुष अपने स्थान पर स्थित हुआ प्रकृति को देखता है। अब प्रश्न यह है कि किस प्रकार की प्रकृति को (पुरुष देखता है)? (तब कहते हैं) निवृत्त० बुद्धि, अहङ्कार आदि कार्यों से निवृत्त हुई (प्रकृति को देखता है)। अर्थात् पुरुष के उभय प्रयोजन को अर्थात् भोग और अपवर्गरूप प्रयोजन को सम्पादित कर देने से जिन धर्म, अधर्म आदि सातों रूपों से अपने आपको बाँध लेती है, उन तेभ्य० सातरूपों से विनिवृत्त (विशेष भाव से निवृत्त हुई) प्रकृति को देखता है॥६५॥

रङ्गस्थ इत्युपेक्षक एको दृष्टाऽहमित्युपरमत्येका।
सति संयोगेऽपि तयो: प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य॥६६॥

अन्वय :- रङ्गस्थ इति एक: उपेक्षक:, अहं दृष्टा इति एका उपरमति, तयो: संयोगे सति अपि प्रयोजनं नास्ति।

अनुवाद :- रङ्गमञ्च पर उपस्थित हूँ – इस प्रकार (विचार करके) पुरुष उपेक्षा करने वाला हो जाता है अर्थात् (प्रकृति की) उपेक्षा कर देता है, मैं देख ली गई हूँ – इस प्रकार (विचार करके) प्रकृति शान्त हो जाती है अर्थात् सृष्टिक्रिया से निवृत्त हो जाती है। इन दोनों के संयोग होने रहने पर भी कोई प्रयोजन नहीं रहता है।

नरहरि:

रङ्गस्थ: = रङ्गे तिष्ठतीति उपस्थित: इति एक: = पुरुष: उपेक्षक: - उपेक्षां य करोतीति, प्रकृत्या: उपेक्षां करोतीत्यर्थ:। अहं = प्रकृति: दृष्ट = पुरुषेण भुक्ता इति विचार्य उपरमति = शान्ता भवति सर्गनिर्माणादिति। तयो: = प्रधानपुरुषयो: संयोगे अपि – सर्वगतत्वात् सत्यपि संयोगे प्रयोजनं = शब्दविषयोपलब्धिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिश्च। उभयत्रापि चारितार्थत्वात् सर्गस्य प्रयोजनं नास्ति॥६६॥

गौडपादभाष्यम्

किञ्च – **रङ्गस्थ इति**। यथा रङ्गस्य इत्येवमुपेक्षक:, एक: केवल: शुद्ध: पुरुषस्तेनाहं दृष्टेति कृत्वा उपरता निवृत्ता एका = एकैव प्रकृति:, तैलोक्यस्यापि प्रधानकारणभूता न द्वितीया प्रकृतिरस्ति, मूर्त्तिवधे जातिभेदात्। एवं प्रकृतिपुरुषयोर्निवृत्तावपि व्यापकत्वात् संयोगोऽस्ति, न तु संयोगात् कृत: सर्गो भवति, **सति संयोगेऽपि तयो:** = प्रकृतिपुरुषयो: सर्वगतत्वात् सत्यपि संयोगे, प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य, सृष्टे: चरितार्थत्वात्। प्रकृतेर्द्विविध: प्रयोजनं = शब्दविषयोपलब्धिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिश्च। उभयत्रापि चरितार्थत्वात् सर्गस्य नास्ति प्रयोजनं, येन पुन: सर्ग इति। यथा दानग्रहणनिमित्तमुत्तमर्णाधमर्णयोर्द्रव्यविशुद्धौ सत्यपि संयोगे न कश्चिदर्थसम्बन्धो भवति। एवं प्रकृतिपुरुषयोरपि नास्ति प्रयोजनमिति॥६६॥

भाष्यानुवाद:

रङ्गस्थ० जैसे रङ्गमञ्च पर उपस्थित पुरुष की तरह केवल शुद्ध पुरुष उसकी (प्रकृति) उपेक्षा करता है और उस पुरुष के द्वारा मैं देखी गई हूँ, यह (जानकर) एक प्रकृति निवृत्त हो जाती है, एका का तात्पर्य है कि तीनों लोकों के कारणभूत एक ही प्रधान कोई द्वितीय कारण नहीं है, क्योंकि जातिभेद से मूर्त्ति के हनन में कारण होता है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष दोनों के निवृत्त हो जाने पर भी व्यापक होने से (उन दोनों में) संयोग विद्यमान रहता है, परन्तु उस संयोग से सर्ग नहीं होता है। सति० प्रकृति और पुरुष दोनों के सर्वव्यापी होने से (दोनों) संयोग होने पर भी सृष्टि के चरितार्थ हो जाने से सर्ग का प्रयोजन नहीं रहता है। प्रकृति का दो प्रकार का प्रयोजन है, जैसे – शब्दादिविषयोपलब्धि और गुणपुरुषान्तरोपलब्धि अर्थात् भोग तथा अपवर्ग है। इन दोनों के चरितार्थ हो जाने से

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

सर्ग का पुनः प्रयोजन नहीं रहता है, जिससे कि पुनः सर्ग हो। जैसे – दान ग्रहण में निमित्त – जो उत्तमर्ण और अधमर्ण, इन दोनों के द्रव्य के आदान-प्रदान हेतु संयोग होने पर भी कोई अर्थसम्बन्ध नहीं होता है। इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष – इन दोनों के भी कोई प्रयोजन नहीं रहता है॥६६॥

सम्यग् ज्ञानाधिगमात् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद्[५] धृतशरीरः॥६७॥

अन्वय :- सम्यग्ज्ञानाधिगमात्, धर्मादीनाम् अकारणप्राप्तौ संस्कारवशात् चक्रभ्रमवत् धृतशरीरः तिष्ठति।

अनुवाद :- सम्यक् ज्ञान के अधिगम होने के कारण धर्म आदि भावों के अकारणत्व की प्राप्ति होने पर संस्कार वश चक्रभ्रमण के समान शरीर धारण किये रहता है।

नरहरि:

सम्यग्ज्ञानाधिगमात् – सम्यग्ज्ञानस्याधिगमात् धर्मादीनां = धर्माऽधर्मवैराग्यावैराग्यैश्वर्यानैश्वर्याऽज्ञानादिसप्तभावानाम-कारणत्वप्राप्तौ, यथा धर्मकारणादूर्ध्वगमनादि तद्रहिते सति संस्कारवशात् – संस्कारकारणात् चक्रभ्रमवत् = चक्रभ्रमेण तुल्यं, यथा कुम्भकारश्चक्र भ्रामयित्वा घटं करोति, मृत्पिण्डं चक्रमारोप्य पुनः कृत्वा घटं पर्यामुञ्चति चक्रं संस्कारवशात् भ्रमत्येव तथैव धृतशरीरः - कर्मनाशे सति शरीरं धृत्वा तिष्ठतीति॥६७॥

गौडपादभाष्यम्

यदि पुरुषस्योत्पन्ने ज्ञाने मोक्षो भवति, ततो मम कस्मान्न भवतीत्यत उच्यते – यद्यपि पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानं भवति, तथापि संस्कारवशात् धृतशरीरो योगी तिष्ठति। कथम्? चक्रभ्रमवत् = चक्रभ्रमेण तुल्यम्। यथा कुलालश्चक्रं भ्रमयित्वा घटं करोति मृत्पिण्डं चक्रमारोप्य, पुनः कृत्वा घटं पर्यामुञ्चति, चक्रं भ्रमत्येव, संस्कारवशात्, एवं सम्यग्ज्ञानाधिगमादुत्पन्नसम्यग्ज्ञानस्य धर्मादीनामकारणप्राप्तौ। एतानि सप्तरूपाणि बन्धनभूतानि सम्यग्ज्ञानेन दग्धानि। यथा नाग्निना दग्धानि बीजानि प्ररोहसमर्थानि, एवमेतानि धर्मादीनि बन्धनानि न समर्थानि। धर्मादीनामकारणप्राप्तौ संस्कारवशात् धृतशरीरस्तिष्ठति। ज्ञानाद्वर्त्तमानधर्माऽ-धर्मक्षयः कस्मान्न भवति? वर्त्तमानत्वादेव क्षणान्तरे क्षयमेत्येति। ज्ञानं त्वनागतं कर्म दहति, वर्त्तमानशरीरेण च यत् करोति तदपीति, विहितानुष्ठानकरणादिति, संस्कारक्षयच्छरीरपाते मोक्षः॥६७॥

[५]. 'चक्रभ्रमिवद्' इति क्वचित् पठ्यते।

भाष्यानुवाद:

यदि पुरुष का ज्ञान उत्पन्न होने पर मोक्ष हो जाता है तो मेरा किस प्रकार (मोक्ष) नहीं होता है? इस पर उत्तर देते हैं कि यद्यपि २५ तत्त्वों के ज्ञान होता है, तथापि संस्कार (अपने पूर्व जन्म के) संस्कार से योगी शरीर को धारण किये रहताहै। (अब प्रश्न करते हैं कि) किस प्रकार? (इसका उत्तर देते हैं कि) चक्रभ्रम० चक्रभ्रमा के समान। जैसे कुम्भकार मिट्टी के पिण्ड को चक्र पर चढ़ाकर चक्र को घुमाकर घड़े का निर्माण करता है। (घड़े के निर्माण के अनन्तर) घड़े को चक्र से अलग करता है, परन्तु संस्कार के कारण वह चक्र घूमता रहता है। इसी प्रकार सम्यग्० सम्यक् ज्ञान होने पर भी धर्मादी० ज्ञान को छोड़कर धर्माधर्मादि सात भाव जो कि बन्धनभूत थे, वे सम्यक् ज्ञान से दग्ध हो जाते हैं। जैसे अग्नि से दग्धीभूत बीज अङ्कुरोद्गम में समर्थ नहीं होते हैं, उसी प्रकार धर्मादि भी (एक बार विवेकज्ञान से दग्ध हो जाने पर) पुनः बन्धन में असमर्थ हो जाते हैं। धर्मा० धर्मादि के निष्प्रयोजन होने पर भी संस्कार के कारण योगी शरीर को धारण किये रहता है। अब प्रश्न यह उठता है कि ज्ञान के वर्त्तमान रहने पर धर्म तथा अधर्म आदि का क्षय किसलिए नहीं होते हैं? उत्तर देते हैं कि वे वर्त्तमान रहने पर भी (प्रारब्ध के नाश होने पर) क्षणान्तर में नाश हो जाता है। ज्ञान तो अनागत कालिक कर्म को दहन करता है तथा वर्त्तमान शरीर से जो कर्म होता है, उसको भी, क्योंकि विहित कर्म का उस समय अनुष्ठान होता है। इस प्रकार संस्कार के क्षय हो जाने पर शरीर का नाश जब हो जाता है तब मोक्ष हो जाता है॥६७॥

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ[६]।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति॥६८॥

अन्वय :- शरीरभेदे प्राप्ते, चरितार्थत्वात्, प्रधानविनिवृत्तौ (पुरुषः) ऐकान्तिकम्, आत्यन्तिकम् उभयं कैवल्यम् आप्नोति।

अनुवाद :- भिन्न शरीर के प्राप्त होने पर, प्रयोजन (भोगापवर्ग रूप) के सिद्ध हो जाने के कारण प्रधान की निवृत्तिः हो जाती है, उस पर (वह पुरुष) ऐकान्तिक और आत्यन्तिक – दोनों प्रकार के कैवल्य प्राप्त करता है।

नरहरि:

[६]. 'प्रधानविनिवृत्तेः' इति क्वचित् पठ्यते।

शरीरनाशे प्राप्ते = पृथग्शरीरस्य प्राप्तौ सत्यां चरितार्थत्वात् – भोगापवर्गरूपस्य प्रयोजनस्य सिद्धित्वात् प्रधानविनिवृत्तौ – प्रधानस्य विशेषेण निवृत्तिः, तस्मिन् प्रधानस्य निवृत्तौ सत्यां पुरुषः ऐकान्तिकम् = अवश्यम्, आत्यान्तिकम् = अन्तरहितं नित्यमुभयम् – ऐकान्तिकात्यन्तिकमित्येवं विशिष्टं कैवल्यं = केवलभावं मोक्षमाप्नोति प्राप्नोतीति।।६८।।

गौडपादभाष्यम्

स किं विशिष्टो? भवतीत्युच्यते। धर्माऽधर्मजनितसंस्कारक्षयात् प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानस्य विनिवृत्तौ ऐकान्तिकम् = अवश्यम्, आत्यन्तिकम् = अन्तरहितं कैवल्यम् = केवलभावान्मोक्षः। उभयम् = ऐकन्तिकात्यन्तिकमित्येवं विशिष्टं कैवल्यमाप्नोति।।६८।।

भाष्यानुवादः

वह किस विशिष्टता से युक्त होता है – इस पर कहते हैं कि धर्म तथा अधर्म जनित संस्कारों के क्षय हो जाने पर प्राप्ते० अन्य शरीर प्राप्त करने पर भी प्रधान के निवृत्त होने पर ऐकान्तिक० अवश्य आत्यन्तिक० अन्तरहित (अत्यन्त भाव से) कैवल्य० केवलीभाव को प्राप्त करता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर जाता है। उभय० ऐकान्तिक और आत्यन्तिक – इस प्रकार विशिष्टता से युक्त कैवल्य को प्राप्त करता है।।६८।।

पुरुषार्थज्ञानमिदं[७] गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम्।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्।।६९।।

अन्वय :- इदं गुह्यं पुरुषार्थज्ञानं परमर्षिणा समाख्यातम्, यत्र भूतानां स्थित्युत्पत्तिप्रलयाः चिन्त्यन्ते।

अनुवाद :- यह परम रहस्यात्मक पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाला ज्ञान श्रेष्ठ (कपिल) के द्वारा भलिभाँति कहा गया है, जिसमें (प्रकृति के विकारभूत) पदार्थों की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय निर्वचित है।

नरहरिः

इदं गुह्यं = रहस्यात्मकं पुरुषार्थज्ञानं – पुरुषार्थः = मोक्षस्तदर्थः ज्ञानं पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानं परमर्षिणा – परम = श्रेष्ठ ऋषिणा कपिलेन समाख्यातं – सम्यक् कथितमिति। यत्र – यस्मिन् भूतानां = प्रकृतिविकारभूतानां विकाराणां स्थित्युत्पत्ति-प्रलयाः - स्थितिश्च उत्पत्तिश्च प्रलयश्च, अवस्थानाविर्भावस्तिरोभावश्चेति चिन्त्यन्ते = विचार्यन्ते।।६९।।

[७]. 'पुरुषार्थं ज्ञानम्' इति क्वचित् पठ्यते।

गौडपादभाष्यम्

पुरुषार्थः = मोक्षस्तदर्थं ज्ञानमिदं, गुह्यं = रहस्यं, परमर्षिणा = श्रीकपिलर्षिणा समाख्यातं = सम्यगुक्तम्, यत्र ज्ञानं भूतानां = वैकारिकाणां, स्थित्युत्पत्तिप्रलयाः = अवस्थानाऽविर्भावतिरोभावाः चिन्त्यन्ते = विचार्यन्ते, येषां विचारात् सम्यक् पञ्चविंशतितत्त्वविवेचनात्मिका सम्पद्यते सम्वित्तिरिति।।६९।।

सांख्यं कपिलमुनिना प्रोक्तं संसारविमुक्तिकारणं हि।
तत्रैताः सप्ततिरार्याः भाष्यं चात्र गौड़पादकृतम्।।
इति श्रीगौड़पादविरचितं गौड़पादभाष्यम्।।

भाष्यानुवादः

पुरुषार्थः० मोक्ष, उसके लिए ज्ञान० रहस्यात्मक इस ज्ञान को परम० श्रेष्ठ कपिल ऋषि के द्वारा समाख्यात० भलीभाँति कहा गया है। जिसमें ज्ञान होने पर भूताना० प्रकृति के विकृतियों का, उनके स्थिति, अविर्भाव (उत्पन्न हो जाना) और तिरोभाव (नाश हो जाना) चिन्त्य० विचार किये जाते हैं। जिनके निर्वचन से २५ तत्त्वों का विवेचना रूप सम्यक् सम्वित्ति अर्थात् ज्ञान उत्पन्न होता है।।६९।।

।।इस प्रकार श्रीमद् गौडपाद के द्वारा किया गया गौडपादभाष्य सम्पूर्ण हुआ।।

एतत्पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम्।।७०।।

अन्वय :- एतत् पवित्रम् अग्र्यं (साङ्ख्यं) मुनिः अनुकम्पया आसुरये प्रददौ, आसुरिः अपि पञ्चशिखाय (दत्तवान्), तेन च तन्त्रं बहुधा कृतम्।

अनुवाद :- इस पवित्र श्रेष्ठ अग्रयायी ज्ञान को कपिल मुनि ने कृपा करते हुए आसुरि को दिया था। आसुरी ने पञ्चशिख को दिया था, और उस पञ्चशिख से यह शास्त्र अधिक विस्तृत हुआ।

नरहरिः

पवित्रं = कल्याणकरमग्र्यं साङ्ख्यं तत्त्वज्ञानं मुनिः = कपिलमहर्षिः अनुकम्पया = परमकृपया करुणया द्रवीभूतः सन् आसुरये = आसुरिनामकं शिष्यं प्रदत्तवान्। आसुरिः = स उत्तमशिष्यः पञ्चशिखाय = पञ्चशिखनामकमध्येतारं दत्तवान्। तेन = पञ्चशिखेन तन्त्रं = साङ्ख्यशास्त्रं बहुधा = अनेकशः प्रचारितं कृतवान्।।७०।।

शिष्यपरम्पराऽगतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः।
सङ्क्षिप्तमार्यमतिना सम्यग्विज्ञाय सिद्धान्तम्।।७१।।

अन्वय :- शिष्यपरम्परया आगतम् एतत् सिद्धान्तं सम्यग्विज्ञाय आर्यमतिना ईश्वरकृष्णेन आर्याभि: सङ्क्षिप्तम्।

अनुवाद :- शिष्य परम्परा से आया हुआ इस सिद्धान्त को अच्छी प्रकार से जान कर आर्य बुद्धिवाले ईश्वरकृष्ण के द्वारा छन्दों में सङ्क्षेप करके निबद्ध किया गया।

नरहरि:

शिष्यपरम्परया = शिष्यप्रशिष्यपरम्पराद्वारा आगतं = प्राप्तमिदं साङ्ख्यतत्त्वज्ञानं सिद्धान्तं सम्यग्विज्ञाय = सम्यगधिगम्य आर्यमतिना = विशुद्धबुद्धिद्वारा ईश्वरकृष्णेन = साङ्ख्यकारिकाकारेण आर्याभि: = सप्ततिकारिकाभि: रचितम्। अनेनात्र केचिदाचार्या: वदन्ति यत् साङ्ख्यकारिकायां सप्तति: कारिका: वर्त्तन्ते।।७१।।

सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्था: कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य।
आख्यायिकाविरहिता: परवादविवर्जिताश्चापि।।७२।।

अन्वय :- आख्यायिकाविरहिता: परवादविवर्जिता: च अपि ये अर्था: किल सप्तत्यां (वर्त्तन्ते), तेऽर्था: कृत्स्नस्य षष्ठितन्त्रस्य (विद्यते)।

अनुवाद :- आख्यायिका से रहित और दूसरे के मत के खण्डन से रहित यह जो अर्थ सिद्धान्त अथवा विषय ७० कारिकाओं में हैं, वे ही सम्पूर्ण षष्ठितन्त्र के ही हैं।

नरहरि:

प्रस्तुतेऽस्मिन् कारिकामये ग्रन्थे येऽर्था: = सिद्धान्ता: विद्यन्ते, ते सर्वे कृत्स्नस्य षष्ठितन्त्रस्य सिद्धान्ता: विद्यन्ते। ग्रन्थेऽस्मिन् वर्णिता: ते सिद्धान्ता: आख्यायिकाविरहिता: = अस्मिन् कथाजल्पादिनास्तीति, परवादविवर्जिता: = न्यायवैशेषिकबौद्धादीनां दार्शनिकान्तराणां सिद्धान्तानामालोचनं नास्तीति।।७२।।

हरि: ॐ

अथ सांख्यकारिका-कारिकाप्रारभ्यते

दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्।।१।।
दृष्टवदानुश्रविक: स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्त:।
तद्विपरीत: श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।।२।।
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृतिविकृतय: सप्त:।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृति: पुरुष:।।३।।
दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धि: प्रमाणाद्धि।।४।।
प्रतिविषयाऽध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम्।
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनं तु।।५।।
सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्।
तस्मादपि चाऽसिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्।।६।।
अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च।।७।।
सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाऽभावात् कार्यतस्तदुपलब्धि:।
महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिविरूपं सरूपञ्च।।८।।
असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।९।।
हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्।।१०।।
त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।।११।।
प्रीत्यप्रीतिविषादात्मका: प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्था:।
अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणा:।।१२।।
सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रज:।
गुरु वरणकमेव तम: प्रदीपवच्चाऽर्थतो वृत्ति:।।१३।।
अविवेक्यादि: सिद्धस्त्रैगुण्यात्तद्विपर्ययाऽभावात्।
कारणगुणात्मकत्वात् कार्यस्याऽव्यक्तमपि सिद्धम्।।१४।।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागात् वैश्वरूप्यस्य॥१५॥
कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्त्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च।
परिणामतः सलिलवत्प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्॥१६॥
सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥१७॥
जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥१८॥
तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥१९॥
तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनवदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥२०॥
पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पंग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥२१॥
प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि॥२२॥
अध्यवसायो बुद्धिः धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्॥२३॥
अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रः पञ्चकश्चैव॥२४॥
सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तत वैकृतादहङ्कारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्॥२५॥
बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनकानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः॥२६॥
उभयात्मकमत्र मनः सङ्कल्पकमिन्द्रियञ्च साधर्म्यात्।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च॥२७॥
रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।
वचनाऽदानविहरणोत्सर्गाऽनन्दाश्च पञ्चानाम्॥२८॥
स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रय्यस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्याः वायवः पञ्च॥२९॥
युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाऽप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः॥३०॥
स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराऽकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थो एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम्॥३१॥
करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम्।
कार्यञ्च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यञ्च॥३२॥
अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्॥३३॥
बुद्धिन्द्रियाणि तेषां पञ्च विशेषाऽविशेषविषयाणि।
वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पञ्चविषयाणि॥३४॥
सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात्।
तस्मात्त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि॥३५॥
एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणाः गुणविशेषाः।
कृत्स्नं पुरुषस्याऽर्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति॥३६॥
सर्वं प्रत्यपुभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्॥३७॥
तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः।
एते स्मृताः विशेषाः शान्ताः घोराश्च मूढाश्च॥३८॥
सूक्ष्माः मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियताः मातापितृजाः निवर्त्तन्ते॥३९॥
पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्॥४०॥
चित्रं यथाऽऽश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथा च्छाया।
तद्वद्विनाऽविशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्॥४१॥
पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन।
प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्॥४२॥
सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिकाः वैकृतिकाश्च धर्माद्याः।
दृष्टाः करणाऽऽश्रयिणः कार्याऽऽश्रयिणश्च कललाद्याः॥४३॥

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चाऽपवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः।।४४।।
वैराग्यात् प्रकृतिलयः संसारो भवति राजसाद्रागात्।
ऐश्वर्यादविघातो विपर्ययात्तद्विपर्यासः।।४५।।
एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात्तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्।।४६।।
पञ्च विपर्ययभेदाः भवन्त्यशक्तिस्तु करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदाः तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः।।४७।।
भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवन्त्यन्धतामिस्रः।।४८।।
एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदशवधाः बुद्धेः विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम्।।४९।।
आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।
बाह्याः विषयोपरमात्पञ्च नव तुष्टयोऽभिमताः।।५०।।
ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः।।५१।।
न विना भावैः लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिवृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः।।५२।।
अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्चपञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः।।५३।।
ऊर्ध्वं सत्त्वविशालस्तमोविशालश्च मूलतः सर्गः।
मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः।।५४।।
तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः।
लिङ्गस्याऽविनिवृत्तेस्तस्माद् दुःखं स्वभावेन।।५५।।
इत्येष प्रकृतिकृतौ महदादिविशेषभूतपर्यन्तः।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः।।५६।।
वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य।।५७।।
औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्त्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्त्तते तद्वदव्यक्तम्।।५८।।
रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्त्तते प्रकृतिः।।५९।।
नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकं चरति।।६०।।
प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य।।६१।।
तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः।।६२।।
रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण।।६३।।
एवं तत्त्वाभ्यासान्नाऽस्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।।६४।।
तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम्।
प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः।।६५।।
रङ्गस्य इत्युपेक्षक एको दृष्टाऽहमित्युपरमत्येका।
सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य।।६६।।
सम्यग् ज्ञानाधिगमात् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद् धृतशरीरः।।६७।।
प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।।६८।।
पुरुषार्थज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम्।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्।।६९।।
एतत्पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम्।।७०।।
शिष्यपरम्परयाऽगतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः।
सङ्क्षिप्तमार्यमतिना सम्यग्विज्ञाय सिद्धान्तम्।।७१।।
सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य।
आख्यायिकाविरहिताः परवादविवर्जिताश्चापि।।७२।।

ISBN No. : 978-81-217-0247-8

The Author

DR. SUDHANSU KUMAR SARANGI

Dr. of Birth : 20th July, 1976.

Father's Name : Pt. Narahari Sarangi

Mother's Name : Smt. Rajani Devi

Education : M.A. (Sanskrit), B.H.U.
Acharya (Sankhya-Yoga), S.S.U.
Ph.D. (Sanskrit), B.H.U.

Publications : Seven Research Papers publishes & Ten submitted.

Others :

१. तर्कसंग्रह – अरूप हिन्दी व्याख्या सहित
2. प्रमुखभारतीयदर्शनसम्प्रदायेषु गुणपर्यालोचनम् :- 978-81-217-0223-2
3. योगसारसंग्रह :- 978-81-217-0246-1
4. साङ्ख्यकारिका :- 978-81-217-0247-8
5. तर्कसंग्रहदीपिका :- 978-93-80326-93-1
6. ब्रह्मगायत्री :- 978-93-80326-94-8
7. साङ्ख्यकारिका (Five Comm.) :- 978-93-81484-51-7
8. Index to VIJ , Panjab university, VVBIS & IS Publication

Address :
Dr. Sudhansu Kumar Sarangi
Asst. Prof. in Sanskrit
Dept. of VVBIS & IS
Panjab University
Sadhu Ashram
Hoshiarpur, PB
Pin . 146021
Mob. 7696523438

Email. drsudhansu@hotmail.com
drsudhansu@pu.ac.in